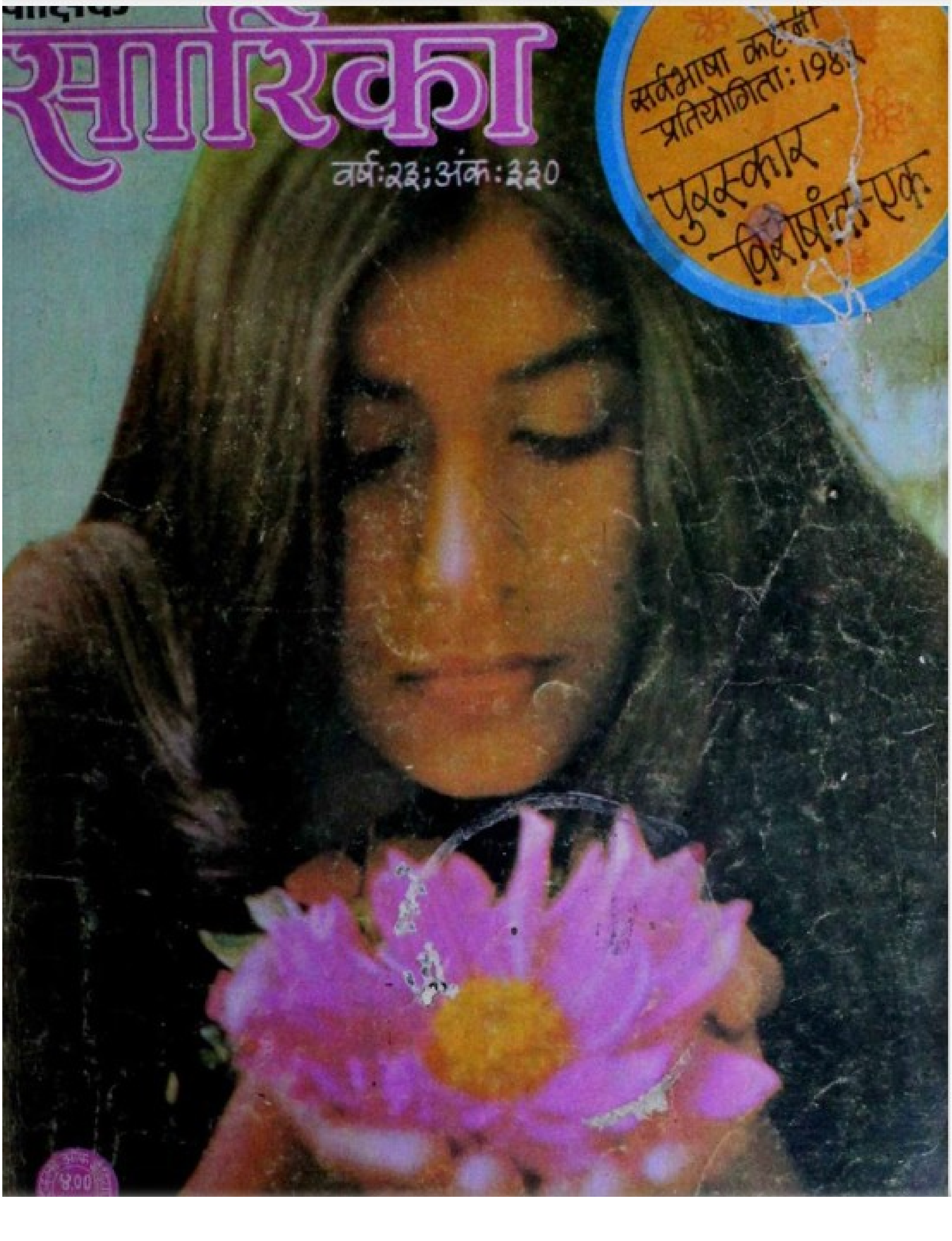
सारिका
वर्ष:२२;अंक:३२०
सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता: 1981
पुरस्कार विशेषांक-एक

अगला अंक

छाया : फाल एस. गिरोटा

भगवान के खिलाफ?
सरकार के खिलाफ?
समाज के खिलाफ?
या खुद के खिलाफ?

अक्सर जिंदगी में आ जानेवाले उस मुकाम की खोज-पड़ताल, जब आदमी को तय कर लेना पड़ता है कि वह किसके साथ है और किसके खिलाफ! ...

'सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता 1982' में शामिल तीन हजार कहानियों में से चुनी हुई पहली तेरह कहानियां पढ़ने के बाद पढ़िए **चौदह** अन्य उत्कृष्ट कहानियां :–

पुरस्कार विशेषांकः दो

▣ **निर्णायकों की नजर में--पुरस्कार विजेता कहानियां क्या कुछ कह देना चाहती हैं?**

—'पुरस्कार विशेषांक : एक और दो' में प्रकाशित पुरस्कृत कहानियों पर, सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता 1982 के सम्मानित निर्णायकों —भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी, गोविंद मिश्र और कन्हैयालाल नंदन की विचारोत्तेजक टिप्पणियां.

▣ **सन् 1982 का व्यंग्य-कथा साहित्य**

—डा. हरीश नवल की सर्वे-समीक्षा

▣ **सन् 1982 की प्रमुख साहित्यिक गतिविधियों तथा पत्रिकाओं का लेखा-जोखा**

—दिविक रमेश की रपट

▣ **कहानियां**

- **मृगया** —हृदयेश
- **शुभारंभ** —शैलेश पंडित
- **बहता हुआ पानी** —अकुलेश परिहार
- **निर्धारित स्थान (उड़िया)** —जगन्नाथ प्रसाद दास
- **जो नहीं हुआ** —दिनेश पालीवाल
- **श्यामा** —श्रीगोपाल उनियाल
- **पागलखाना** —बानो सरताज
- **नीलकंठ** —योगेंद्र दत्त शर्मा
- **ग्रहण** —क्षितिज शर्मा
- **एक मसीहा की वापसी** —स्नेह मोहनीश
- **एक पत्थर और** —तरुण विजय
- **एक और तस्वीर** —सत्यपाल सक्सेना
- **संबंध** —जे. एच. आनंद
- **बोना** —स्वप्निल श्रीवास्तव

▣

अपनी बात, आपकी बात, **लघुकथाएं,** गजलें, आसपास बिखरी **कहानियां,** चलते-चलते आदि स्थायी स्तंभों **सहित.**

सारिका

16 अप्रैल, 1983

भविष्य के कथा-जगत और कहानियों की ज्वलंत झलक प्रस्तुत करता एक अनूठा विशेषांक

—छाया केंद्र

पुरस्कार विशेषांक : एक

▣ कहानियां

10. यह कोई नाटक नहीं है : **नवनीत मिश्र**
15. अग्नि सर्प : **श्री. दा. पानवलकर**
21. वे ही : **विमांशु दिव्याल**
30. बुखारी : **नरेंद्र निर्मोही**
37. इतिहास का रास्ता : **अशोक गुप्ता**
43. ऐसी नगरिया केहि विधि रहना : **चंद्रमोहन प्रधान**
47. हिसाब और हिसाब : **शशिप्रभा शास्त्री**
53. एवज : **अनुराधा शंकर**
57. पुरानी हवेली : **अब्दुल बिस्मिल्लाह**
62. सोने का चाकू : **अखिलेश**
68. देहलीज पर न्याय : **चंद्रकांता**
75. कल्लू का कल्लू : **अरुणा सीतेश**
81. मुखौटोंवाली दूकान : **रामलाल**

▣ विशिष्ट आयोजन

86. सन् 82 की कहानियों का संसार : **प्रेम जनमेजय**
91. सन् 82 की उपन्यास यात्रा : **विवेकी राय**

▣ स्थायी स्तंभ

7. **अपनी बात**
8. **आपकी बात**

चलते-चलते : कई पृष्ठों पर

▣ विविध रचनाएं

14. सौंदर्य की विडंबना. 18. बायर का नाटक. 27. मेहनत और मंजिल. 48. तनख्वाह. 51. जो नहीं है, वह कहां से लाऊं! 52. लेखक की कामना. 61. प्रभावपूर्ण लेखन. 64. अधूरा छोड़ने से बेहतर है फाड़ना. 65. सफलता का कारण. 67. कविताएं केवल पत्नी के लिए. 72. निर्णायक तो पाठक हैं. 80. प्रकाशक का प्रतिशोध. 84. जनता का साहित्य. 90. त्याग. 94. आत्मकथन.

सहायक संपादक
अवधनारायण मुद्गल
उप-संपादक
रमेश बत्तरा,
सुरेश उनियाल,
बलराम,
अरुण वर्द्धन

सारिका
कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी
वर्ष : 23, अंक : 330; 1 से 15 अप्रल, 1983

● **आवरण : फाल एस. गिरोटा**

▣ सारिका, 10, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

सारिका कहानी मंच

आजकल आमतौर पर शिकायत की जा रही है कि विशेषकर कथा-साहित्य के प्रति जनरुचि कमतर होती जा रही है. यह एक कड़वा सच है और इसका मूल कारण है—साहित्यिक वातावरण का अभाव यानी उस सांस्कृतिक चलन की कमी, जिसके रहते कहानी और कहानी-कला पर संवाद हो सके, बहस की जा सके तथा संगी-साथी मिल-जुलकर एक-दूसरे के प्रेरणा-स्रोत बन सकें. 'सारिका कहानी मंच' की स्थापना दिनों-दिन व्यापक होते जा रहे इसी सन्नाटे को तोड़ने का सद्-प्रयास है, जिसमें शामिल होने के लिए हम देशभर के विश्व-विद्यालयों तथा उनसे संबद्ध महाविद्यालयों के अधिकारियों तथा छात्र-छात्राओं का सहयोग चाहते हैं.

● छाया: पाल एस. गिरोटा

नियम और प्रारूप

1. जिस विश्वविद्यालय/महाविद्यालय में आप पढ़ते हैं, वहां के प्रधानाचार्य या किसी भी विभागाध्यक्ष के सौजन्य से 'सारिका कहानी मंच' की स्थापना करें.
2. 'सारिका कहानी मंच' की सदस्यता के लिए किसी भी सदस्य का विश्वविद्यालय/महाविद्यालय का छात्र होना अनिवार्य है.
3. 'सारिका कहानी मंच' में सभी छात्र-छात्राएं समान रूप से भाग ले सकते हैं.
4. 'सारिका कहानी मंच' स्थापित करने के लिए पहले-पहल कम से कम पांच सदस्यों का होना अनिवार्य है. इन सबका नाम, पता, आयु, कक्षा और संक्षिप्त परिचय लिखकर आप प्रधानाचार्य या विभागाध्यक्ष के अनुमोदन सहित हमें भेज दें.
5. हमारी ओर से अनुमति प्राप्त होने पर आप अपने स्तर पर संयोजक, सचिव तथा कोषाध्यक्ष का चुनाव कर सकते हैं.
6. सारिका की ओर से न तो कोई सदस्यता शुल्क ही तय किया गया है और न ही प्रवेश शुल्क.
7. मंच संचालन के लिए आवश्यकतानुसार आप स्थानीय स्तर पर शुल्क आदि तय कर सकते हैं. आय और व्यय का हिसाब स्थानीय मंच स्वयं ही रखेंगे. इसका 'सारिका' से किसी प्रकार का कोई लेन-देन नहीं होगा.
8. 'सारिका कहानी मंच' द्वारा की गयी गोष्ठियों अथवा कार्यक्रम आदि का विवरण आवश्यकतानुसार 'सारिका' में प्रकाशित किया जायेगा.
9. 'सारिका कहानी मंच' अपने आयोजनों में गैरसदस्य कथाकारों अथवा विद्वानों और सुधी पाठकों को भी आमंत्रित कर सकता है.
10. 'सारिका' द्वारा प्रत्येक वर्ष एक विशेषांक प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें केवल 'सारिका कहानी मंच' के सदस्यों की स्तरीयता के क्रम में पुरस्कृत रचनाएं प्रकाशित होंगी.
11. प्रत्येक 'सारिका कहानी मंच' श्रेष्ठता के क्रम में तीन सदस्यों की एक-एक चुनींदा कहानी प्रधानाचार्य/ विभागाध्यक्ष के अनुमोदन सहित 'सारिका' को प्रेषित करेगा.
12. इन कहानियों में से अंतिम चुनाव का सर्वमान्य अधिकार 'सारिका' का ही होगा.
13. हर वर्ष लगभग 15 रचनाएं पुरस्कृत की जायेंगी. पुरस्कृत रचनाकारों को सम्मानित किया जायेगा और इसके लिए 'सारिका कहानी मंच' के वार्षिक समारोह का आयोजन किया जा सकता है, जो सुविधानुसार भारत के किसी भी नगर में हो सकता है.
14. 'सारिका कहानी मंच' की सदस्यता गैर हिंदी-भाषी छात्र-छात्राएं भी हासिल कर सकते हैं, लेकिन उनकी रचना हमें हिंदी में अनूदित होकर ही प्राप्त होनी चाहिए.
15. 'सारिका कहानी मंच' से संबद्ध किसी भी मसले पर संपादक 'सारिका' द्वारा लिया गया निर्णय ही अंतिम और सर्वमान्य होगा.

सारिका

10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

अपनी बात

बदलती हुई युवा-मानसिकता का विद्रोही स्वर

'सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता' में हमारे पास तीन हजार रचनाएं आयी थीं. इन रचनाओं को पढ़ने तथा निर्णायकों के लिए स्तरीय रचनाएं चुनने में काफी समय लगा. इसीलिए हम इन्हें जनवरी में प्रकाशित करने की जगह अप्रैल में प्रकाशित कर रहे हैं. इन तीन हजार रचनाओं से गुजरते हुए बराबर लगता रहा कि हिंदी में स्तरीय कहानियों का लेखन बहुत कम होता जा रहा है. हमें इतनी बड़ी संख्या में से दो प्रतिशत रचनाएं भी न मिल सकीं. यह निश्चय ही अफसोस की स्थिति है. इससे भी बड़ी अफसोस की स्थिति है युवा रचनाकारों का उतावलापन. कुछ लोगों ने इस प्रतियोगिता के परिणामों की घोषणा तक का इंतजार नहीं किया और अपनी रचनाएं अन्यत्र भेज दीं. उनके इस उतावलेपन के प्रमाण हमें अपने सूत्रों से मिले अवश्य, लेकिन काफी देर से मिले, जिससे हमें कुछ महत्वपूर्ण निर्णय दोबारा लेने पड़े. यह स्थिति भी अंकों के विलंब से प्रकाशित होने का कारण है.

फिर भी, मुझे खुशी है कि 'सारिका' अपने इन दो अंकों में चुनिंदा और अच्छी रचनाएं दे रही है. निश्चय ही इसका श्रेय अधिकारी निर्णायक मंडल को जाता है. इन अंकों की अधिकांश कहानियां नये सामाजिक संदर्भों और बदलती हुई युवा मानसिकता के विद्रोही स्वरों की कहानियां हैं. हम विशेष रूप से अपने कुछ स्थापित और अग्रज लेखकों के आभारी हैं, जिन्होंने युवा लेखन को प्रोत्साहित करने की नीयत से ही इस प्रतियोगिता में हिस्सा लिया. हम इसी प्रोत्साहन की नीयत से उनकी कहानियां इन विशेषांकों में प्रकाशित भी कर रहे हैं.

दरअसल किसी भी प्रतियोगिता में खेल-भावना का विशेष महत्त्व होता है—लेखकों के लिए भी और निर्णायकों के लिए भी. इसी निष्पक्ष खेल भावना से निर्णायक मंडल ने अपने निर्णय दिये हैं, क्योंकि निर्णायकों के सामने सिर्फ रचनाएं थीं, रचनाकारों के नाम नहीं थे.

कुछ लोग आज के युवा लेखन पर वैचारिक दिशाहीनता का आरोप लगाते हैं, लेकिन ऐसे आरोप किस देश और काल के युवा लेखन पर नहीं लगे? टकराव की मुद्रा अख्तियार करना दिशाहीनता नहीं है, दिशाहीनता है टक्करें खाते फिरना. रचना की शक्ति ही रचना और रचनाकार को जिंदा रखती है, वैचारिकता इस शक्ति के प्रभाव को घटाने-बढ़ाने में सहायक होती है और उसे दिशा देने में भी, लेकिन दिशा का बंधन लेखन का बंधन भी बन सकता है और बंधा हुआ लेखन कितना सार्थक होगा, इस संबंध में मैं अभी कुछ नहीं कहना चाहता. यह अवश्य कहना चाहता हूं कि अलग-अलग दिशाओं का निर्धारण दिशाहीनता नहीं है.

'सारिका' के इन पुरस्कार विशेषांकों की कहानियां अलग-अलग दिशाओं में कई दृष्टियों और समाजधर्मी आयामों का संवहन करती हैं, यह एक स्वस्थ स्थिति है. मैं इन सभी पुरस्कृत रचनाकारों और सुधी निर्णायक मंडल को बधाई देता हूं तथा इस प्रतियोगिता के तीन हजार सहभागियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूं, साथ ही भावी लेखन के प्रति शुभकामना भी.

सारिका के विशेषांकों की परंपरा में एक और महत्वपूर्ण पड़ाव

अपराध कथा विशेषांक: एक और दो

१ जून और १६ जून, १९८३

विश्व के महान साहित्यकारों की अपराध कथाओं का अनोखा दस्तावेज

सहभागी रचनाकारों में प्रमुख हैं— मोपासां, रूडयार्ड किपलिंग जॉन स्टेनबेक, हेमिंग्वे, मार्क ट्वेन, फॉकनर, सामरसेट मॉम, हक्सले, चार्ल्स डिकिंस, जेक लंडन, हाइनरिख ब्योल, मोराविया आदि.

अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करवा लें. कहीं ऐसा न हो कि अन्य विशेषांकों की तरह यह विशेषांक भी आपके हाथ से निकल जाये.

विस्तृत सूचना के लिए अगले अंक की प्रतीक्षा कीजिए.

सारिका

सामाजिक संदर्भों का जरूरी दस्तावेज

आपकी बात

यह कैसी लड़ाई है?

'सारिका' अंक : 326 में प्रकाशित दो कहानियां :... धूमकेतु की **'जरखरीद गुलाम'** तथा नवारुण वर्मा की **'भूकंप'** पढ़ीं. विचारों को झकझोर दिया दोनों ने. दोनों कहानियों के कुछ अंश—'सब झूठ है. अंग्रेज अभी भी इस धरती से नहीं गये. गोरी चमड़ी की जगह काली चमड़ी लेकर अंग्रेज यहां मौजूद हैं.' **(जरखरीद गुलाम)**. 'ईर्ष्या-द्वेष, वर्ण का झगड़ा है तो कहीं भाषा-संप्रदाय का झगड़ा. यहां आज जो अवैध विदेशी नागरिकों को निकालने का आंदोलन चल रहा है, अगर उन्हें निकाल भी दिया जाये तो क्या यहां अमन-चैन रहेगा? हर जाति, हर संप्रदाय मिलकर रह सकेंगे? अलगाव की राजनीति क्या जन-जन को विखंडित करने, आपस में लड़वाने से बाज आयेगी?' **(भूकंप)**.

यह कुछ ऐसे अहम सवाल हैं, जो 'सारिका' पढ़कर आम आदमी को भी कुछ सोचने पर... कुछ कहने पर मजबूर कर देते हैं. देश में भयंकर रूप से सिर उठाती ज्वलंत-समस्याओं का कारण चाहे कुछ भी हो... सत्ता की राजनीति के कारण ही इस चिंगारी ने शोलों का रूप क्यों न ले लिया हो... इन विद्रोहों के पीछे... सुलगते आक्रोश के पीछे... कुछ है तो जरूर... हालांकि, इन समस्याओं पर खीझकर कभी-कभी एक प्रश्न स्वतः कुलबुलाने लगता है कि स्वतंत्रता के बाद फिर यह कैसी लड़ाई लड़नी पड़ रही है हमें, अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए?

▣ **शशिभूषण सिंह, पटना**

राजनीतिज्ञों का हथकंडा

'सारिका' अंक 326 पूरी तरह से पढ़ डाला. प्रारंभ में ही सुश्री सुमिता चक्रवर्ती का लेख 'पटना हीलेला...' की जगह में सर्वत्र "रंभा हो रंभा" का शोर संपूर्ण वातावरण में गूंज रहा था. यह तो एक यथार्थ सत्य को उन्होंने हम लोगों के सामने रखा है. यही नहीं, आज हम अपनी बोलचाल की भाषाओं में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करके 'एडवांस' कहलाने का दंभ भरते हैं. आज हमारे दिलों पर पश्चिमी सभ्यता की मदहोशी इस कदर रंग जमा चुकी है कि उससे छुटकारा पाना मुश्किल-सा लग रहा है. दूसरी ओर आज युवा वर्ग के आक्रोश एवं आंदोलन से परेशान होकर उससे जान छुड़ाने के लिए सत्तालोलुप नेतागण 'लोमड़ी की नीति' अपनाते हैं. ये नेतागण एक तरफ कहते हैं 'युवा वर्ग के हाथों में देश का भविष्य' दूसरी तरफ काक सदृश भोले युवक उनकी इन चिकनी-चुपड़ी बातों में बहक जाते हैं. युवा वर्ग को फुसलाने और बहकाने का आज के राजनीतिज्ञों का यह सबसे सरल एवं सुंदर हथकंडा है.

विनोद शंकर शुक्ल ने **'सत्र की पाठशाला में...'** हास्य-व्यंग्य रचना द्वारा जो समस्याएं उठायीं हैं, कटु सत्य एवं विचारणीय हैं. उनकी रचना ने जितना आनंद प्रदान किया, उतना ही कुछ सोचने को विवश भी किया. उसके साथ-साथ गिरिधर गोपाल की रचना **'फैसला'** से भी काफी प्रभावित हुआ. 'आते हुए लोग' की कड़ी में अनीता मनोचा ने मानवीय संवेदना का चित्रण किया है, सचमुच बाल-सुलभ मन की भावनाओं से ओत प्रोत यह कहानी अमिट छाप छोड़ती है.

▣ **पद्मानंद कुमार, भागलपुर**

चित्र से कम नहीं

'सारिका' के अंक : 326 में प्रकाशित कहानी **'बाढ़ और उतार'** हृदय को छू सी गयी. नारी और पुरुष की मिलनोत्कंठा का चित्रण जिस शैली, भाव और शब्दों के माध्यम से कहानी में उतरा है, किसी चित्र से कम नहीं है.

▣ **लक्ष्मीनारायण सोनी, बीकानेर**

> **सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता**
>
> **'सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता' के अंतर्गत पुरस्कार-क्रम में न आ सकने वाली कुछ कहानियों का चयन हमने सामान्य अंकों के लिए किया है. ऐसे रचनाकारों को सूचना भेज दी गयी है. अन्य रचनाओं का उपयोग 'सारिका' में नहीं हो सकेगा. कृपया इस संदर्भ में पत्र-व्यवहार न करें.** —संपादक

राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका

मैं टाइम्स ऑव इंडिया प्रकाशन के साप्ताहिक 'दिनमान' एवं पाक्षिक 'सारिका' का नियमित पाठक हूं. 'दिनमान' जहां राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, देश-विदेश की घटनाओं के समाचार देने में पूर्ण सफल है, वहीं 'सारिका' मनोरंजन एवं मानसिक चेतना को जगाने का एक अच्छा साधन है. 'सारिका' का नया कदम **'आते हुए लोग'** काफी प्रभावी होगा.

अब 'सारिका' के इस प्रयास से कि नये लेखकों को प्रति मास अपनी पत्रिका में जगह देने एवं नयी प्रतिभाओं को राष्ट्र के समक्ष प्रस्तुत करने के कदम से ऐसा लगता है, कि जैसे 'सारिका' राष्ट्र की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने का गौरव जल्द ही प्राप्त कर लेगी.

▣ **शंभूप्रसाद चौधरी, मुजफ्फरपुर**

दिनेशजी का साहसी कदम

सारिका अंक : 326 पढ़ा, बहुत खुशी हुई, यह पढ़कर कि भारत में दिनेश गुप्ता जैसे भी कर्णधार विद्यमान हैं, जो समाज की उपेक्षित विधवा से विवाह हेतु तैयार हैं. वास्तव में यह साहसी कदम उठाकर दिनेशजी ने युवकों को प्रेरणा प्रदान की है. विश्वास है दिनेश जी अपने उद्देश्य में अवश्य ही सफलता प्राप्त करेंगे.

▣ **के. साजवानी, इटारसी (म. प्र.)**

नवोदित कथाकारों के लिए

फरवरी के प्रथम पक्ष की 'सारिका' अंक : 326 में अनीता मनोचा की कहानी **'गवाह'** देखी. उत्कृष्ट होने के साथ-साथ उद्देश्यपूर्ण भी प्रतीत हुई. 'सारिका' में इस तरह के प्रकाशन नवोदित कथाकारों के लिए प्रोत्साहन ही हैं, जो वास्तव में सराहनीय हैं.

▣ **शांतिलाल प्रजापति, जैतारण (राज.)**

तस्वीर बोलती है

सारिका, अंक : ३२६

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार: ५० रु.

गुजरी हुई बहार के पत्ते हुए हैं हम,
रिश्तों के इस शहर में नमस्ते हुए हैं हम.
• जयनारायण बुधवार

▣ **श्रीमती मधु मिश्र, 17 (ख) हीरापुरी, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ. प्र.)**

द्वितीय पुरस्कार : ३० रुपये

तलाश करते हैं ताले पुराने बक्सों के,
जो दर्द उम्र के पिछले पहर उभरते हैं.
• सूर्यभानु गुप्त

▣ **कुमुद अरविंद, ए-15 स्टिस्कॉन कालोनी (देवास रोड) उज्जैन (म.प्र.)**

तृतीय पुरस्कार : २० रुपये

कोई हाथ भी ना मिलायेगा जो गले
मिलोगे तपाक से,
ये नये मिजाज का शहर है, जरा
फासले से मिला करो.
• बशीर 'बद्र'

▣ **आलोक यात्री, गाजियाबाद (उ. प्र.)**

प्रशंसित शीर्षक

फिर कभी इस मोड़ पर मिल जायें तो
हंसकर मिलें,
कुछ नहीं तो दोस्ती का हक अदा
हो जायेगा.

▣ **राजेंद्र मोहेश्वरी, पाली, मारवाड़**

यहां के बाद ये दरिया भी सूख जायेगा,
हमें पता है कहां तिश्नगी जवां होगी.

▣ **महादेव प्रसाद गुप्त, ललितपुर**

दुश्मनी लाख सही खत्म न कीजे रिश्ता,
दिल मिले या न मिले हाथ मिलाते रहिए.
• इकबाल

▣ **शिशुपाल जुनेजा (इंदौर), बी. आनंदपुर (हैदराबाद)**

बालिका की मनःस्थिति

'आते हुए लोग' आपकी एक सशक्त प्रस्तुति है. इसका उदाहरण 'आते हुए **लोग'** श्रृंखला की तेरहवीं कड़ी में **'गवाह'** कहानी की उपस्थिति है. एक ओर जहां लेखिका ने मनोवैज्ञानिक रूप से बालिका की मनःस्थिति का वर्णन किया, वहीं दूसरी ओर यह पूछने पर —बलात्काल क्या होता है? का उत्तर न देना अखरता है. क्या बलात्कार शारीरिक स्तर पर ही होता है, मानसिक स्तर पर नहीं?

▣ **राकेश गुप्त, दतिया (म. प्र.)**

मनोवैज्ञानिक कहानियां

मैंने 'सारिका' अंक : 326 को विशेषांक मानकर पढ़ा है. विशेषांक इसीलिए माना है कि कहानी जगत की यह पाक्षिकी मेरे जीवन की पाक्षिकी बन गयी है. चाहकर भी अलग नहीं कर पाता हूं अपने से. दूसरे, जिसका मुखपृष्ठ भी अपनी 'कहानी' कह रहा हो, उसे मैं अपने से कैसे अलग कर सकता हूं? और फिर इस अंक में प्रकाशित हर कहानी मनोविज्ञान पर आधारित है. इसीलिए यह अंक 'मनोवैज्ञानिक कहानी विशेषांक' बन गया है. **'बाढ़ और उतार'** में देह संबंधों की तस्वीर का जो पहलू रेखांकित हुआ है, क्या उसके पीछे मनोविज्ञान नहीं है? **'जरखरीद गुलाम'**, **'गवाह'** एवं **'उसकी आत्म हत्या'** की तो बुनियाद ही मनोविज्ञान है. **'जरखरीद गुलाम'** में जहां कालीचरण का गुस्सा रचनात्मक मोड़ लेता है, वहीं मनोवैज्ञानिक आधार पर वह जी. एम. साहब का गुलाम है. लघुकथाएं भी कहीं-कहीं पर मनोविज्ञान के पहलुओं को तो छूती हैं, परंतु फिर मात्र मनोरंजन पर ही निर्भर हो जाती हैं.

▣ **अजयकुमार जैन, नजीबाबाद**

फूलन देवी: ताजा उदाहरण

'सारिका', फरवरी (द्वितीय) में पुरस्कृत पत्र के रूप में गुजरात के गोरियाजी का दृष्टांत सामने आया. उनका प्रश्न निश्चित ही विचारणीय है. हम पुरुष प्रधान समाज में जी रहे हैं. इसमें पुरुष की भूमिका अंततः समन्वय के हर धरातल पर नियंता की है तथा स्त्री की शोषित की. इस सिलसिले में अभी उद्देश्यों तथा परिवेश प्रारूप का निर्धारण पुरुष वर्ग ही करता है और इस बात की तनिक भी गुंजाइश इस प्रक्रिया में नहीं होती कि यह जाना जाये कि इसमें कौन कितना पराजित हो रहा है, टूट रहा है. यह पराजय तथा टूटन, जो पुरुष के अभीष्ट संचयन के प्रभाव में होती है, अमानवीय होने के कारण पुरुष को शोषक बना देती है, क्योंकि उसकी ओर से व्यवस्था में नारी की साक्षात् या भावनात्मक उपस्थिति निषिद्ध होती है. यह निषेध आदिकाल से अद्यतन लागू है.

व्यवस्था के इस निर्वाह क्रम में, चूंकि पुरुष और नारी का स्थान अदला-बदला नहीं जा सकता, इसलिए नारी द्वारा पुरुष के शोषण की कल्पना घोर असंभव सिद्ध हो जाती है. यह एक वैज्ञानिक प्रतिवेदन है कि नारी तब तक अपनी प्रकृति से पुरुष का शोषण नहीं कर सकती, जब तक वह अपने अस्तित्व को पूर्णतः व्यवस्था में विलीन न कर दे. यह संहति और ऊर्जा का शाश्वत समीकरण है, लेकिन यह प्रतिरोपण भी बिना किसी शोषक विस्फोट के संभव नहीं है और यह कुचक्र पुरुष का अपना नियोजन होता है. फूलन देवी इसका ताजा उदाहरण है.

▣ **अशोक गुप्ता, फरीदाबाद** □

यह कोई नाटक नहीं है

नवनीत मिश्र

"तुम क्या सोचती होगी अम्मा कि तुमने कैसा बेटा पैदा किया है, जो इस हद तक आत्ममुग्ध है कि अपने साथ जुड़ी एक मां को भी साथ लेकर न चल सके. मगर मैं क्या करूं अम्मा, मैं तुम्हारा बेटा हूं, मगर साथ ही कुछ और भी तो हूं. कितना अजीब लगता है यह कहना कि मैं तुम्हारे सामने कुछ और भी हूं या हो सकता हूं. ऊपर ऊपर फैलती चली जाने वाली महत्वाकांक्षाओं की थेथर जलकुंभी उसी जल को ढक देती है, जिससे वह पैदा होती है." घर और रंगमंच की जिंदगी के टकराव का अनूठा दस्तावेज—

▣ प्रथम पुरस्कार विजेता कहानी

यह इस महीने का चौथा मौका है जब अम्मा और मेरे बीच अबोला ठन गया है. इस अबोले की घोषणा अम्मा की चुप्प से हो जाती है. अम्मा ऐसी स्थिति में शब्दों का उपयोग नहीं करतीं, उनके संकेत ही काफी होते हैं इस चुप्पी की घोषणा करने के लिए.

'शेव' के लिए गर्म पानी से भरी प्लास्टिक की कटोरी कमरे की चौखट पर सरकाकर चले जाना, मेरे नहाने जाते ही थाली परोसकर कमरे में चुपचाप रख जाना, घर से निकलते समय जल्दी लौट आने के लिए न कहना और ठीक उसी समय ठाकुरजी की पूजा में व्यस्त हो जाना—अम्मा के कुछ ऐसे संकेत हैं—जिनके माध्यम से वह कह देती हैं कि मैं अपना काम किये जा रही हूं, बाकी तुम जानो और तुम्हारा काम जाने. रात देर से लौटने पर सोयेंगी नहीं, लेकिन डाटेंगी भी नहीं, सांकल खोलकर बिना एक भी शब्द बोले अपने कमरे में चली जायेंगी और 'हे राम' के दीर्घ निःश्वास के साथ लेट रहेंगी. अम्मा का एक 'हे राम' उनकी संपूर्ण व्यथा का चीत्कार बनकर सारे घर में गूंज उठता है. कमरे में जाकर जब मेज पर औंधाई हुई थाली के नीचे रखा खाना देखता हूं तो सूख कर ठंडी हो गयी रोटियां मुझे अम्मा की हथेलियों जैसी लगने लगती हैं. दिनभर की थकी अम्मा ऐसी स्थितियों में रात गये करवटें बदलती रहती हैं, और हर करवट पर उनकी चारपाई की चरमराहट उनकी उड़ गयी नींद की सूचना देकर मुझे जगाये रखती है. अम्मा मुझसे हार गयी हैं.

अम्मा की नाराजगी कभी विस्फोट से शुरू नहीं होती. काम करते-करते उनकी पिंडलियों में जब दर्द की टीस उभरती है, ऐसी चुप्पी के शुरू हो जाने के संकेत मिलने लगते हैं. जब-जब उनके झुर्री पड़े कांपते हाथों से बरतन छूटकर गिरने लगते हैं तब-तब उस झन्नाहट के पीछे अम्मा कहती हुई-सी लगती हैं, "अब मुझसे कुछ हो नहीं पाता, बेटा!" एक रोटी तवे पर डालकर दूसरी लोई उठाने के बीच अम्मा को सुस्ताने की मुद्रा में बैठते देख एक बार जब मैंने महराजिन लगाने की राय दी थी तो अम्मा एक दम से फट पड़ी थीं :

"आग लगे महराजिन को. जिंदगी भर महराजिन का बनाया खाओ और छुट्टा घूमते रहो आधी-आधी रात तक."

"कोई आवारागर्दी तो नहीं करता."

"यह मैंने कब कहा?" फिर अम्मा एकदम मनाने पर उतर आयीं, "अरे इत्ते बड़े हो गये. अपना घरद्वार संभालो, मुझसे और कब तक रोटियां थोपवाते रहोगे, फिर क्या बुढ़ापे में ब्याह करोगे. बाद में याद करोगे अम्मा की बातें. कर लो ब्याह, थोड़े दिन तुम्हारी बहू को भी प्यार कर लूं." अम्मा के स्वर में बच्चों जैसी घिघियाहट तिर आयी.

"कोई ढंग की लड़की तो मिले, किससे कर लूं शादी?" मैं अम्मा की पसरी हुई हथेली में आश्वासन का एक बेहद घिस गया सिक्का रख देता हूं, "कित्ती सारी तो फोटुएं आयीं, तुम्हें कोई रुचि ही नहीं." अम्मा ने उत्साहित होकर कहा, "इन फोटो को देखकर लगता है अम्मा कि ये लड़कियां पड़ोसियों के बच्चे खिला-खिलाकर बड़ी हुई हैं." मैं अपने ही मजाक पर हंस पड़ने को था, लेकिन अम्मा की फटकार से खिसियाकर रह गया. "बस-बस, ज्यादा बना मत करो. ब्याह करो या मत करो, पर परायी लड़कियों की ऐसे खिल्ली मत उड़ाओ. तुम्हारे आगे भी लड़कियां आयेंगी तब जानोगे. आये बड़े कहीं के. इनके लिए ऊपर से कोई परी आयेगी." अम्मा का बड़बड़ाना दूर तक सुनाई देता रहा.

बात कहीं से भी शुरू हो, उसको खत्म ऐसे ही होना होता है. और इतना काफी होता है मेरे और अम्मा के बीच संवाद के टूटने के लिए.

जब अबोला नहीं रहता, तब बातें होती हैं. मगर वह बात नहीं होती. विवाह जैसे अप्रिय प्रसंग को—दुष्टात्मा के प्रवेश को रोकने के लिए घर को किलियाने जैसा कुछ होता है. वह कोशिश होती है घर में व्याप्त मनहूस सन्नाटे को तोड़ने की. लेकिन मेरी लाख कोशिशों के बावजूद, कि बात उस दिशा में न जाने पाये जहां मैं निरुत्तर हो जाता हूं, वैसा हो ही जाता है. सामान्य तौर पर सहज-सी लगने वाली कोई बात कैसे एक व्यूह में घिर जाती है. कई बार ऐसा हुआ कि नितांत अप्रासंगिक और महत्वहीन बातों की चिकनी चमकदार पटरियां अप्रत्याशित रूप से जंग खायी हुई 'डेड लाइन' से जा मिली हैं.

अभी उसी दिन. "तुम्हारे बाबूजी की फोटो में नमी आ गयी है, इसे फिर से मढ़वा दो." अम्मा ने आंचल शीशे पर फिराया जैसे शीशे के ऊपर से ही फोटो की नमी साफ कर देंगी. अम्मा की आंखें एकटक बाबूजी की तस्वीर पर टिकी थीं. "अम्मा, बाबूजी जब नहीं रहे थे, तब मैं कितना बड़ा था?" मेरे पास बाबूजी की याद करने के लिए इस सीलन खायी तस्वीर के अलावा और कुछ नहीं है. अम्मा से बाबूजी के बारे में बातें करना अच्छा लगता है मुझे.

"तू तो इत्ता-सा था. तेरे हिस्से का रोना भी मैं ही रोयी थी." अम्मा ने एक हाथ जमीन से डेढ़ फुट ऊपर उठाकर बताया. अम्मा की आंखें बाबूजी की बुझी हुई ठंडी चिता की राख के ढेर जैसी हैं जिनमें धू-धू और चट-चट की आवाजें और लपटें तो नहीं, पर राख की शक्ल में बदल गये जीवन की भयावह उदासी है.

"तुम्हारी शादी कितने बरस में हो गयी थी?"

"अरे पहले के जमाने में जवान होने से पहले कन्यादान कर देना पुन्न समझा जाता था. आज के जैसे थोड़े ही, धींगड़ी-सी घूमा करती हैं बिना ब्याह के. अब तुम जानो, हम नौ बरस के थे और तुम्हारे बाबू बारा-तेरा के. अरे, मेरा उस समय का छोटा-सा लहंगा कोई देखे तो हंसे."

कहते हुए अम्मा एक भारी संदूक उठाने के लिए फुर्ती से उठ खड़ी हुईं. मैंने उनको एक तरफ हटाकर संदूक जमीन पर रख दिया.

संदूक खुलते ही जमाने से बंद पड़े कपड़ों से किसी समय खूब गमका करने वाले इत्र का उलझा-सा पता देने वाली और अतीत की स्मृतियों की मिली-जुली महक कमरे में दौड़ गयी.

"यह देखो, उस जमाने में कैसा लिहाज होता था बड़ों का. आज के जैसे नहीं कि मां-बाप के सामने हाथ में हाथ डाले घूमो, बेटा अपनी बीवी के लिए बाप से लड़ जाये. फोटू जब खिंचवायी थी तो 'ये' बड़े परेशान. इनके बाबूजी, इनकी अम्मा, सारे लोग. बड़े शरमाये कि एक साथ कैसे फोटू खिंचायें बाबू, अम्मा के सामने. फिर ये देखो मुझे यहां अपने बाबूजी के पास बिठा दिया और खुद एकदम किनारे जाकर खड़े हो गये."

अम्मा 'ब्लैक एंड ह्वाइट' से 'सीपिया' हो गयी एक बड़ी-सी फोटो मेरे हाथों में देते हुए बताने लगीं. दीमक की चाटी हुई फोटो में कोई भी चेहरा या किसी भी व्यक्ति की स्थिति स्पष्ट नहीं थी, पर अम्मा अपनी याददाश्त के सहारे उत्साह के साथ उंगली रख-रखकर बता रही थीं—"ये देखो, यहां तुम्हारे बाबा, ये हम हैं, ये दादी बैठी हैं, ये बड़े चाचा हैं, ये फलां हैं, ये फलां हैं, ये-ये जाने कौन हैं और ये यहां पर खड़े हैं तुम्हारे बाबूजी!" अम्मा की सहलाती-सी उंगली एक काले से धब्बे पर जाकर रुक गयी और काफी देर वहीं कुछ तलाश करती-सी रुकी रही.

चांदी और सोने के कामवाली खूब भारी-भारी गंजी पड़ी साड़ियों, डोरियों से खुलने और बंद होने वाले रंगीन बटुओं में जार्ज पंचम और विक्टोरिया के जमाने के खनकते हुए चांदी के सिक्के और इन सबसे घिरी बैठी अम्मा गये कल का उत्सव-सा मनाती लग रही थीं.

"तभी तो तुम्हारी चिरौरी करती हूं. ब्याह कर लो, मैं बहू को यह सब सौंपकर निश्चित हो जाऊं. बोलो, बात चलाऊं बरेलीवालों के यहां?" मुझे लालच-सा देती अम्मा की आंखें बेहद-बेहद प्यारी हो उठीं.

"बरेली में तो शायद बंद हो गया. अम्मा, तुम आगरा या रांची में बात क्यों नहीं चलातीं?" मैंने हंसते हुए अम्मा को जोर से अपनी बाहों में कस लिया. "नहीं, मजाक मत करो.

■ नवनीत मिश्र
जन्म 1947, लखनऊ में.
लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातक. 1969 से अनियमित लेखन, विभिन्न पत्रिकाओं में 14-15 कहानियों का प्रकाशन. एक कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य. संप्रति आकाशवाणी गोरखपुर में समाचार वाचक. इनका मानना है कि "बाहर जो कुछ एक बार घटित होता है, अंदर उसकी अनुगूंज हमेशा बनी रहती है. वह प्रतिध्वनियां होती हैं, जो एक दबाव-सा डालती रहती हैं. मेरी कहानियां ऐसी प्रतिध्वनियों का उल्था हैं."

तुम नहीं जानते, मेरा अकेले कितना जी घबराता है. मेरा दिल बहलाने के लिए ही बहू ला दो. मेरे अकेलेपन पर तरस खाकर ही शादी कर लो. तुम ब्याह कर लो, फिर चाहे सारी रात नाटक और रिहर्सल करना. फिर मैं तुमसे कुछ कहूं तो मुझसे कहना. इस बात को यहां आना ही था. मां की यादों और भविष्य की योजनाओं के अच्छे भले चल रहे खेल में किसी पाजी लड़के की तरह भरभंडा मचा देने का साहस मैं नहीं जुटा सका. ना नहीं कह सका, लेकिन हां भी मुंह से नहीं निकला. मेरे मौन को स्वीकृति समझकर अम्मा ने हर्षातिरेक से अवरुद्ध हो गये कंठ से कहा, "तो फिर आज ही उन्हें चिट्ठी भेज देती हूं."

"नहीं, अभी नहीं!" कहकर तेजी से मैं उनके सामने से निकल जाने को आगे बढ़ा, मगर हमेशा की तरह अम्मा ने मुझे चले नहीं जाने दिया. संदूक और उसके चारों ओर बिखरे सामान को फलांगती हुई मेरे सामने आ खड़ी हुई, "अभी नहीं तो कब? मेरे मरने के बाद? तुम्हारे मन में मेरे लिए कोई दया नहीं, कोई ममता नहीं. सारा दिन मुझे खटते हुए तुम कैसे देख पाते हो? मैं सारे दिन तुम्हारी सूरत देखने को तरसती रहती हूं और तुम ऑफिस से सीधे रिहर्सल में चल देते हो. सबेरे से रात तक घर से बाहर रहते हुए तुमको मेरी याद कभी नहीं आती? तुम्हारा मन कभी सब कुछ छोड़-छाड़कर घर भाग आने को नहीं करने लगता? तुम्हें कभी ध्यान नहीं आता कि जिस समय तुम नाटक में नकली आंसू बहा रहे होते हो, उस समय मैं अपने दर्द से ऐंठते पैरों को अपने झुंझुन हाथों से दबाकर आराम पाने की कोशिश में सचमुच रो रही होती हूं. तुम्हें पैदा किया, तुम्हारे अत्याचार सहने होंगे, मगर एक बात आज कान खोलकर सुन लो.—तुम्हारा यह नाटक-वाटक का चक्कर मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाता."

अम्मा का संदूक में सहेजा हुआ अतीत और भविष्य के सपनों की कोंपलें फर्श पर बिखरी पड़ी थीं. अम्मा के दर्द से चीथ कर रख दिया गया मैं जड़ बना खड़ा रह गया. और उस दिन के बाद से अम्मा ने इस बारे में मुझसे कोई बात नहीं की. अम्मा ने जैसे मौन के एक दूसरे बेटे को गोद ले लिया.

अम्मा को नाटक-वाटक फूटी आंखों नहीं सुहाता और मुझे नाटक-वाटक के अलावा और कुछ नहीं सुहाता. ऐसा नहीं है कि मैं मां के कष्ट, उनकी मजबूरी और उनकी आवश्यकताओं को नहीं समझता, पर थियेटर भी मेरे लिए महज शामें गुजारने का जरिया नहीं है. नाटक में मेरे प्राण बसते हैं, यह बात मैं अम्मा को कैसे समझाऊं? अभी उसी दिन अम्मा ने मामाजी के सामने पेशी करवा दी थी और मामाजी ने भी एक वाक्य में सारा मुकद्दमा निपटा दिया था, "क्या फिजूल के काम में लगे हो जी." मामाजी का वाक्य 'फिजूल के काम में' एक लंबे समय तक हथौड़े की तरह कनपटी पर बजता रहा था. नाटक फिजूल है. साहित्य फिजूल है, कविता फिजूल है, पेंटिंग फिजूल है, गायन फिजूल है, नृत्य फिजूल है, मूर्ति गढ़ना, चित्र बनाना फिजूल है, सारी ललित कलाएं फिजूल हैं? निरर्थक हैं? तो फिर सार्थक क्या है? मामाजी की तरह दिन भर बैंक का लेजर भरकर शाम को लेटे-लेटे पंखा झलते हुए उबासी लेना ही जीवन की सार्थकता है? रात आठ बजे तक खाना निबटाकर महरी के लिए चौका खाली करने में पत्नी को सहयोग देने में ही जीवन की सार्थकता है? मैं अगर अपने को नापने बैठूं तो लगता है कि मैं लेखक बन सकता था. मंच पर लगाये गये सेट पर अपनी चित्रकारी देखकर लगता है कि मुझमें चित्रकार बनने की भी खासी संभावनाएं थीं. मैं कोई वाद्य सीख सकता था, मगर मैंने चुना अभिनेता बनना, जो महीनों के रिहर्सल के बाद ढाई घंटे की जिंदगी जीता है. मैंने चुनीं अपने संवादों पर मिलने वाली वे तालियां, जिन्हें हाल से बाहर निकलने तक शायद हथेलियां भी भूल जाती हैं, लेकिन महीनों के रिहर्सल के बाद ढाई घंटे की स्टेज की जिंदगी में एक अभिनेता के लिए कोई एक चिर आकांक्षित सिचुएशन, कोई एक संवाद होता है, जिसके सफल निर्वाह के बाद नाटक करना, सारा समय, सारी मेहनत सार्थक हो जाती है. कुछ अति बुद्धिमान लोगों के लिए जिंदगी की बेहद जरूरी चीजें फिजूल होती हैं. नाटक के अपने इस खब्त को जीता हुआ मैं किसी 'तुगलक' से कम नहीं होता. रोज अपने दिमाग में बनने वाली नाटक की नयी-नयी योजनाओं को साकार करने के रास्ते में आने वाली किसी भी कमजोरी या बाधा से मैं कोई समझौता नहीं करता.

'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास को कोई मेरी चेतना से जीता तो जानता कि फिजूल-सी लगने वाली इस विधा को स्थापित करने की यात्रा में मैं क्या से क्या हुआ हूं, कितना क्या-क्या कुछ देखा है. कितनी बार मेरे सादे घरेलू अतीत ने मुझे बांह पकड़कर वापस खींचने का प्रयास किया है, मगर नाटक ही मेरा सत्य है, मेरा धर्म है. 'अंधा युग' के युयुत्सु की

तरह घर लौटता हूं तो मौन खड़ी अम्मा गांधारी की तरह पूछती-सी लगती हैं—

बेटा,
भुजाएं ये तुम्हारी
पराक्रम भरी, थकी तो नहीं
अपने बंधु जनों का वध करते करते—

अम्मा के अरमानों की अक्षौहिणी कौरव सेना का पक्ष लेना मुझे असत्य और अधर्म का पक्ष लेने जैसा लगता है. अम्मा का जाया मैं हूं और अम्मा ने ही जने हैं ये अरमान, जिनके विरुद्ध मैंने जैसे हथियार उठा रखे हैं, लेकिन कभी-कभी सोचता हूं कि आज नाटक प्रेम के जिन पांडवों का मैं साथ दे रहा हूं, कल उन्हीं से अपमानित और तिरस्कृत भी होना पड़ सकता है, पर मुझे इसकी चिंता नहीं. खिल्ली उड़ने और तिरस्कृत होने की चिंता युयुत्सु को कभी नहीं रही.

मैं अम्मा को कैसे समझाऊं कि किसी पात्र को जीना अपने आप में कैसा अनुभव होता है. परकाया में प्रवेश करने का रोमांच ही तो मेरा नशा है.

वैसे अम्मा भी ठीक कहती हैं. मैं उनकी काया में प्रवेश करके उन्हें क्यों नहीं जी पाता? उनके निपट अकेलेपन को, उनकी अनवरत प्रतीक्षा को, उनकी पिंडलियों के अनसहलाये दर्द को मैं क्यों नहीं जी सका आज तक? क्यों मेरी दिनचर्या ऑफिस और थियेटर के बीच ही बंटकर रह गयी है, जिसमें मेरी उदास और दुखी अम्मा के लिए कोई वक्त नहीं है? चार घंटों की रिहर्सल के बाद क्या जरूरी है कि घर जल्दी भागने के बजाय चौराहों पर खड़े होकर नाटक के गुण-दोषों की आधी रात तक जुगाली की जाये. नाटक के लिए अभिनेताओं को जुटाने से लेकर टिकट बेचने और 'शो' आयोजित करने की सारी व्यस्तताओं के बीच क्या मुझे अपनी और कोई जिम्मेदारी याद नहीं आनी चाहिए.

मगर मैं जानता हूं कि यह है और अपने इसी रूप में है. सचमुच जो नाटक करते हैं, वे फिर नाटक ही ओढ़ते और नाटक ही बिछाते हैं. जो लोग सचमुच नाटक करते हैं, वे फिर और कुछ नहीं करते. मैं थियेटर की सारी तंग गलियों को जानता हूं. जो लोग सचमुच नाटक के लिए सोचना चाहते हैं उन्हें अपने निजी सोचों से ऊपर उठना पड़ता है. मैं सारी टूटन अपनी इन्हीं आंखों से देख रहा हूं, उस सारे विघटन को अपने ऊपर सह रहा हूं इस उम्मीद में कि कल इस टूटन और विघटन से कुछ नया बनेगा. कलकत्ता और बंबई की तरह मेरे शहर, मेरे प्रदेश और सारे देश में रंगमंच भी एक व्यवसाय के रूप में मान्यता पायेगा. 'सेल्युलाइड' के सामने सीना तानकर खड़ा होगा मेरा रंगमंच. नाटकों के शो में, 'हाउस फुल' का बोर्ड लटका देखने की महत्वाकांक्षा पाले मैं अम्मा को टूट जाने दे रहा हूं. एकदम असामाजिक-सा होता जा रहा हूं. बस, मैं हूं और मेरे साथ-साथ चल रहे नाटक हैं, जिनका एक-एक 'शो' मेरा आह्वान करता है कि नन्हीं-नन्हीं हथेलियों में टिमटिमाते ये दिये अब सधने लगे हैं. इन हथेलियों को मजबूत करते जाओ.

यह भी तो एक लड़ाई है, एक आंदोलन है. और आंदोलन में इस बात की प्रतीक्षा नहीं की जाती कि पहले कोई और आगे आये. आंदोलन तो तभी सफल होता है, जब सारे के सारे लोग आगे से आगे आने की होड़ लगायें, मगर ये बातें मैं अम्मा को कैसे समझाऊं.

अम्मा कहती हैं कि शादी कर लो फिर चाहे सारी रात नाटक करना. सब कहने की बातें हैं. फिर यही अम्मा होंगी जो नाक में दम कर देंगी कि बहू घर में अकेली रह जाती है. मेरी सारी जिंदगी सबको दुकेला करने में ही बीत जायेगी, मेरा स्टेज अकेला छूट जायेगा. देखा तो था मुकुल दा को. क्या शान बघारा करते थे, "स्टेज इज माई फर्स्ट लव." शादी करने के बाद से पांच प्रोडक्शंस हो चुके हैं, मुकुल दा की सूरत नजर नहीं आयी. अरे, किसको फिर फुरसत मिलती है. चार दिन बाद बीवी का रोना शुरू कि आप तो रिहर्सल में चले जाते हैं मैं क्या करूं? आज बच्चों-को नजला बुखार है तो कल... उफ, जिंदगी का सत्यानाश करना हो तो यह बवाल पाले.

मगर अब इस नाटक को बंबई जाना है न, सो मुकुल दा का स्टेज का पहला प्यार फिर जोर मारने लगा. किसी रोल के न रहने पर भी रिहर्सल में सबसे पहले पहुंचने लगे हैं. फोकट में बंबई घूमने को मिलने की इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है. कुछ नहीं तो इंतजाम करने वालों में ही शामिल कर लिया जाये. ऐसे लोगों ने तो एकदम मिट्टी खराब कर रखी है. अनुराग अग्निहोत्री अपनी बीमार बिटिया को छोड़कर शो करने जा रहा है. दिव्या में इतना उत्साह और समर्पण है कि एक्सीडेंट में घायल होने के बावजूद जाने को तैयार है. मेरे घर में जो मोर्चा खुला हुआ है, वह सबसे विकट है. और ये आये हैं बड़े पृथ्वीराज कपूर बनकर कि स्टेज इज माई फर्स्ट लव! कमबख्त, मौकापरस्त लोग. कल जाना है. सारे दिन 'फोल्डिंग सेट' तैयार करवाने में कमर टूट गयी. न खाने का पता न पानी का. ऐसे में मुकुल दा इतना ही कर देते कि एक बार आकर पूछ लेते कि कोई जरूरत तो नहीं है. मगर कुछ नहीं. अभी इतनी समझ और किसी काम को अपना मानने का शऊर आने में समय लगेगा.

आज जाना है. सारी तैयारियों में समय का पता ही नहीं लगा. कल रात मैं जल्दी घर वापस आना चाहता था जिससे कि जाने के एक दिन पहले कम से कम अम्मा को अपनी तरफ से मना लेता, कुछ समझाने की कोशिश कर लेता, अपनी मजबूरी बताता, मगर...

रोज की तरह अम्मा ने सांकल खोल दी थी और... 'हे राम' की निःश्वासों के साथ लेट गयी थीं. मैं काफी देर तक अंधेरे में उनके कमरे के बाहर बरामदे में खड़ा रहा. शायद अम्मा कुछ पूछें, मगर अम्मा सिर्फ करवटें बदलती रहीं और चारपाई की चरमराहट रात के अंधेरे सन्नाटे में और भी तेज सुनाई देती रही. अपराधबोध और शर्मिंदगी में आकंठ डूबा मैं इस तरह की चुप्पियों को तोड़ने की पहल कभी नहीं कर सका. कल रात भी नहीं कर पाया. क्या कहता अम्मा से कि मेरी निर्दयता पर भी तुम खुश रहो? क्या कहता

यह कोई नाटक नहीं है

नवनीत मिश्र

"तुम क्या सोचती होगी अम्मा कि तुमने कैसा बेटा पैदा किया है, जो इस हद तक आत्ममुग्ध है कि अपने साथ जुड़ी एक मां को भी साथ लेकर न चल सके. मगर मैं क्या करूं अम्मा, मैं तुम्हारा बेटा हूं, मगर साथ ही कुछ और भी तो हूं. कितना अजीब लगता है यह कहना कि मैं तुम्हारे सामने कुछ और भी हूं या हो सकता हूं. ऊपर ऊपर फैलती चली जाने वाली महत्वाकांक्षाओं की थेथर जलकुंभी उसी जल को ढक देती है, जिससे वह पैदा होती है." घर और रंगमंच की जिंदगी के टकराव का अनूठा दस्तावेज—

▣ प्रथम पुरस्कार विजेता कहानी

यह इस महीने का चौथा मौका है जब अम्मा और मेरे बीच अबोला ठन गया है. इस अबोले की घोषणा अम्मा की चुप्प से हो जाती है. अम्मा ऐसी स्थिति में शब्दों का उपयोग नहीं करतीं, उनके संकेत ही काफी होते हैं इस चुप्पी की घोषणा करने के लिए.

'शेव' के लिए गर्म पानी से भरी प्लास्टिक की कटोरी कमरे की चौखट पर सरकाकर चले जाना, मेरे नहाने जाते ही थाली परोसकर कमरे में चुपचाप रख जाना, घर से निकलते समय जल्दी लौट आने के लिए न कहना और ठीक उसी समय ठाकुरजी की पूजा में व्यस्त हो जाना—अम्मा के कुछ ऐसे संकेत हैं—जिनके माध्यम से वह कह देती हैं कि मैं अपना काम किये जा रही हूं, बाकी तुम जानो और तुम्हारा काम जाने. रात देर से लौटने पर सोयेंगी नहीं, लेकिन डाटेंगी भी नहीं, सांकल खोलकर बिना एक भी शब्द बोले अपने कमरे में चली जायेंगी और 'हे राम' के दीर्घ निःश्वास के साथ लेट रहेंगी. अम्मा का एक 'हे राम' उनकी संपूर्ण व्यथा का चीत्कार बनकर सारे घर में गूंज उठता है. कमरे में जाकर जब मेज पर औंधाई हुई थाली के नीचे रखा खाना देखता हूं तो सूख कर ठंडी हो गयी रोटियां मुझे अम्मा की हथेलियों जैसी लगने लगती हैं. दिनभर की थकी अम्मा ऐसी स्थितियों में रात गये करवटें बदलती रहती हैं, और हर करवट पर उनकी चारपाई की चरमराहट उनकी उड़ गयी नींद की सूचना देकर मुझे जगाये रखती है. अम्मा मुझसे हार गयी हैं.

अम्मा की नाराजगी कभी विस्फोट से शुरू नहीं होती. काम करते-करते उनकी पिंडलियों में जब दर्द की टीस उभरती है, ऐसी चुप्पी के शुरू हो जाने के संकेत मिलने लगते हैं. जब-जब उनके झुर्री पड़े कांपते हाथों से बरतन छूटकर गिरने लगते हैं तब-तब उस झन्नाहट के पीछे अम्मा कहती हुई-सी लगती हैं, "अब मुझसे कुछ हो नहीं पाता, बेटा!" एक रोटी तवे पर डालकर दूसरी लोई उठाने के बीच अम्मा को सुस्ताने की मुद्रा में बैठते देख एक बार जब मैंने महराजिन लगाने की राय दी थी तो अम्मा एक दम से फट पड़ी थीं :

"आग लगे महराजिन को. जिंदगी भर महराजिन का बनाया खाओ और छुट्टा घूमते रहो आधी-आधी रात तक."

"कोई आवारागर्दी तो नहीं करता."

"यह मैंने कब कहा?" फिर अम्मा एकदम मनाने पर उतर आयीं, "अरे इत्ते बड़े हो गये. अपना घरद्वार संभालो, मुझसे और कब तक रोटियां थोपवाते रहोगे, फिर क्या बुढ़ापे में ब्याह करोगे. बाद में याद करोगे अम्मा की बातें. कर लो ब्याह, थोड़े दिन तुम्हारी बहू को भी प्यार कर लूं." अम्मा के स्वर में बच्चों जैसी घिघियाहट तिर आयी.

"कोई ढंग की लड़की तो मिले, किससे कर लूं शादी?" मैं अम्मा की पसरी हुई हथेली में आश्वासन का एक बेहद घिस गया सिक्का रख देता हूं, "कित्ती सारी तो फोटुएं आयीं,

तुम्हें कोई रुचि ही नहीं." अम्मा ने उत्साहित होकर कहा, "इन फोटो को देखकर लगता है अम्मा कि ये लड़कियां पड़ोसियों के बच्चे खिला-खिलाकर बड़ी हुई हैं." मैं अपने ही मजाक पर हंस पड़ने को था, लेकिन अम्मा की फटकार से खिसियाकर रह गया. "बस-बस, ज्यादा बना मत करो. ब्याह करो या मत करो, पर परायी लड़कियों की ऐसे खिल्ली मत उड़ाओ. तुम्हारे आगे भी लड़कियां आयेंगी तब जानोगे. आये बड़े कहीं के. इनके लिए ऊपर से कोई परी आयेगी." अम्मा का बड़बड़ाना दूर तक सुनाई देता रहा.

बात कहीं से भी शुरू हो, उसको खत्म ऐसे ही होना होता है. और इतना काफी होता है मेरे और अम्मा के बीच संवाद के टूटने के लिए.

जब अबोला नहीं रहता, तब बातें होती हैं. मगर वह बात नहीं होती. विवाह जैसे अप्रिय प्रसंग की—दुष्टात्मा के प्रवेश को रोकने के लिए घर को किलियाने जैसा कुछ होता है. वह कोशिश होती है घर में व्याप्त मनहूस सन्नाटे को तोड़ने की. लेकिन मेरी लाख कोशिशों के बावजूद, कि बात उस दिशा में न जाने पाये जहां मैं निरुत्तर हो जाता हूं, वैसा हो ही जाता है. सामान्य तौर पर सहज-सी लगने वाली कोई बात कैसे एक व्यूह में घिर जाती है. कई बार ऐसा हुआ कि नितांत अप्रासंगिक और महत्वहीन बातों की चिकनी चमकदार पटरियां अप्रत्याशित रूप से जंग खायी हुई 'डेड लाइन' से जा मिली हैं.

अभी उसी दिन. "तुम्हारे बाबूजी की फोटो में नमी आ गयी है, इसे फिर से मढ़वा दो." अम्मा ने आंचल शीशे पर फिराया जैसे शीशे के ऊपर से ही फोटो की नमी साफ कर देंगी. अम्मा की आंखें एकटक बाबूजी की तस्वीर पर टिकी थीं. "अम्मा, बाबूजी जब नहीं रहे थे, तब मैं कितना बड़ा था?" मेरे पास बाबूजी की याद करने के लिए इस सीलन खायी तस्वीर के अलावा और कुछ नहीं है. अम्मा से बाबूजी के बारे में बातें करना अच्छा लगता है मुझे.

"तू तो इत्ता-सा था. तेरे हिस्से का रोना भी मैं ही रोयी थी." अम्मा ने एक हाथ जमीन से डेढ़ फुट ऊपर उठाकर बताया. अम्मा की आंखें बाबूजी की बुझी हुई ठंडी चिता की राख के ढेर जैसी हैं जिनमें धू-धू और चट-चट की आवाजें और लपटें तो नहीं, पर राख की शक्ल में बदल गये जीवन की भयावह उदासी है.

"तुम्हारी शादी कितने बरस में हो गयी थी?"

"अरे पहले के जमाने में जवान होने से पहले कन्यादान कर देना पुन्न समझा जाता था. आज के जैसे थोड़े ही, धींगड़ी-सी घूमा करती हैं बिना ब्याह के. अब तुम जानो, हम नौ बरस के थे और तुम्हारे बाबू बारा-तेरा के. अरे, मेरा उस समय का छोटा-सा लहंगा कोई देखे तो हंसे."

कहते हुए अम्मा एक भारी संदूक उठाने के लिए फुर्ती से उठ खड़ी हुईं. मैंने उनको एक तरफ हटाकर संदूक जमीन पर रख दिया.

संदूक खुलते ही जमाने से बंद पड़े कपड़ों से किसी समय खूब गमका करने वाले इत्र का उलझा-सा पता देने वाली और अतीत की स्मृतियों की मिली-जुली महक कमरे में दौड़ गयी.

"यह देखो, उस जमाने में कैसा लिहाज होता था बड़ों का. आज के जैसे नहीं कि मां-बाप के सामने हाथ में हाथ डाले घूमो, बेटा अपनी बीवी के लिए बाप से लड़ जाये. फोटू जब खिचवायी थी तो 'ये' बड़े परेशान. इनके बाबूजी, इनकी अम्मा, सारे लोग. बड़े शरमाये कि एक साथ कैसे फोटू खिचायें बाबू, अम्मा के सामने. फिर ये देखो मुझे यहां अपने बाबूजी के पास बिठा दिया और खुद एकदम किनारे जाकर खड़े हो गये."

अम्मा 'ब्लैक एंड ह्वाइट' से 'सीपिया' हो गयी एक बड़ी-सी फोटो मेरे हाथों में देते हुए बताने लगीं. दीमक की चाटी हुई फोटो में कोई भी चेहरा या किसी भी व्यक्ति की स्थिति स्पष्ट नहीं थी, पर अम्मा अपनी याददाश्त के सहारे उत्साह के साथ उंगली रख-रखकर बता रही थीं—"ये देखो, यहां तुम्हारे बाबा, ये हम हैं, ये दादी बैठी हैं, ये बड़े चाचा हैं, ये फलां हैं, ये फलां हैं, ये-ये जाने कौन हैं और ये यहां पर खड़े हैं तुम्हारे बाबूजी!" अम्मा की सहलाती-सी उंगली एक काले से धब्बे पर जाकर रुक गयी और काफी देर वहीं कुछ तलाश करती-सी रुकी रही.

चांदी और सोने के कामवाली खूब भारी-भारी गंजी पड़ी साड़ियों, डोरियों से खुलने और बंद होने वाले रंगीन बटुओं में जार्ज पंचम और विक्टोरिया के जमाने के खनकते हुए चांदी के सिक्के और इन सबसे घिरी बैठी अम्मा गये कल का उत्सव-सा मनाती लग रही थीं.

"तभी तो तुम्हारी चिरौरी करती हूं. ब्याह कर लो, मैं बहू को यह सब सौंपकर निश्चित हो जाऊं. बोलो, बात चलाऊं बरेलीवालों के यहां?" मुझे लालच-सा देती अम्मा की आंखें बेहद-बेहद प्यारी हो उठीं.

"बरेली में तो शायद बंद हो गया. अम्मा, तुम आगरा या रांची में बात क्यों नहीं चलातीं?" मैंने हंसते हुए अम्मा को जोर से अपनी बाहों में कस लिया. "नहीं, मजाक मत करो.

▣ नवनीत मिश्र

जन्म 1947, लखनऊ में.

लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातक. 1969 से अनियमित लेखन, विभिन्न पत्रिकाओं में 14-15 कहानियों का प्रकाशन. एक कहानी संग्रह शीघ्र प्रकाश्य. संप्रति आकाशवाणी गोरखपुर में समाचार वाचक. इनका मानना है कि "बाहर जो कुछ एक बार घटित होता है, अंदर उसकी अनुगूंज हमेशा बनी रहती है. वह प्रतिध्वनियां होती हैं, जो एक दबाव-सा डालती रहती हैं. मेरी कहानियां ऐसी प्रतिध्वनियों का उल्था हैं."

तुम नहीं जानते, मेरा अकेले कितना जी घबराता है. मेरा दिल बहलाने के लिए ही बहू ला दो. मेरे अकेलेपन पर तरस खाकर ही शादी कर लो. तुम ब्याह कर लो, फिर चाहे सारी रात नाटक और रिहर्सल करना. फिर मैं तुमसे कुछ कहूं तो मुझसे कहना. इस बात को यहां आना ही था. मां की यादों और भविष्य की योजनाओं के अच्छे भले चल रहे खेल में किसी पाजी लड़के की तरह भरभंडा मचा देने का साहस मैं नहीं जुटा सका. ना नहीं कह सका, लेकिन हां भी मुंह से नहीं निकला. मेरे मौन को स्वीकृति समझकर अम्मा ने हर्षातिरेक से अवरुद्ध हो गये कंठ से कहा, "तो फिर आज ही उन्हें चिट्ठी भेज देती हूं."

"नहीं, अभी नहीं!" कहकर तेजी से मैं उनके सामने से निकल जाने को आगे बढ़ा, मगर हमेशा की तरह अम्मा ने मुझे चले नहीं जाने दिया. संदूक और उसके चारों ओर बिखरे सामान को फलांगती हुई मेरे सामने आ खड़ी हुई, "अभी नहीं तो कब? मेरे मरने के बाद? तुम्हारे मन में मेरे लिए कोई दया नहीं, कोई ममता नहीं. सारा दिन मुझे खटते हुए तुम कैसे देख पाते हो? मैं सारे दिन तुम्हारी सूरत देखने को तरसती रहती हूं और तुम ऑफिस से सीधे रिहर्सल में चल देते हो. सबेरे से रात तक घर से बाहर रहते हुए तुमको मेरी याद कभी नहीं आती? तुम्हारा मन कभी सब कुछ छोड़-छाड़कर घर भाग आने को नहीं करने लगता? तुम्हें कभी ध्यान नहीं आता कि जिस समय तुम नाटक में नकली आंसू बहा रहे होते हो, उस समय मैं अपने दर्द से ऐंठते पैरों को अपने जुंजगुन हाथों से दबाकर आराम पाने की कोशिश में सचमुच रो रही होती हूं. तुम्हें पैदा किया, तुम्हारे अत्याचार सहने होंगे, मगर एक बात आज कान खोलकर सुन लो.—तुम्हारा यह नाटक-वाटक का चक्कर मुझे फूटी आंखों नहीं सुहाता."

अम्मा का संदूक में सहेजा हुआ अतीत और भविष्य के सपनों की कोंपलें फर्श पर बिखरी पड़ी थीं. अम्मा के दर्द से चीथ कर रख दिया गया मैं जड़ बना खड़ा रह गया. और उस दिन के बाद से अम्मा ने इस बारे में मुझसे कोई बात नहीं की. अम्मा ने जैसे मौन के एक दूसरे बेटे को गोद ले लिया.

अम्मा को नाटक-वाटक फूटी आंखों नहीं सुहाता और मुझे नाटक-वाटक के अलावा और कुछ नहीं सुहाता. ऐसा नहीं है कि मैं मां के कष्ट, उनकी मजबूरी और उनकी आवश्यकताओं को नहीं समझता, पर थियेटर भी मेरे लिए महज शामें गुजारने का जरिया नहीं है. नाटक में मेरे प्राण बसते हैं, यह बात मैं अम्मा को कैसे समझाऊं? अभी उसी दिन अम्मा ने मामाजी के सामने पेशी करवा दी थी और मामाजी ने भी एक वाक्य में सारा मुकद्दमा निपटा दिया था, "क्या फिजूल के काम में लगे हो जी." मामाजी का वाक्य 'फिजूल के काम में' एक लंबे समय तक हथौड़े की तरह कनपटी पर बजता रहा था. नाटक फिजूल है. साहित्य फिजूल है, कविता फिजूल है, पेंटिंग फिजूल है, गायन फिजूल है, नृत्य फिजूल है, मूर्ति गढ़ना, चित्र बनाना फिजूल है, सारी ललित कलाएं फिजूल हैं? निरर्थक हैं? तो फिर सार्थक क्या है? मामाजी की तरह दिन भर बैंक का लेजर भरकर शाम को लेटे-लेटे पंखा झलते हुए उबासी लेना ही जीवन की सार्थकता है? रात आठ बजे तक खाना निबटाकर महरी के लिए चौका खाली करने में पत्नी को सहयोग देने में ही जीवन की सार्थकता है? मैं अगर अपने को नापने बैठूं तो लगता है कि मैं लेखक बन सकता था. मंच पर लगाये गये सेट पर अपनी चित्रकारी देखकर लगता है कि मुझमें चित्रकार बनने की भी खासी संभावनाएं थीं. मैं कोई वाद्य सीख सकता था, मगर मैंने चुना अभिनेता बनना, जो महीनों के रिहर्सल के बाद ढाई घंटे की जिंदगी जीता है. मैंने चुनीं अपने संवादों पर मिलने वाली वे तालियां, जिन्हें हाल से बाहर निकलने तक शायद हथेलियां भी भूल जाती हैं, लेकिन महीनों के रिहर्सल के बाद ढाई घंटे की स्टेज की जिंदगी में एक अभिनेता के लिए कोई एक चिर आकांक्षित सिचुएशन, कोई एक संवाद होता है, जिसके सफल निर्वाह के बाद नाटक करना, सारा समय, सारी मेहनत सार्थक हो जाती है. कुछ अति बुद्धिमान लोगों के लिए जिंदगी की बेहद जरूरी चीजें फिजूल होती हैं. नाटक के अपने इस खब्त को जीता हुआ मैं किसी 'तुगलक' से कम नहीं होता. रोज अपने दिमाग में बनने वाली नाटक की नयी-नयी योजनाओं को साकार करने के रास्ते में आने वाली किसी भी कमजोरी या बाधा से मैं कोई समझौता नहीं करता.

'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास को कोई मेरी चेतना से जीता तो जानता कि फिजूल-सी लगने वाली इस विधा को स्थापित करने की यात्रा में मैं क्या से क्या हुआ हूं, कितना क्या-क्या कुछ देखा है. कितनी बार मेरे सादे घरेलू अतीत ने मुझे बांह पकड़कर वापस खींचने का प्रयास किया है, मगर नाटक ही मेरा सत्य है, मेरा धर्म है. 'अंधा युग' के युयुत्सु की

तरह घर लौटता हूं तो मौन खड़ी अम्मा गांधारी की तरह पूछती-सी लगती हैं—

बेटा,
भुजाएं ये तुम्हारी
पराक्रम भरी, थकी तो नहीं
अपने बंधु जनों का वध करते करते—

अम्मा के अरमानों की अक्षौहणी कौरव सेना का पक्ष लेना मुझे असत्य और अधर्म का पक्ष लेने जैसा लगता है. अम्मा का जाया मैं हूं और अम्मा ने ही जने हैं ये अरमान, जिनके विरुद्ध मैंने जैसे हथियार उठा रखे हैं, लेकिन कभी-कभी सोचता हूं कि आज नाटक प्रेम के जिन पांडवों का मैं साथ दे रहा हूं, कल उन्हीं से अपमानित और तिरस्कृत भी होना पड़ सकता है, पर मुझे इसकी चिंता नहीं. खिल्ली उड़ने और तिरस्कृत होने की चिंता युयुत्सु को कभी नहीं रही.

मैं अम्मा को कैसे समझाऊं कि किसी पात्र को जीना अपने आप में कैसा अनुभव होता है. परकाया में प्रवेश करने का रोमांच ही तो मेरा नशा है.

वैसे अम्मा भी ठीक कहती हैं. मैं उनकी काया में प्रवेश करके उन्हें क्यों नहीं जी पाता? उनके निपट अकेलेपन को, उनकी अनवरत प्रतीक्षा को, उनकी पिंडलियों के अनसहलाये दर्द को मैं क्यों नहीं जी सका आज तक? क्यों मेरी दिनचर्या ऑफिस और थियेटर के बीच ही बंटकर रह गयी है, जिसमें मेरी उदास और दुखी अम्मा के लिए कोई वक्त नहीं है? चार घंटों की रिहर्सल के बाद क्या जरूरी है कि घर जल्दी भागने के बजाय चौराहों पर खड़े होकर नाटक के गुण-दोषों की आधी रात तक जुगाली की जाये. नाटक के लिए अभिनेताओं को जुटाने से लेकर टिकट बेचने और 'शो' आयोजित करने की सारी व्यस्तताओं के बीच क्या मुझे अपनी और कोई जिम्मेदारी याद नहीं आनी चाहिए.

मगर मैं जानता हूं कि यह है और अपने इसी रूप में है. सचमुच जो नाटक करते हैं, वे फिर नाटक ही ओढ़ते और नाटक ही बिछाते हैं. जो लोग सचमुच नाटक करते हैं, वे फिर और कुछ नहीं करते. मैं थियेटर की सारी तंग गलियों को जानता हूं. जो लोग सचमुच नाटक के लिए सोचना चाहते हैं उन्हें अपने निजी सोचों से ऊपर उठना पड़ता है. मैं सारी टूटन अपनी इन्हीं आंखों से देख रहा हूं, उस सारे विघटन को अपने ऊपर सह रहा हूं इस उम्मीद में कि कल इस टूटन और विघटन से कुछ नया बनेगा. कलकत्ता और बंबई की तरह मेरे शहर, मेरे प्रदेश और सारे देश में रंगमंच भी एक व्यवसाय के रूप में मान्यता पायेगा. 'सेल्युलाइड' के सामने सीना तानकर खड़ा होगा मेरा रंगमंच. नाटकों के शो में, 'हाउस फुल' का बोर्ड लटका देखने की महत्वाकांक्षा पाले मैं अम्मा को टूट जाने दे रहा हूं. एकदम असामाजिक-सा होता जा रहा हूं. बस, मैं हूं और मेरे साथ-साथ चल रहे नाटक हैं, जिनका एक-एक 'शो' मेरा आह्वान करता है कि नन्हीं-नन्हीं हथेलियों में टिमटिमाते ये दिये अब सधने लगे हैं. इन हथेलियों को मजबूत करते जाओ.

यह भी तो एक लड़ाई है, एक आंदोलन है. और आंदोलन में इस बात की प्रतीक्षा नहीं की जाती कि पहले कोई और आगे आये. आंदोलन तो तभी सफल होता है, जब सारे के सारे लोग आगे से आगे आने की होड़ लगायें, मगर ये बातें मैं अम्मा को कैसे समझाऊं.

अम्मा कहती हैं कि शादी कर लो फिर चाहे सारी रात नाटक करना. सब कहने की बातें हैं. फिर यही अम्मा होंगी जो नाक में दम कर देंगी कि बहू घर में अकेली रह जाती है. मेरी सारी जिंदगी सबको दुकेला करने में ही बीत जायेगी, मेरा स्टेज अकेला छूट जायेगा. देखा तो था मुकुल दा को. क्या शान बघारा करते थे, "स्टेज इज माई फर्स्ट लव." शादी करने के बाद से पांच प्रोडक्शंस हो चुके हैं, मुकुल दा की सूरत नजर नहीं आयी. अरे, किसको फिर फुरसत मिलती है. चार दिन बाद बीवी का रोना शुरू कि आप तो रिहर्सल में चले जाते हैं मैं क्या करूं? आज बच्चों-को नजला बुखार है तो कल... उफ, जिंदगी का सत्यानाश करना हो तो यह बवाल पाले.

मगर अब इस नाटक को बंबई जाना है न, सो मुकुल दा का स्टेज का पहला प्यार फिर जोर मारने लगा. किसी रोल के न रहने पर भी रिहर्सल में सबसे पहले पहुंचने लगे हैं. फोकट में बंबई घूमने को मिलने की इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है. कुछ नहीं तो इंतजाम करने वालों में ही शामिल कर लिया जाये. ऐसे लोगों ने तो एकदम मिट्टी खराब कर रखी है. अनुराग अग्निहोत्री अपनी बीमार बिटिया को छोड़कर शो करने जा रहा है. दिव्या में इतना उत्साह और समर्पण है कि एक्सीडेंट में घायल होने के बावजूद जाने को तैयार है. मेरे घर में जो मोर्चा खुला हुआ है, वह सबसे विकट है. और ये आये हैं बड़े पृथ्वीराज कपूर बनकर कि स्टेज इज माई फर्स्ट लव! कमबख्त, मौकापरस्त लोग. कल जाना है. सारे दिन 'फोल्डिंग सेट' तैयार करवाने में कमर टूट गयी. न खाने का पता न पानी का. ऐसे में मुकुल दा इतना ही कर देते कि एक बार आकर पूछ लेते कि कोई जरूरत तो नहीं है. मगर कुछ नहीं. अभी इतनी समझ और किसी काम को अपना मानने का शऊर आने में समय लगेगा.

आज जाना है. सारी तैयारियों में समय का पता ही नहीं लगा. कल रात मैं जल्दी घर वापस आना चाहता था जिससे कि जाने के एक दिन पहले कम से कम अम्मा को अपनी तरफ से मना लेता, कुछ समझाने की कोशिश कर लेता, अपनी मजबूरी बताता, मगर...

रोज की तरह अम्मा ने सांकल खोल दी थी और... 'हे राम' की निःश्वासों के साथ लेट गयी थीं. मैं काफी देर तक अंधेरे में उनके कमरे के बाहर बरामदे में खड़ा रहा. शायद अम्मा कुछ पूछें, मगर अम्मा सिर्फ करवटें बदलती रहीं और चारपाई की चरमराहट रात के अंधेरे सन्नाटे में और भी तेज सुनाई देती रही. अपराधबोध और शर्मिंदगी में आकंठ डूबा मैं इस तरह की चुप्पियों को तोड़ने की पहल कभी नहीं कर सका. कल रात भी नहीं कर पाया. क्या कहता अम्मा से कि मेरी निर्दयता पर भी तुम खुश रहो? क्या कहता

कि मेरे रात गये लौटने के कारण जो तुमने एक समय का उपवास यह कहकर शुरू कर दिया है कि दोनों समय का खाना तुम्हें अब हजम नहीं होता, इससे तुम्हारे लायक बेटे को बड़ा दुःख है, मगर वह अपनी दिनचर्या बदलने में असमर्थ है? कभी बोलचाल के दिनों में अम्मा को बताया था कि आज की तारीख में मुझे नाटक लेकर बंबई जाना है, मगर आज क्या कहूं? किन शब्दों को अपने चेहरे पर डाल लूं कि अम्मा से निगाहें बचाता हुआ घर से निकल सकूं. कैसे कहूं कि दस दिन तक तुम मेरी रात को आदतन प्रतीक्षा करती रहोगी और मैं दर्शकों से मिलने वाली तालियों में मगन रहूंगा. कैसे कहूं कि पिछले तीस दिनों में चौथी बार रूठने और पांच दिनों से बातचीत बंद होने के बाद भी मैं वही करने जा रहा हूं, जो तुमको फूटी आंखों नहीं सुहाता.

तुम क्या सोचती होगी अम्मा कि तुमने कैसा बेटा पैदा किया है जो इस हद तक आत्ममुग्ध है कि अपने साथ जुड़ी एक मां को भी साथ लेकर उसका मन रखता हुआ न चल सके? मगर मैं क्या करूं अम्मा? मैं तुम्हारा बेटा हूं, मगर साथ ही कुछ और भी तो हूं. कितना अजीब लगता है यह कहना कि मैं तुम्हारे सामने कुछ और भी हूं या हो सकता हूं. ऊपर-ऊपर फैलती जाने वाली महत्वाकांक्षाओं की बेधर जलकुंभी उसी जल को ढक देती है, जिससे वह पैदा होती है. मुझे लगता है कि मैं भी तुमसे जीवन लेकर, सींचा जाकर, तुम्हारे ऊपर जबरन फैल रहा हूं. अपनी महत्वाकांक्षाओं, अपने यश और सपनों की दूर तक दिखने वाली हरियाली के नीचे तुम, मेरी मां, पानी की तरह सड़ रही हो. है न कितनी विचित्र बात मेरी मां कि मेरे सामने जब तुम्हें या अपने अंदर के उस 'कुछ और भी' में से किसी एक को चुनने का मौका आता है, तब मैं तुम्हारे साथ आ खड़े होने की इच्छा रखते हुए भी चल निकलता हूं दूसरी ओर. अटैची में सामान लगाने में मुझे ज्यादा समय नहीं लगता, मगर आज मेरे हाथ चल ही नहीं पा रहे हैं. अम्मा कमरे के सामने से कई बार आ-जा चुकी हैं. हर बार जबान हिलती है कि मां को बुलाऊं, उनसे कहूं कि मैं जा रहा हूं, लेकिन सूख गये गले से आवाज नहीं, एक खसखसाहट ही निकल पाती है.

मैं अम्मा के सामने जाकर खड़ा हो गया. मौन की अवधि तेजी से बढ़ने लगी. अटैची के हैंडिल की उभरी चमड़े की नाली मेरी गदेली पर चुभने वाला दबाव डालने लगी. उससे मुक्ति पाने के लिए मैंने अपनी भिंची मुट्ठी को थोड़ा ढीला कर दिया. एक हाथ बुशर्ट की सिलवटें ठीक करने में व्यर्थ ही व्यस्त हो गया.

नीची निगाहों के सामने अम्मा के पैर थे. अम्मा के पैरों में कितनी बिवाई फट गयी है. मेरा मन हो आता है कि अम्मा के पैरों की फटी बिवाई को सहला दूं.

मैंने अटैची जमीन पर रख दी.

झुककर पैरों को छू भी न पाया था कि अम्मा ने पिघलती हुई आवाज में कहा, "जाओ, खूब अच्छा-अच्छा करना." □

• आकाशवाणी, गोरखपुर-273001.

सौंदर्य की विडंबना

■ पाब्लो नेरुदा

मेरा अकेला बंगला शहर से काफी दूर था. जब मैंने इसे किराये पर लिया, तभी मैंने इसकी खोज की कि इसमें पाखाना किधर है, मैं इसे कहीं खोज नहीं सका. दरअसल यह स्नानगृह के आसपास था ही नहीं, बल्कि मकान के पिछवाड़े बना हुआ था. मैंने उत्सुकता के साथ इसका मुआयना किया. यह एक काठ के संदूक जैसा था, जिसके बीचों-बीच एक छेद था.

यह डब्बा रोज सवेरे साफ हो जाता था, लेकिन मुझे बिल्कुल जानकारी नहीं थी कि कैसे इसकी सामग्री गायब हो जाती है.

एक सुबह मैं रोज की अपेक्षा जरा जल्दी उठ गया और तब जो कुछ वहां हो रहा था, उसे देखकर आश्चर्य-चकित रह गया.

मकान के पिछवाड़े, किसी सांवली मूर्ति सी चलती हुई एक बेहद खूबसूरत औरत आयी. इतनी सुंदर स्त्री मैंने श्रीलंका में पहले कभी नहीं देखी थी. वह पेरिया जाति की तमिल स्त्री थी.

वह चुपचाप चलती हुई पाखाने की ओर गयी. बिना मेरी ओर देखे, मेरे अस्तित्व को पूरी तरह नकारती हुई और उस गंदगी से भरे डब्बे को अपने सिर पर उठाकर गायब हो गयी.

वह इतनी मोहक थी कि उसके इस निहायत तुच्छ काम के बावजूद मैं उसे अपने दिमाग से नहीं निकाल सका. किसी शर्मीले वन्य प्राणी की तरह वह किसी दूसरे तरह के अस्तित्व की थी, एक दूसरी ही दुनिया की प्राणी. मैंने उसे पुकारा, लेकिन कोई फायदा नहीं. इसके बाद, मैं कभी-कभी उसके रास्ते पर कोई तोहफा रख देता, जैसे रेशम का कोई कपड़ा या कोई फल. वह बिना कुछ देखे-सुने चुपचाप गुजर जाती थी.

एक सुबह मैंने उसकी कलाई पकड़ ली और उसकी आंखों में आंखें डालकर उसे घूरा. मेरे पास भाषा नहीं थी कि मैं उससे बात कर पाता. बिना हंसे बिना मुस्कराये, उसने अपने आपको मेरे साथ हो जाने दिया और थोड़ी देर बाद ही वह मेरे बिस्तर पर निर्वस्त्र हो चुकी थी. बहुत-बहुत अधिक पतली उसकी कमर, भरे पूरे पृष्ठ और छातियों ने उसे दक्षिण भारत के हजारों साल पुराने कलात्मक मूर्ति-शिल्पों की तरह बना दिया था. यह एक पुरुष और एक मूर्ति का सहवास था. बिना किसी प्रति-क्रिया के उसने उस दौरान लगातार अपनी आंखें पूरी तरह खुली रखीं. मुझे नगण्य और बिल्कुल ही तुच्छ बनाने में वह पूरी तरह सफल थी.

यह अनुभव फिर कभी दुहराया नहीं जा सका. □

• अनुवाद : उदय प्रकाश

■ द्वितीय पुरस्कार विजेता कहानी (मराठी)

दो अंकों में समाप्य

अग्नि सर्प

श्री० दा० पानवलकर

आदमी दरअसल, बीमार या बूढ़ा शरीर से होता है या मन से? अस्पताल की आंख रोगी के रोग की बजाय जेब पर क्यों टिकी रहने लगी है? जीने की इच्छा पैदा करने में किसी खेल की क्या भूमिका हो सकती है? रोग, रोगी, अस्पताल और क्रिकेट से जुड़े संदर्भों में विपरीत हालात में भी जीवन के महत्व का लेखा-जोखा.

चौंतीस की वेदना ने मुंह खोला. हठात् उस वेदना की फुफकार तिलक नस से निकलकर भौंहों के बीच में से होते हुए धारदार नासिका पुल के अग्रभाग पर ठिठक गयी. फिर तलवार कट मूंछ की कोर पर सवार होकर कुछ और नीचे को खिसक गयी. लेकिन दूसरे ही पल थिरक-मटककर बायीं ओर से फिर ऊपर की ओर आगे बढ़ी, फुफकारती हुई. बायें कान को ढकनेवाले घने घुंघराले बालों की लटों को झुलसाकर वह कनपटी के पीछे से होकर छोटे दिमाग पर सवार हो गयी. पुनश्च फन फैलाकर उसने फुंफकार भरी, हरी-नीली काली. अगले लक्ष्य की ओर समूची शक्ति के साथ तालव्य मार्ग से कूच कर गयी और सीधे तिलक नस से जा भिड़ी. जहां से चली थी वहीं लौट आयी. लपालप लपटें अपना प्रभाव दिखलाकर सीधे पुतलियों पर सवार हो गयीं. दाहिनी अर्ध-चर्या साढ़े चार कुंडलियों में सुलग उठी. सफेद सीपीदार खुरंड यही कोई नौ फुट होगी काया. शीशे के सामने धर दो तो शीशा चूर-चूर हो जाये, श्रवणेंद्रियां निश्चेतन हो जायें. अचेत-अश्रव्य मुद्रा, राम में से हराम तत्व को उजागर करने वाली—इस वार्ड की चौंतीस नंबर की खटिया पर छटपटा रही थी.

रात को डॉक्टर पावटे ने राउंड लिया, कान में 'स्टेथो' ठूंसकर. तीन फुट की दूरी पर ही ठिठक गये. आंखें गड़ाये रहे. चौंतीस के माथे की उसी नस को वे भांप गये. मरीज को देखने भर से ही चेहरा स्याह हो गया उनका.

वैसे भी चौंतीस ऊबड़-खाबड़ था. उसकी वेदना कराहने लगी. संवेदना राख हो गयी. तिलक नस में उफनता लावा और उसका त्रिशाखीय विस्तार. एक शाखा आंख की पुतली में, दूसरी गाल के गड्ढे में और तीसरी माथे के विस्तार में. कुल मिलाकर समूचे मस्तिष्क में सभी तरफ से आग की लपटों का घेरा. निद्रानाश. दाहिनी आंख भीतर ही ही कहीं खो गयी थी. खुलने का नाम नहीं ले रही थी. आधा सिर मारे दर्द के फटा जा रहा था.

"लेटे रहो चुपचाप," हाउसमेन नसीहत पिलाते रहे. चौंतीस के लथपथ चेहरे को घूरते हुए सिस्टर-डॉक्टर खड़े थे. पुष्ट-प्रौढ़ स्टाफ सिस्टर. सांवली हंसी बिखेरने वाली दूसरी और तीसरी प्रशिक्षु सिस्टर.

"फिलहाल टेरामाइसिन प्रेडनी सोलन, गैलीसूल, क्लोरोमाइस्टिन... देते रहो समझीं? सिलिका."

"यस डॉक्टर." पुष्ट-प्रौढ़ स्टाफ सिस्टर सिलिका ने हामी भरी.

"लास्ट वन ओरल?"

"ओफ...इट्स ऑइंटमेंट फॉर आइज," हाउसमेन ने झुंझलाकर कहा तो प्रशिक्षु राऊ सहमकर पीछे हट गयी और उसने थूक निगल लिया.

"यू डू दैट, केया."

"यस डॉक्टर," राऊ को पीछे हटाकर केया आगे हो ली और सांवली हंसी बिखेरती रही.

हाउसमेन चल दिये. उनके पीछे दो सिस्टर एड़ियां पटककर चल दीं. तीसरी राऊ उनींदी उबासी लेकर सुस्ताने लगी.

नारियल जटा के रेशों के ऊबड़-खाबड़ गद्दे पर चौंतीस लेटा था. ठोड़ी तक उढ़ाया गया जालीदार लाल कफन. सिरहाने एक टेबिल पर जगह-जगह से पिचका-टूटा डिब्बा और उसी से मिलता-जुलता लोटा, मुहाने पर दबा-पिचका.

राऊ आयी और गोलियां देकर चली गयी. फिर आयी.

कैपसूल हाथ में थमाकर, "निगल लो पानी के साथ," कह गयी. सिलिका आयी. उसने सूई लगायी और, "दर्द तो नहीं हुआ?" पूछकर वह दनदनाती हुई चली गयी. उसके जाने का एहसास हवा में तैरता रहा. अब केया की बारी थी. वह सिरहाने बैठकर विशाखित नसों को घूरने लगी. पलकें तानकर मोटी-मोटी आंखों से देखने के बाद वह खुद ही जैसे द्रवित हो उठी. "स्! आंख है या नागफनी का गोला?" कहकर उसने पलकें मूंद लीं. "तकलीफ हुई न?" कहकर प्लास्टिक की सिंदूरी फली का मुहाना छेदकर वह पुनः उसकी बंद आंख को घूरने लगी. ऊपर की पलकें फुलाकर वह जैसे पसीज गयी. स्निग्ध सूरमें की रेखा खींचकर उसने पलकें मूंद लीं. उसके होंठों से बरबस एक फूंक निकल गयी, "ये क्या कर लिया तुमने? आधा चेहरा विरूप हो गया है."

बंद आंखों से एक उसांस छोड़कर उसने देखा चुपचाप, कहने को था ही क्या उसके पास?

"अं..." के साथ ही उसकी ओर देखते हुए वह चार्ट पर ब्यौरा लिख रही थी, "मैंने जान-बूझकर तो नहीं किया. हो गया, बस! अब तुम्हारे कब्जे में हूं, जो चाहो करो." चौंतीस बिलबिलाया, बुदबुदाया, बची हुई आंख तरेरकर.

"पड़े रहो, पड़े रहो. आराम पड़ेगा." केया सांवली हंसी बिखेरकर चल दी.

"अम्मां... गे" तेईस

"ओ हो... हो..." बारह

"ना. ना..." सात

"भज गोविंदम्, भज गोपालम्, भज गोविंदम् मूढ़मते..." बत्तीस मस्ती से गा रहा था.

ग्यारह नंबर अत्यधिक व्यस्त था. पहले ही दिन खटोले से नीचे गिर गया था. इसलिए प्रौढ़ झूले में उसे लिटाया गया था. उसकी देखभाल करते हुए वॉर्ड बॉय विश्वंभर की नाक में दम आ गया. वॉर्ड बॉय ईश्वर की तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी. लेकिन उसने एक चाल चली. उसने तीन गुब्बारे झूले से लटका दिये.

उनमें से एक की हवा निकल गयी और वह सिकुड़कर लटकता रहा. हंः हः हंः....

"कौन हंस रहा है उधर?"

"मामा सो जा रे..." नंबर ग्यारह को विश्वंभर लोरी सुना रहा था. मामा झूले में लेटे-लेटे ही चीखता-चिल्लाता किसी भी समय 'बोम' मारकर पूरे वॉर्ड में हंगामा खड़ा कर देता.

"मैं गला फाड़कर चिल्लाताय! कोई तो भी सुनो!" दूसरे कोने से आवाज आयी. शायद तेईस हो.

सिलिका वहीं से बरस पड़ी, "क्या हो गया इस ईश्वर के बच्चे को? भगवान."

"मैं आताय, सिस्टर."

"पता नहीं, तेईस को क्या चाहिए? न इसका कोई टाइम है न कुछ..."

"अरे बाबा, जल्दी करो." तेईस जोर से चिल्लाया.

विश्वंभर तुरंत बेड पैन ले आया. "हं, अब चिंता नय... करो..."

"ये कायकू लाया बे भड़वे?"

"इसकी मां का..." बेड पेन पटककर, "बुड्ढा मौत गाली देताय." ईश्वर

राऊ देखी-अनदेखी कर आगे आयी, "टट्टी आती नय क्या बापू?"

बुड्ढा बुदबुदाया, "सिस्टर, तू मेरा बाप है, मैं तेरी मां मुझे चाहिए..." ईश्वर को उसके बेड पैन समेत एक हाथ से पीछे खींचकर विश्वंभर आगे आया. बुदबुदाया, "हां हां.. .अब लाइट लग गयी बरोबर..." और अपना सिर पीटकर पिचकारी मारने के से अंदाज में हंसकर उसने कहा, "इसको तो चाहिए शीशी, दारू की. मां की..." सिलिका फुर्ती से आयी. तेईस के मुंह में कैपसूल धर दिया और पानी उंडेलकर, "पी लो. वो शीशी यहां नहीं मिलती बूढ़े बाबा. लेटे रहो चुपचाप." कहा उसने और उसी फुर्ती से चली भी गयी.

उसके तुरंत बाद ईश्वर ने कड़ककर कहा, "लेट बे चुपचाप. वो कपिलदेव देख कैसे भजन गाताय रात-रात भर."

तेईस मुंह लटकाये पड़ा रहा.

उल्टी बोतलें टांगने के स्टेंड. दो नंबर आक्सीजन पर था. सिलिंडर पड़ा था दीवार के सहारे. एक मरीज की नाक में हर पुड़िया के साथ रबड़ की नली ठूंस दी जाती तो दूसरे एक मरीज के गले के नीचे छेद कर पीली नली ठूंस दी गयी थी. वह मानो सितारे गिन रहा हो.

कराहने-बिलबिलाने में ही खैरियत है. पूरे वॉर्ड में जैसे बहत्तर रोगों का जमघट लगा हुआ है. रात भर इसी की जलन और तपिश.

चौंतीस की आधी सूरत लिजलिजाकर विरूप हुई थी. दाहिनी आंख के पास अग्निवलय. झुलसन. बायीं आंख से झरता पानी. नथुनों से निकलती भाप. तालव्य मार्ग से फूटती वेदना, अग्नि पाश में राख हो रही अर्धनष्ट मुद्रा. बाकी आधा मुंह भी फूलकर गुब्बारा हो रहा था.

सुबह हो आयी. फिर भी चेहरा हरा-काला और फूला हुआ. पुतली भी फूलकर अस्त-व्यस्त हो रही थी. उसमें भी अग्नि विष के अंकुर उग रहे थे.

चाय का स्वाद गंदले-मीठे पानी सा.

सुबह का फेरा मानद डाक्टर लोकशयनम साढ़े तीन फुट की दूरी से झांकते हैं. उनके खल्वाट सिर में अपनी छवि बखूबी देखी जा सकती है. "हूं," कहकर वे तन गये. हाउसमेन पावटे भी "हूं," कहकर सावधान हो गये.

दाहिनी उंगली उठाकर मानद डाक्टर ने कहा, "मिस्टर, इदर आओ. मेरी उंगली को देखो."

बंद आंख से यंत्रणा की चीख. पुतलियों में तार-तार होने की सीमा तक तनाव. तार स्वर में कराहती-बिलखती द्विजिह्व वेदना, इस बीच बायीं आंख से चार-छह: बूंदें ढुरक गयीं. देखें तो कहां! समूची हवा पर नीली-नीली लहरें सवार थीं, पीली झाग वाली नीली लहरें.

■ श्री. दा. पानवलकर.
जन्म : 13 फरवरी, 1928. मराठी के जानेमाने कथाकार हैं. अब तक इनके छह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें से तीन को महाराष्ट्र सरकार ने पुरस्कृत किया है. पहला कहानी संग्रह 'गजला' 1962 में प्रकाशित हुआ था.

"डिजास्ट्रस नर्वज वाइरल इन्फेक्शन. . .आधे चेहरे की नसें जलकर राख हो रही हैं..." मानद ने कहा.

"मुंह का दाहिना हिस्सा विरूप होता जा रहा है और मूछों के नीचे खुरंड के जाल में जैसे घुल रहा है...!" हाउसमेन ने आश्चर्य व्यक्त किया.

"हर्ट्स हार्पिस जोस्टर...आंख बची रहे तो खैर मनाओ..." मानद ने निदान किया और ठिठक गये. उन्होंने सलाह दी, "बी वन, बी ट्वेल्व, बी सिक्स की सूइयां देना."

"दो इंजेक्शन दे दिये हैं." ड्यूटी पर तैनात सिस्टर रॉड्रिग्स ने तत्परता से कहा.

"फुल कोर्स. प्लस ऑइंटमेंट क्लोरोमाइस्टिन."

"आंख में!" निशा पूछ बैठी.

"देन व्हेयर." हाउसमेन हड़बड़ाया.

निशा सहम कर पीछे हट गयी.

"बंद आंख में. . .पलकें हौले से हटाकर..." हाउसमेन ने धीमे स्वर में कहा.

"निशा अपने आप आगे आयी. डाक्टर की सलाह से चौंतीस की आंख की पलकें खोलकर उसने फिर बंद कर दीं और अपना चेहरा दूर हटा लिया.

"ठीक है. मिस्टर, लेटे रहो. कंप्लीट रेस्ट. क्या समझे?" हाउसमेन चले गये. स्टाफ सिस्टर रॉड्रिग्स भी बोली, "लेटे रहो, लेटे रहो, लेटे रहो, हिलना नहीं, बोलना नहीं, मुंह बंद." उकताहट भरी निगाहों से चौंतीस के चेहरे को घूरते हुए सिस्टर, मानद एवं हाउसमेन एक-एक करके चल दिये. खुरंड पाश में बिलखती आंख लिये चौंतीस चित लेट गया. वार्ड बॉय बबन्या आ गया और, "पड़े रहो. मुंह बंद रखो," कहकर चला भी गया.

दिन के बाद रात. जिंदा गाड़े जाने के से अंदाज में सिमटी-सिकुड़ी रात.

सूरज की किरणें अब चढ़ने लगी थीं. दिवा-अग्नि समूचा ताप उगल रही थी. चौंतीस की स्याह मुद्रा कराहती-बिलखती रही. दिमाग अरांकर जैसे बेसुध हो गया.

शाम जैसे दिन के उजाले को नोच खाने लगी.

सिलिका, राऊ, केया रात पाली की हैं.

रात के खाने की थालियों का अंबार लग गया. हर मरीज के सामने थाली पटक दी गयी, "खा लो!"

चौंतीस की थाली ज्यूं की त्यूं वापस चली गयी. वह क्या खायेगा, कद्दू. दाल का पानी पीयेगा. या रेस के घोड़े के चने चबायेगा!

समूचा वॉर्ड जैसे घावों की टीस से कराह रहा था. बेहोशी की अधमरी सांसें. पेशाब की बदबू, यूरिन पॉट में पेशाब की महीन धार. गले की खराश के साथ बाहर पड़ते बलगमी थक्के. टूटने की सीमा तक तने हुए रबड़ की सी खांसी. स्विच ऑफ.

"नहीं... नहीं... माई..."

"चुप बे! नहीं माई क्या लगाया..." ईश्वर ने टोकते हुए कहा.

सात नंबर फिर तैश में आया... विश्वंभर खीझकर हंस दिया.

"नहीं..."

केया ने स्विच ऑन कर दिया.

तीन-चार मरीज तुरंत तनकर खड़े हो गये. मानो वे तंदुरुस्त हो गये हों. स्टाफ सिस्टर सिलिका फुर्ती से आ गयी और चारों ओर घूरने लगी. खड़े हुए मरीज अपने लाल कफन में दुबके पड़े रहे.

सिलिका सात नंबर की नब्ज पकड़े हुए. उसकी नजर घड़ी पर भी थी. उनींदी राऊ बासी और अलसायी-सी, "क्या होताय. अभी तो नबज देखी थी मैं!"

"नहीं..."

"मां की..." उबासी लेकर ईश्वर ने कहा, "ढंग से बोम बी नहीं मारताय."

"भाई... नहीं..."

"नब्ज तो ठीक है. फिर काय कू चिल्लाताय." सिलिका बरस पड़ी. पीछे मुड़कर झुंझलाहट भरे स्वर में, "केया!"

"यस स्टाफ..." कहकर केया चलते-चलते ठिठक गयी.

सात नंबर प्रत्यंचा लगे तीर-सा तन गया था. अपने खटोले पर वह आधे से ज्यादा झुक गया. लेकिन फिर सीधा खड़ा हो जाने से पहले ही बिगर नाड़े के पजामे की टेंट खुल गयी और पजामा सीधे पैरों पर खिसक आया.

"ए-ए क्या करताय." ईश्वर लपककर उसके पास गया.

"नाड़ा चाहिए... वह कब से रट लगाताय, दिखता नहीं तुम कू?" सिलिका ने कड़ककर कहा. उसकी 'कड़क' कैप में फुरेरी-सी हुई. वह फर्श पर जूती की 'टक-टक' के साथ इधर-उधर चलती रही.

केया गलती से राऊ के पास गयी और राऊ भी केया के पास.

"क्या हो गया?" कहकर दोनों सिलिका की ओर मुड़

बायर का नाटक

बायर को पचास वर्ष तक एक के बाद एक नाटक लिखने पर भी सफलता न मिल पायी और वे आलोचकों की बहुत सख्त आलोचना का शिकार बनते रहे.

उन्हें इस बात का एहसास था कि आलोचक व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष के कारण ही उनके नाटकों को मान्यता नहीं देते थे.

एक बार उन्होंने 'अगामेनान' नामक नाटक लिखा और यह घोषित कराया कि उसे एक नौजवान नाटककार ने लिखा है, जो हाल ही में पेरिस से आया है.

नाटक देखकर लगभग सभी आलोचकों ने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की. यहां तक कि बायर के सबसे बड़े आलोचक, रासिन ने भी उसकी सराहना की.

अगले दिन नाटक के दौरान एक मौके पर घोषणा की गयी कि नाटक वास्तव में बायर का लिखा हुआ है.

फिर क्या था, सीटियां बज गयीं, शोर मच गया, और कहा गया कि नाटक बकवास किस्म की चीज है. □

—सुखबीर

गयीं. सिलिका ने दोनों को घूरकर देखा. वहां से "ह्वाट नॉनसेंस," कहकर वह भुनभुनाती हुई निकल गयी.

"राऊ ट्रेनी है." केया बुदबुदायी.

"यू शट अप!"

दोनों चुप हो गयीं.

सात नंबर की टांगें पकड़कर विश्वंभर ने पजामा उठाया और नाड़ा कसकर बांध दिया. फिर उसे लिटा दिया. तब कहीं वह शांत हुआ.

"अब आवाज नहीं मंगताय. मूं बंद करके पड़े रहो." ईश्वर ने चेतावनी दी.

"तुमकू अक्कल नय! उसकी कंबर कू देकना नय क्या? वो लकवे का पेशंट हय." पांच नंबर ने टिप्पणी की.

"ए मावड़या, डब्बल आवाज में कायकू अक्कल सिखाताय! अपना पांच नंबर का खटोला साबूत रख!" विश्वंभर ने मावड़या को डांट दिया.

"ए गावाड़या इशंम. . . र, तेरे गल्ले से नय करता डब्बल आवाज. . .," कहकर कंबर कमर तक उठ गया और बताने लगा, "किसी दिन दंगा हुआ. पोलिस वालों ने धुंआ छोड़ा. धुएं की नली का एक टुकड़ा गले के नीचे घुस गया. टुकड़ा तो निकाल दिया लेकिन सुराख रह गया. येच वो दूसरा सुराख है. वहीं से आवाज आतीय. . . और सिट्टी बजतीय. . ."

चार बरस सरकार का खाना फोकट में खाया और एक बरस खाने का है तो मूं बंद कर."

"तेरे बाप का खाताय क्या? उसको पायजामा पयनाया क्या?" भाऊ बहुत गरम हो गया और तुनककर उसने ईश्वर से कहा, "हां, हां, उसकू देखो. नय तो तेरा पिछा नय छोड़ने का वो. . ."

मामला यहीं खत्म हुआ फिर माहौल शांत हुआ.

स्विच ऑफ.

चौंतीस की आंखों में सुई चुभने का-सा एहसास. लपटें जैसे दिमाग से होकर निकलीं. सांस में तपन और बदन में ऐंठन. कफन फेंककर उठते हुए वह लुढ़क गया. कोई भी नहीं आया उसकी सहायता करने. केवल एक आहट-सी हुई., साये की.

एक मरीज खांसने लगा. सूखी खांसी. लेकिन एक धक्का बाहर आते ही उसे काफी राहत-सी मिली. दूसरा एक उल्टी करने के-से अंदाज में था.

एक उबासी लेकर विश्वंभर पॉट के साथ दौड़ा-दौड़ा आया. उल्टी करने वाले मरीज के सामने उसने वह धर दिया. "हां, अब कर दे!"

सुर्ख अंधेरा, जालीदार कफन के घेरे में से दिखाई पड़ने वाला.

कहीं पर एक ठोका बजा. रात के साढ़े बारह या एक या डेढ़ कुछ भी बजा हो सकता है. चौंतीस की आग उबल कर नरम पड़ रही थी. कराहने के साथ ही भाप के बादल जैसे बाहर निकल रहे थे. सफेद साये की आहट करीब आयी.

दाहिनी आंख को पांच नरम-मुलायम उंगलियों का बोझ महसूस हुआ. यह एहसास भौंहों को भी नसीब हुआ. तत्पश्चात् पलक झपकती-खुलती रही थी. वेदना तो शांत हो ही रही थी लेकिन संवेदना जैसे उत्तेजित होती रही थी. पुतलियों पर एक महीन-सी फूंक ठंडक की हिलोर.

"अभी सात नंबर पेशॅंट नंग-धड़ंग खड़ा था, पायजामे के नाड़े के लिए."

बंद आंख की तिलमिलाहट के साथ नंबर चौंतीस हंस दिया, रात के अंधेरे की भी मंथर लय थी.

सिरहाने की खिड़की में से किसी मंदिर का घंटा सुनायी पड़ रहा था. ब्राह्मवेला जैसे थिरक रही थी.

स्विच ऑन.

सिलिका के जूतों की टक-टक, "मिस्टर, गेट-अप." उसके हाथ में एक पत्र था. एक आंख में कीचड़ भरी पड़ी थी. आंख जैसे प्यासी थी या कि आंख पर झपट्टा मारनेवाली नागन भूखी थी. कोई परहेज नहीं था. लपालप लपटें, जिनमें सब कुछ समा सकता है.

दीवार की पुताई करने की-सी फुर्ती से सिलिका ने वह लिक्विड कैलैमिन मरीज के माथे पर लगाने के लिए लिया. एक बार लगाया. आधे मुंह की पुताई पूरी हुई. लिक्विड कहीं कम न पड़े इसलिए बैंडेज की पट्टी उसमें डुबोकर उसके सिर पर उसने उसे निचोड़ा और कहा, "आंखें बंद कर लो अच्छी तरह से!" एक पर्त तो चढ़ गयी. साली ने कराहने

तक का मौका नहीं दिया. आधा माथा, नाक, भौंह, मूंछ, कनपटी. जैसे कीचड़ सना हो. इससे तो लोशन बेहतर रहता है. एक और पर्त चढ़ायी गयी. ऊपर से चेतावनी दी गयी, "बंद, यानी टोटल बंद, दाहिनी आंख."

"वो तो कब से बंद है. तू लगाने का हय सो लगाती जा, मेरी अम्मा." यह उसने मन ही मन कहा. दाहिने मुंह से भाप निकल रही थी जैसे गरम तवे पर किसी ने पानी छिड़क दिया हो.

बाहर कर्णकटु घंटा-नाद. पगला जाने की सीमा तक कटु.

दिमाग ठीकरे-ठीकरे होकर लहू-लुहान है. आग भड़क रही है. और दिल पानी-पानी हो गया है. टिन पॉट टटोलकर देखा. पानी उंड़ेल लिया. पी लेने को हुआ. लेकिन आधा मुंह सूजा हुआ जो था. मानो उसमें टांके लग रहे थे.

अपना काम खत्म कर सिलिका बुदबुदायी, "अब दो दिन देखने की जरूरत नहीं. आंखें बंद रखो. आराम पड़ेगा. . ." और वहां से जाते हुए एक टांका मारने के से लहजे में कह गयी, "पड़े रहो चुपचाप."

कैसा आराम. . . भाप निकलतीय. हूं. . . पड़े रहो चुपचाप. वह सुबह भी जला-झुलसाकर खिसक गयी."

दो नंबर आक्सीजन पर था. शायद चल बसा.

"जब से आया, रात-दिन मुर्दे जैसा ही पड़ा रहा. साले को पार्सल कर देना चाहिए."

"कोई तो आयेगा क्लेम करने. जल्दी करो. इंतजार करो." शायद चौंतीस नंबर अपने खटोले से ही बुदबुदाया था.

समय स्थिर था जैसे उढ़ी हुई सफेद चादर. इत्ती-सी भी आवाज नहीं. चौंतीस नंबर चौंककर आधा उठ बैठा. झकाझक सफेद पार्सल ट्रे ट्राली पर. ईश्वर ठिठका सा, निःशब्द.

कफन ओढ़कर चौंतीस फिर लेट गया. सांस थामकर. आंखें फाड़कर देख रहा था, पार्सल में बंद अनंग आत्मा को खिड़की से बाहर जाते हुए.

दूसरी रात भी चौंतीस आधा चेहरा कसमसाकर तार-तार होता रहा. स्थितप्रज्ञ जैसे अर्ध-चेतन होकर धू-धू जलने लगी. उसकी तपिश से वह खटोले पर ही छटपटाता रहा. बंद आंख में बिलबिलाती पुतली जैसे पलकों को छेदने के लिए आतुर थी. अग्नि का भयावह अंधेरा आंखों के सामने से खिसकता रहा. बेजान वेदना-समूह के आरपार जैसे टकुआ घुसेड़ दिया गया हो. अंतःचक्षु की पुतली भी अर्राकर भिनभिनायी. नंबर चौंतीस धधकते अंगारों पर जैसे बैठा रहा. फिर लेट गया. अस्तव्यस्त गद्दे पर माथा रगड़ते हुए उस आग को मिटाने के उद्देश्य से लोटता रहा.

मायूस बायीं आधी आंख भी झरती रही.

दो नंबर पार्सल को डिस्पैच करते समय यकायक कोई फूट पड़ा.

आधी आंख से ही लाल कफन के छेद में से उसने नजारा देखा. बंद आंख फिर कुनमुनायी. पुतलियां शायद राख हो

विश्व-श्रेणी की क्वालिटी फिर भी देखभाल बिल्कुल आसान–अपने घर पर भी!

सोमा मेटल फिटिंग्स

बेहतरीन कारीगरी से बना—आपको परेशांनी से बचाये, हमेशा सही और सहज ढंग से काम करे

अंधेरा...घटाटोप अंधेरा.

धधकते अंगारों-सी लपलपाती रात पल-पल खिसक रही थी. सुबह के झुटपुटे में सिर के पास वाली खिड़की से मंद शीतल हवा का झोंका भीतर आया और कान को स्पर्श कर गया. लिजलिजा स्पर्श. महीन स्पर्श. महकती हवा. बंद पुतली में हलचल हुई. पलकें थिरकने लगीं. एक स्निग्ध फूंक आंखों के गिर्द मंडराने लगी. घेरे में हलचल हो रही थी या कि वह कसता जा रहा था? मुट्ठी के आकार की आंख की पलकों से पानी झरने लगा. जैसे झारी से बहती अटूट बूंदें.

करवट बदलकर चौंतीस बंद आंखों से ही जाग गया. दाहिनी आधी-अधूरी आंख, उनींदी. मायूस, अनाथ आंख कुछ बुदबुदायी, अश्रव्य. झकाझक केया इधर पीठ किये खड़ी है. यहीं से वह तैंतीस की ओर गयी, नब्ज देखने. बंद आंखों से ही उसने देखा. अंधत्व को एहसास की तीव्र संवेदना होती है. आंखों की ज्योति सच-झूठ का पीछा कर असलियत का पता लगा ही लेती है लेकिन अंधत्व है मृग मरीचिका-सा मायावी. करवट बदल ली. बंद आंख श्रांत-शांत होने लगी.

"पांडु नृपति जनक जया/माता कुंति यदुतनया..." अपनी नब्ज की लय पर थिरकता हुआ तैंतीस—कपिलदेव. जूती खटखटाकर उसके पास से गुजरी. शायद केया ही थी.

"क्यों कपिल, रात को नींद में भी गाना गाता था क्या?" पड़ोसी मरीज ने पूछा.

कपिलदेव ने महीन हंसी के साथ कहा, "नींद आती कहां है. कंबख्त वो चौंतीस को देखो, हमेशा सोया रहता है कब्बी उसकी आंख खुली दिखती नहीं. खुशनसीब है."

"आंखें मूंदकर सोया पड़ा रहता है. 'हे भगवान, हे प्रभु' आदि के साथ कराहता नहीं... यही मतलब है न..." चौंतीस की वेदना बुदबुदायी.

"कपिलदेव, चाय रखी है पॉट में. जल्दी खाली करना..." वॉर्ड बॉय ने खाली पतीली बजाते हुए कहा.

"अस्सी का तो मैं हूं ही. फिर भी कपिलदेव हूं."

"यहां और कितने दिन रहोगे?" पड़ोसी ने गुगली फेंकी.

कपिलदेव सिर्फ मुस्कराया, मानो उसने जोरदार चौका लगाया हो. फिर कहने लगा, "पाकिस्तान के साथ टेस्ट मैच कब हुए थे?"

"यही, कोई छह एक महीने पहले..."

"...कपिल ने दो छक्के मारे. मैं खटोले पर ही चार बार उछल पड़ा. सिस्टर्स आयीं. वार्ड बॉय भी दौड़कर आया मानो लॉंग ऑन पर था. मुझे दबोचकर उन लोगों ने धमकाया. 'पेशंट को डेलीरियम हो गया.' कहकर बबन्या सीधे मेरी छाती पर सवार हो गया..." कपिलदेव हंस दिया और हंसते-हंसते ही कहने लगा, "मैंने कहा, हां, 'हां, मुझे हर्षोन्माद हुआ है.' कपिलदेव ने जोरदार छक्के लगाये. सी. के. नायडू की गद्दी चला रहा है."

"मजा आ गया. उछलती हुई गेंद के साथ ऊंचा—और ऊंचा उठने में कितना आनंद आता है—सुनने में, तब ये वॉर्ड बॉय ईश्वर, विश्वंभर, बबन्या, पक्या—सालों को जेब में से ट्रांजिस्टर निकालकर दिखलाया तो बबन्या नीचे उतरा..."

चौंतीस अपनी मरियल आंख से भी अपनी हंसी को रोक नहीं पाया.

"ईश्वर, बबन्या मेरे पास मंडराने लगे. तकिये के नीचे डिबिया में रखी पंढरपुरी तमाखू की चुटकी भरकर कपिल, कपिल, करने लगे—लौंडों ने मेरा 'गोविंदा ही' कर दिया..."

कपिलदेव उठ बैठा. सिर खुजलाते हुए उसने चारों ओर देखा. तकिये के नीचे से डिबिया निकालकर तमाखू मलने लगा. "वो स्टाफ की चुड़ैल आयी तो," 'कहकर चैतन्य चूर्ण की चुटकी फुर्ती से भीतर कर ली उसने.

"आ गयी—"

"लेटे रहो, लेटे रहो—" टक टक टक

झपकी लेने के से अंदाज में कपिलदेव लेट गया और बुदबुदाया, "हे भगवान, मुझे मुक्ति दिलाओ अब."

सुबह जल्दी ही बेस्वाद चाय का दौर हुआ. हवा का झोंका भी आया... समूचे वॉर्ड में महकता रहा.

चौंतीस के ठीक सामने है बाईस नंबर. खटोला खाली तो हो गया था, आज सवेरे ही नया मरीज आ गया वहां.

चौंतीस की अर्धनयनी कराह. पता नहीं, कितनी रातें और कितने ही दिन काटने होंगे?

तब तक क्या आंख बची रहेगी?

दिन पाली की सिस्टरों ने चहकना शुरू किया. रात पाली की अपने-अपने घरों को चली गयीं. केया सबसे अंत में गयी होगी, शायद दिन निकलने पर. अभी, कुछ ही क्षण पहले वह महक रही थी. उसकी थाह नहीं लग पाती.

सूरज तो आग उगलने लगा. जबर्दस्त उमस. चेहरा झुलसने लगा. पुतलियां मानों अंगारों की ऊष्मा से पिघलने लगीं.

बंद आंख पर उसने झट रूमाल रख दिया. वेदना की टीस... वेदना की टीस को वह दांत भींचकर जज्ब कर गया.

मानद डॉक्टर ने तीन फुट की दूरी से ही गौर से देखा. उत्तरों की अपेक्षा किये बिना प्रश्नों की बौछार की उन्होंने. आधा दिमाग जैसे खौलते पानी में उबल रहा है, असहनीय वेदना—आदि शिकायतें सुनी-अनसुनी कीं. रोज का रोना है यह. आखिर डॉक्टर की भी एक सीमा होती है, मानद ही क्यों न हो!

मानद भी चुप्पी साधे खड़े रहे कुछ देर.

क्रमशः

—अगले अंक में—

कौन था यह नंबर चौंतीस?...कैसे घुस आया था यह अग्निसर्प उसके मस्तिष्क में?...क्या उसे इससे मुक्ति मिल सकी?...ऐसे ही कई सवालों का जवाब...

■ तृतीय पुरस्कार विजेता कहानी

वे ही

—विभांशु दिव्याल

'वे' हमेशा से होते आये हैं, चाहे जंगल और आदिम युग रहा हो या कोई राजतंत्र. मगर धीरे-धीरे वक्त पलट गया. एक ऐसा मुकाम आया जब समझा गया कि झंडों, नारों और चुनावों में 'वे' दफन हो गये. इसलिए जब नया संविधान 'खींचा' गया तो उसके सफों से जुल्म और अन्याय पोंछ दिये गये, कि तभी अचानक 'वे ही' यानि वही पुराने लोग नजर आने लगे—आखिर 'वे' हैं कौन? वे फिर-फिर लौट क्यों आते हैं? उनका मिटना इतना जरूरी क्यों है?

दरवाजे पर अचानक होने वाली थपथपाहट ने उसे बौखला दिया. वैसे भी उसके पास मिलने-जुलने आने वालों की संख्या न के बराबर थी, तिस पर वह दोपहर के वक्त को अपना निजी वक्त समझता था. इस वक्त वह आराम करता था और किसी भी परिचित-अपरिचित का आना पसंद नहीं करता था. आराम के इस समय में उसकी इकलौती लड़की भी प्रायः उससे बात नहीं करती थी. वह पूरा-पूरा ध्यान रखती थी कि उसके पिता के आराम में खलल न पड़े.

जब थपथपाहट हुई तो लड़की दरवाजा खोलने को बढ़ गयी. उसने सोचा कि दरवाजा खुलने पर जो भी व्यक्ति सामने आयेगा, उसे बेवक्त आने के लिए डांटेगा. लेकिन दरवाजा खुलते ही वे धड़ाक् से अंदर घुस आये. लड़की चीखकर पीछे हटी. वह आतंक से बेआवाज खड़ा रह गया. दो के हाथ में लंबे फल वाले खुले चाकू थे. दो कमर पर हाथ रखकर इत्मीनान से उसे घूर रहे थे. एक ने दरवाजा अंदर से बंद कर दिया, एक चाकूवाला लड़की की ओर बढ़ा तो वह सहमकर पीछे हटी. मुड़कर भागना चाहती थी कि चाकूवाले ने लपककर उसकी कलाई जकड़ ली.

तात्क्षणिक आतंक पर काबू पाने की कोशिश करते हुए वह चिल्लाया, "फौरन छोड़ो लड़की का हाथ. तुम लोग कैसे घुसे घर में..."

"चुप बे! बकबक मत कर." एक ने चमचमाता हुआ चाकू उसकी आंखों के आगे लहराया.

देखकर लड़की के मुंह से चीख फूटी तो एक ने उसका मुंह कसकर दबा दिया. दूसरे ने चाकू की नोक बहुत ही बेशर्मी से उसके वक्ष पर टिका दी. आंखें नचाता हुआ बोला, "चीखी-चिल्लायी तो तेरी और तेरे बाप की आंतें निकालकर यहीं फेंक देंगे." उसने चाकू पर दबाव बढ़ाया.

लड़की ने चाकू की नोंक महसूस की. फिर उसकी आवाज भय और आतंक से पथरा गयी.

उन सभी के चेहरों से उस समय पाशविकता टपक रही थी. उनकी आंखों में वहशी किस्म की चमक थी. वे खूंख्वार भेड़ियों के मानिंद लग रहे थे. उनके चेहरों पर ढाटे नहीं बंधे थे. वे कहीं से भी विचलित मालूम नहीं पड़ते थे. उनमें भाग निकलने की हड़बड़ी भी नहीं थी. वे मुस्करा रहे थे.

वह अब एक मेमने की तरह मिमियाया, "बच्ची को छोड़ दो! देखते नहीं उसकी क्या हालत हो रही है."

उन्होंने एक साथ जोर का ठहाका लगाया जैसे इस तरह के ठहाके लगाने का उन्होंने काफी पूर्वाभ्यास किया हो. इस ठहाके से खौफ पैदा होता था. तभी एक ने अंगूठे और तर्जनी से उसकी नाक दबाकर हिलाई गोया किसी बच्चे से प्यार कर रहा हो.

वह घिघियाया, "बेटा, घर में रुपया-पैसा नहीं है. तुम लोग देख लो. तुम लोग गलत घर में घुस आये हो. बच्ची को..."

इस बार उसकी नाक पकड़कर हिलायी गयी. नाक

हिलानेवाला उसे चुमकारता हुआ बोला, "बेटा, रुपये-पैसे की जरूरत होती तो तू जहां छिपाता, हम वहीं से निकाल लेते. हमें हाल-फिलहाल रुपये-पैसे की जरूरत नहीं है. देख, हमारी जेबों में कितने नोट हैं." उसने नोटों की एक गड्डी जेब से निकालकर उसकी आंखों पर फिरायी. फिर उसे जेब में रखते हुए लड़की की ओर देखकर बोला, "थोड़ी देर के लिए बच्ची की जरूरत है, समझा! इसे लिये जा रहे हैं. शोरगुल किया तो जानता है. . ."

उन्होंने उसे और अधिक गिड़गिड़ाने का अवसर नहीं दिया. एक ने उसके दोनों हाथ पीछे की तरफ करके जकड़ दिये. दूसरे ने पहले उसकी कलाइयों को बांधा, फिर उसके मुंह में कपड़ा ठुंसाकर ऊपर से मोटी पट्टी बांध दी. उसकी आंखें और अधिक खुलकर फैल गयी थीं.

उसने अपनी खुली-फटी आंखों से देखा कि उन्होंने लड़की की कलाई में मरोड़ देकर बांह ऐंठ दी है. वे लड़की को धमकाते-धकियाते बाहर ले जा रहे हैं. लड़की ने कातर दृष्टि से उसे देखा है.

लड़की आंखों से ओझल हो गयी. बाहर से दरवाजा बंद होने की आवाज आयी. उसे लग रहा था, उसे कुछ भी सुनायी नहीं पड़ रहा.

▣

पता नहीं कितना वक्त गुजर गया था. वह अब तक कई बार होश में आने का प्रयास कर चुका था और हर बार बेहोश-सा होकर निढाल हो गया था. उसके गले की नसें फटने को आ रही थीं. आंखें उबल रही थीं. कलाइयों पर बंधी डोरी उसके खून का स्वाद लेने लगी थी.

उसकी बेहोशी फिर टूट रही थी. लगा, एक पल को उसकी सोचने-समझने की शक्ति वापस लौट आयी है. इस बीच उसने स्वयं को अश्लील से अश्लील गालियां दे डालीं, जिनकी कल्पना वह कभी किसी दूसरे के लिए भी नहीं कर सकता था. अब वह उस दिन को कोस रहा था जिस दिन उसने बस्ती में आये-दिन होने वाली गुंडागर्दी, मार-पीट, छीन-झपट के असामाजिक प्रदूषण से स्वयं को और अपनी बेटी को बचाने के लिए शांत-एकांत जगह पर चुपचाप जीवन बिताने का निर्णय लिया था. बस्ती में होता तो कुछ चीख-पुकार मचती, कुछ तो हल्ला-गुल्ला होता. उसकी आंखों के आगे वे चाकू-वाले हाथ और वे वहशी चेहरे आकर खड़े हो गये. उनके बीच उसकी फूल-सी बच्ची. . .उसकी गर्दन और गले की नसें बुरी तरह टूटने लगीं. उसकी चेतना सुन्न होने लगी.

उसे दरवाजे पर आहट का आभास हुआ. हां, दरवाजे पर आहट थी. उसने अपने अंदर की रही-बची सारी ताकत समेटी और आंखें दरवाजे पर जमा दीं. दरवाजा खुल रहा था. फिर जैसे वह बेहोश होना भूल गया. उसकी बेटी अंदर आ रही थी. नहीं, उसकी बेटी नहीं थी. उसने गौर से देखकर पहचाना, उसकी ही बेटी थी. नहीं, उसकी बेटी ऐसी नहीं थी. यह तो. . .नहीं, यह उसकी ही बच्ची थी, पर फिर पता नहीं उसका लहू किन-किन नसों से दौड़ा कि उसे अपने दिमाग पर भारी-भारी हथौड़े पड़ते महसूस हुए. उसे सुनाई देना और दिखना फिर बंद हो गया.

सहसा उसे अपने गले की नसों पर रखा सैकड़ों मन वजन हटा हुआ लगा. उसकी आंखें खुलीं. उसके मुंह में ठुंसा हुआ कपड़ा लड़की के हाथ में था. अब वह उसकी कलाइयों पर बंधी डोरी को खोलने की कोशिश कर रही थी. उसे पता नहीं लगा कि उसकी कलाइयां मुक्त हो गयीं या नहीं, मगर उसने अपनी बेटी को कमरे की ओर जाते देखा. नहीं, यह उसकी बेटी नहीं. उसकी बेटी की चाल तो. . .वह बुक्का फाड़कर रो पड़ा. मन हुआ, बेटी को आवाज दे. पर एक ही नजर में उसकी आंखों, होंठों, कपोलों, उघड़े वक्ष और मुसे-कुचले कपड़ों पर उसने जो देख लिया था, उसे दुबारा देखने की दहशत से आवाज नहीं दे सका. उसका रुदन और भी करुण हो गया.

वह वाकई होश में आया तो उसने घटे हुए हादसे की भयावहता को कई गुने रूप में महसूस किया. उसके भीतर के एक हिस्से को लकवा मार गया, मगर दूसरा हिस्सा उबलने लगा. बदमाश! दिन-दहाड़े इस तरह! कोई सुरक्षा नहीं! कोई देखने वाला नहीं! किसी की भी इज्जत उसके घर में घुसकर लूटी जा सकती है. पुलिस, कानून, प्रशासन. किसलिए हैं ये सब?

पुलिस और कानून के बारे में वह पहले भी इसी तरह सोचता था, परंतु उस सोच में निर्लिप्तता होती थी. तटस्थ किस्म का सोचना होता था वह. उसे अपनी पहले की तटस्थता चुभने लगी. पुलिस और प्रशासन के प्रति यह उसका अविश्वास ही था कि वह शहर की तमाम गहमा-गहमी से अलग-थलग शांति से जीवन बिताने के लिए इस जगह पर रहने लगा था. उसे क्या पता था कि वे लोग उसे यहां भी नहीं जीने देंगे.

उसकी बेटी कमरे के किवाड़ भेड़कर अंदर जा लेटी थी. उसने एक मोटी चादर से सिर से पैर तक अपना पूरा शरीर ढक लिया था, कफन से ढकी लाश की तरह. न वह बोल रही थी, न हिल-डुल रही थी. नहीं, वह चुप नहीं बैठेगा. पुलिस और प्रशासन को झकझोरेगा. सरकार को हिलायेगा. वह उन बदमाशों को छोड़ेगा नहीं.

▣

शरीर और मन संजोकर वह बाहर निकल आया. दो मोड़ घूमकर उस रास्ते पर हो लिया जिस पर निकटतम थाना था. बदमाशों को ऐसे ही नहीं जाने देगा. उनके दुष्कर्म की सजा दिलायेगा. दंड-विधान के अंतर्गत कड़ी से कड़ी सजा.

थाने के ठीक बाहर आकर वह ठिठक गया. उसने अंदर देखा, कुछ लोग एक बड़ी-सी मेज के इर्द-गिर्द बैठे थे. वे लोग किसी बात पर ठहाके लगा रहे थे. बीच में वर्दीवाला व्यक्ति था. वही थानेदार होगा. उनसे थोड़ी दूर पर एक काउंटर जैसा बना हुआ था, जिसके पीछे से एक मूछोंवाला चेहरा झांक रहा था. दायीं ओर दो व्यक्ति केवल खाकी नेकर पहने वर्जिश जैसा कुछ कर रहे थे. बायीं ओर एक नीम का पेड़ था, जिसके तने के चारों ओर गोल चबूतरा बना हुआ था. तीन बंदूकधारी सिपाही इस चबूतरे पर बैठे थे. उनकी मुद्रा से लगता था जैसे

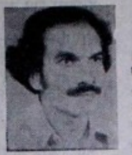

▣ विमांशु दिव्याल
जन्म : एत्मादपुर (आगरा)
—"वर्तमान लेखन अपने-आपको खंगालने-खखोरने अथवा मौजूदा राजनीतिक-सामाजिक सभ्यता के चिकने मुखौटों पर एकाध खरोंच बना देने की इच्छा से प्रसूत."
संप्रति : नौकरी

वे किसी फिल्म पर बातचीत कर रहे हों. इनके करीब ही एक आदमी जमीन पर उकड़ूं बैठा था. कभी-कभी वह सिर ऊपर उठाता था तो उसका चेहरा बहुत मार खाया हुआ और पिटा हुआ लगता था. जैसे सजा मिलने से पहले उसने सजा पूरी कर ली हो.

थाने के एकदम बाहरी हिस्से में एक आदमी केवल लंगोट पहने स्टोव जलाने की कोशिश कर रहा था. सिपाही होगा, उसने सोचा. स्टोव जलता था और बुझ जाता था. वह सिपाही पिन लगाकर फिर से माचिस जलाता था, स्टोव फिर से सूं-सूं करने लगता था. उसे यह सिपाही शक्ल से शरीफ मालूम हुआ. वह उसी की ओर बढ़ गया, "मुझे स्टेशन ऑफीसर से मिलना है."

स्टोव अब तक जल चुका था. पहले उसने केतली स्टोव पर रखी फिर इत्मीनान से पूछा, "क्या काम है?"

उसने महसूस किया कि दूर से यह आदमी जितना शरीफ लग रहा था, करीब से उतना नहीं लगता. उसकी जुबान में खास तरह की बदतमीजी शामिल थी जो शब्दों से नहीं लहजे से प्रकट होती थी. उसने कहा, "जी, मुझे एक रिपोर्ट दर्ज करानी थी. मैं चाहता हूं, पुलिस. . ."

"हर कोई यह चाहता है कि पुलिस उसके आते ही उसके साथ दौड़ लगा दे. . .स्साले पुलिस को तो कुछ समझते ही नहीं. गुलाम समझते हैं, गुलाम." फिर वह सिपाही उसे लगभग डपटता हुआ बोला, "उधर वो ईंटें पड़ी हैं, वहां बैठ जा. दरोगाजी के दोस्त आये हैं. थोड़ी देर में तेरी बात सुनेंगे."

एक अदने-से सिपाही के मुंह से अपने लिए इस तरह तू-तड़ाक सुनकर वह तिलमिला गया. मगर वक्त की नजाकत देखकर सारी तिलमिलाहट को गटक गया. वह अपनी आवाज में भरसक दीनता घोलता हुआ बोला, "देखिए, दीवानजी, मैं एक पढ़ा-लिखा शरीफ नागरिक हूं. मेरे घर में घुसकर गुंडों ने बदतमीजी. . ."

"गुंडों के लिए क्या घर, क्या सड़क, सब एक हैं. घर में घुस गये तो कौन-सा रिकार्ड तोड़ दिया. घर में घुसना उनका काम है."

वह हतप्रभ उस सिपाही को देखने लगा.

सिपाही को शायद कुछ तरस आया, बोला, "उधर बैठकर कागज पर सारा वाकया लिख दो. दीवानजी अपने क्वार्टर तक गये हैं, वे रिपोर्ट लिखेंगे." वह खौलते हुए पानी में चायचीनी डालने लगा.

कागज पर वाकया लिखने का काम. वह न तो कागज लेकर निकला था, न कलम. उसने एक बार फिर चिरौरी की—"मैं एस. ओ. साहब को सारा वाकया बताना चाहता हूं. वे ऐक्शन लें तो बदमाश पकड़े जा सकते हैं. अगर आप इजाजत दें तो मैं उनसे मिल लूं?"

सिपाही ने इस पढ़े-लिखे आदमी को गौर से देखा. उसे यह आदमी वाकई पढ़ा-लिखा मालूम हुआ जो उससे इजाजत मांग रहा था. उसने इजाजत देने का यह अवसर नहीं गंवाया. "नहीं मानते तो क्या कर सकता हूं. वे बैठे हैं साहब, जाकर उनसे कह लो जो कहना है." सिपाही ने उसी ओर संकेत किया जिधर एक बड़ी-सी मेज पर एक बावर्दी ऑफीसर को घेरे कुछ लोग बैठे थे.

उस ऑफीसर की तरफ बढ़ते हुए उसने सोचा कि इस फालतू किस्म के सिपाही से वह बेकार ही उलझा. उसे न तो इससे बात करने की जरूरत थी, न खुशामद करने की और इजाजत लेने की तो बिल्कुल भी नहीं. उसे सीधे थानाध्यक्ष के पास जाकर ही बात करनी थी.

मेज से कुछ दूर पहले ही वह चिहुक कर ठिठक गया. उसे लगा, थानाध्यक्ष की मेज के इर्द-गिर्द वही लोग हैं जो उसके घर में घुस आये थे और. . . चेहरों पर वही दरिंदगी, आंखों में वैसा ही वहशीपन, वैसा ही आत्मविश्वास, वैसी ही हंसी. वह गौर से देखने लगा. नहीं, उसे भ्रम हुआ था. ये, वे लोग नहीं थे. ये थानाध्यक्ष के दोस्त थे जो बहुत ही बेतकुल्लफी से उससे हंसी-मजाक कर रहे थे. वह दो कदम आगे बढ़ गया.

"क्या है?"

उसे किसी जानवर की गुर्राहट-सी सुनाई पड़ी, लेकिन यह सवाल उससे सामने बैठे पुलिस अधिकारी ने किया था. बाकी लोग उसे घूर रहे थे. उसे लगा, उसके शरीर से पसीना फूट पड़ेगा. वह इतनी हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था कि उस अधिकारी से अलग आकर अपनी बात सुनने का आग्रह करे. और इतने लोगों के आगे बेटी के दुर्भाग्य की शर्मनाक दास्तान सुना नहीं सकता था.

"क्या बात है, बोलते क्यों नहीं?" थानाध्यक्ष की आवाज में एक डपट थी. इस समय उसका चेहरा भी पास बैठे हुए लोगों के चेहरों में पूरी तरह मिल रहा था.

"जी. . .जी देखिए, मैं पढ़ा-लिखा आदमी. . ." उसके मुंह

से लड़खड़ाती आवाज निकली.

वे सब हंस पड़े.

उस अफसर को हंसी नहीं आयी, या उसने आती हुई हंसी को अफसराना रुआब से कुचल दिया था, "इस मुल्क में बेपढ़ा कौन रह गया है. इस थाने में तो चोर-डकैत भी पढ़े-लिखे आते हैं. बताओ क्या बात है?"

"जी, मेरे घर में कुछ गुंडे घुस आये. . . . मेरी लड़की के साथ . . ." आगे फिर उसकी जबान लड़खड़ा गयी.

"क्या किया लड़की के साथ?"

"जी, वे उसे उठा ले गये थे."

"उठा ले गये थे. फिर क्या वापस छोड़ गये?"

"जी. . . . ."

"लगता है बड़े शरीफ गुंडे थे." इस बार बाकी लोगों के साथ अफसर भी हंसा, "आशनाई चल रही होगी पहले से?"

"जी नहीं, वह बहुत शरीफ. . ."

"आजकल की लड़कियों को तुम नहीं जानते, हम जानते हैं. अच्छा, लड़की कहां है?"

"घर पर है. उसकी हालत ठीक नहीं है." वह घिघियाया जैसे लड़की की सारी पीड़ा अपनी आवाज में ढालना चाहता हो.

"बिना लड़की के हम किसकी शिकायत पर रिपोर्ट दर्ज करेंगे? लड़की जवान है?"

"जी."

"ठीक है, लेकर आओ."

"मगर उसकी हालत. . ."

"कितने गुंडे थे?"

"जी. . .चार. . ."

"तो मेरा वक्त क्यों जाया कर रहे हो? चार लोगों ने इतनी हालत नहीं खराब कर दी होगी कि यहां तक नहीं आ सके. उसे लेकर आओ, तभी रिपोर्ट लिखी जायेगी." अफसर ने उसकी ओर से मुंह घुमा लिया.

अफसर के पास बैठे लोग फिर हंसने लगे थे.

और उसे लग रहा था, एक बार फिर उसे दिखलाई पड़ना बंद हो गया है, सुनाई देना बंद हो गया है. वह अपने जिस्म को न जाने किस ताकत से घसीटता हुआ थाने से बाहर लाया. वह फटी-फटी आंखों से कभी थाने की इमारत को देखता रहा था, कभी सड़क पर दौड़ती-भागती जिंदगी को.

"क्यों भैये, रपट लिखाने आये थे? लिख गयी?" एक बेहूदी वेशभूषावाला आदमी कह रह था.

इस आदमी की आवाज उसे किसी दूर जगह से आती

लग रही थी. वह उसकी बगल से गुजरकर आगे बढ़ा तो आदमी ने अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया, "थाने में ऐरे-गैरे की रपट नहीं लिखी जाती. तुमने क्या किया? दरोगा-दीवान को खिलाया-पिलाया? किसी बड़े अफसर से टेलीफून करवाया? किसी नेता को साथ लेकर आये?"

वह उस बेहूदे से लगनेवाले इंसान को पीछे छोड़ आया, मगर उसके शब्द दिमाग पर मक्खियों की तरह भिनभिनाने लगे. गलती उसने ही की थी. उसे इस तरह अकेले थाने नहीं आना चाहिए था. किसी प्रभावशाली व्यक्ति का साथ लेना चाहिए था. वह क्या इन थानों की हालत जानता नहीं—लूट, हत्या, बलात्कार, घूसखोरी! उसकी आंखों के आगे अब उसके उन परिचित लोगों के चेहरे आ-जा रहे थे जो प्रभावशाली थे, और जिनका प्रभाव उसकी मदद कर सकता था. लड़की को लेकर दारोगा से मिलने की बात उसे बहुत ही अपमानजनक प्रतीत हो रही थी. वह अब किसी प्रभावशाली व्यक्ति को साथ लेकर किसी बड़े अफसर से मिलना चाहता था. उस थानेदार की बदतमीजी की शिकायत भी करना चाहता था.

उस प्रभावशाली व्यक्ति से मिलने उसके दरबार में आया हुआ वह अकेला आदमी नहीं था. एक पूरा हुजूम वहां मौजूद था. लोग उससे मिलकर बाहर निकल रहे थे, लोग उससे मिलने बाहर से आते जा रहे थे. इनमें दो-तीन सजी-संवरी महिलाएं थीं. कुछ बने-ठने अतिरिक्त चुस्ती दर्शाते अधेड़ थे. भारी तोंदवाले लाला दिखलाई देते भी दो-चार लोग थे.सिर पर टोपी लगाये एक आदमी बैठा था जो और आदमियों के बीच आदमी कम, बिजूका अधिक लग रहा था. चेहरे पर मायूसी लिये एक दुबला-पतला नौजवान भी अंदर आ गया था.

यह भीड़ देखकर उसे घबराहट हुई कि वह कैसे मिल पायेगा. उसकी घबराहट तब और बढ़ गयी जब उसने देखा कि उस प्रभावशाली व्यक्ति से मिलने जाने वालों की कोई पंक्ति नहीं है, कोई क्रम नहीं है. दरवाजे पर खड़ा कुरता-पायजामा पहने, बाहर तक फूले गाल और धंसी, छोटी आंखों वाला वह नाटा सांवला इंसान न जाने किस नियम के अंतर्गत कार्रवाई कर रहा था कि भीड़ में से चाहे जिसे बुलाकर अंदर भेज देता था. जाने वाला भीतर जाते हुए जब उसके करीब से गुजरता था तो वह उस नाटे का बिछता हुआ-सा अभिवादन करता था. तब उस नाटे की देह की सारी पुलक आंखों की राह झड़ने लगती थी.

वह साहस करके उस नाटे के पास जा पहुंचा, "सुनिए, मुझे भाई साहब से बहुत आवश्यक कार्य से मिलना है. मेरा इस समय उनसे मिलना बहुत जरूरी है. आपका बहुत अहसान मानूंगा. . .प्लीज आप मुझे. . ."

"अच्छा, अच्छा." नाटे ने उसकी ओर कृपा-सी बरसाते हुए आश्वासन दिया, "आप दो मिनिट तो बैठिए, मैं कोशिश करता हूं. लखनऊ-दिल्ली से कुछ लोग आये हुए हैं, वे उन्हीं से बात कर रहे हैं. जरा ऊंचे लेवल की बातें हैं. सो बीच में डिस्टर्ब नहीं कर सकते. आप सिर्फ दो मिनट बैठिए. मैं अभी

आपका इंतजाम करता हूं." फिर बिना यह देखे कि वह बैठा है या नहीं, वह नाटा चिक उठाकर अंदर गुम हो गया.

इस मध्य भी लोग अंदर जाते रहे, बाहर आते रहे. वह नाटा भी बाहर आ-आकर, अंदर की ओर डुबकी लगाता रहा. और वह अपनी पारी आने की यथावत् प्रतीक्षा करता रहा. धीरे-धीरे खिसकते समय के साथ उसके सब्र की हद तिरमिराने लगी. इस बार जैसे ही नाटा बाहर की ओर नमूदार हुआ, वह झपटता हुआ उसके सामने जा खड़ा हुआ.

उसे एकदम सामने पाकर नाटे की छोटी आंखें कुछ और छोटी हुईं. उसकी मुस्कान पलभर को चेहरे से गायब रहकर फिर वापस लौट आयी, "बस, सिर्फ दो मिनट बैठिए. आपकी बात मैंने पहुंचा दी है."

"मगर मैंने तो अभी तक कोई बात ही नहीं कही."

"वही, वही तो. आप बस दो मिनिट बैठिए."

■

इससे पहले कि वह कोई बात कह पाता, नाटा फिर चिक के पीछे गुम हो गया. क्या बिना इस नाटे की इजाजत के वह अंदर नहीं जा सकता? अगर चिक उठाकर सीधा भीतर घुस जाये तो यह नाटा क्या कर लेगा उसका! पर अपना ही यह खयाल उसे बेवकूफी भरा लगा. उसके इस व्यवहार से पता नहीं, वे क्या सोचें. इस तरह अंदर जाना उसकी घोर अशिष्टता भी समझी जा सकती है. उनका मन भी उसकी ओर बिगड़ सकता है. वैसे वे उसे जानते हैं, मगर हो सकता है, तब भी उसके साथ किसी उच्चाधिकारी के पास जाने से इंकार कर दें. वह मन मसोसता हुआ बैठा रहा.

आखिरकार उसका बुलावा आया.

उन्होंने तपाक से स्वागत किया, "आइए, आइए. कहिए कैसे आना हुआ?"

उनको इस तरह स्वागतभरा देख उसका उत्साह कुछ खुला. उसका साहस कुछ वापस लौटा. इतनी देर प्रतीक्षा कराने के कारण उनके प्रति पैदा हुई शिकायत कुछ कम हुई. वे जमीन पर मसनद के सहारे ही बैठे थे. कीमती सोफों वाले इस युग में भी वे अपनी बैठक वाली इस विशेष पद्धति को कायम रखे हुए थे. वह उनके सामने बैठ गया.

"हां, बताइए जी. आपकी क्या सेवा कर सकता हूं? लगता है, आपको पहले कहीं देखा है." उनका गोल सुर्ख चेहरा पूरी तरह खिला हुआ था.

"जी, मैं काफी दिनों तक आपका पड़ोसी रहा हूं. आपके मकान से चंद मकान छोड़कर. . ." उसने उन्हें याद दिलाने की कोशिश की.

"अल्हे. वही, वही तो." उन्होंने आवाजदार हंसी पैदा की. "आप तो पुराने पड़ौसी निकले. कहिए जी, हुकुम मेरे लिए?"

उसने कांपते-थरथराते पूरी कहानी कह सुनायी. सुनाते-सुनाते उसकी आंखों से आंसू टपकने लगे. वह रुंधे गले से बोला, "देखिए, मेरी बच्ची और मैं कहीं के नहीं रहे."

"च् च्. . ." उन्होंने भरपूर अफसोस जाहिर किया, "क्या कहें साहब कितना बुरा जमाना आ गया है. हम जैसे-दो-चार लोग करें भी तो क्या करें. हां, आपकी किसी से कोई पुरानी रंजिश तो नहीं थी? आजकल लोग चुनाव-उनाव की रंजिश ऐसे ही निकालते हैं."

"नहीं जी, मेरी किसी से कोई रंजिश नहीं. जबसे आपके पड़ोस से निकला हूं, किसी से कोई लेना-देना नहीं. सिर्फ अपने काम से काम रखा है. . ."

"क्या बताएं साहब, सबसे ज्यादा मुसीबत सीधे-सादे आदमी की ही है. अब आप ही बताइए, मैं क्या करूं? जो कहें, करने को तैयार हूं."

"अगर आप किसी बड़े अधिकारी से कह दें तो. . .मेरे साथ चले चलें. . .एस. ओ. इतना बदतमीज है कि. . ."

उसकी बात पर वे ठहाका लगाकर हंसे, "आप कौन-सी दुनिया में रह रहे हैं जनाब? आजकल सारी पुलिस ही ऐसी है. आपका साबका नहीं पड़ता न पुलिस से. यहां तो रोज दो-चार मामले सुलटाने पड़ते हैं. खैर, आप कहें तो मैं एस. पी. से कह दूं. वैसे कल मुझे डी. एम. से भी मिलना है. आप कहें तो उनसे कह दूं."

"आप ही कराइए कुछ, मैं तो किसी को नहीं जानता. मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम." वह फिर रोने-रोने को हो आया.

तभी वह नाटा अंदर आया और उनके कान के पास कुछ बुदबुदाया.

वे एकदम छलके, "अच्छा, अच्छा. उन्हें अंदर बुलाओ भई. बाहर ही कैसे बिठा दिया. बुलाओ उन्हें."

नाटा चला गया तो वे जल्दी-जल्दी उससे बोले, "तो आप ऐसा करिए, कल सुबह मैं डी. एम. से मिलने जाऊंगा, आप मुझे वहीं मिल जाइए. और हां, लड़की को अवश्य ले आइएगा. इंप्रेशन उसी का पड़ेगा."

नाटा कुछ लोगों से घिरा हुआ अंदर आया.

वह बुरी तरह चौंका. यही लोग तो थे जिन्हें वह तलाश कर रहा था. वैसी ही आंखें, वैसे ही चेहरे, वैसा ही आत्मविश्वास, वैसा ही वहशीपन. फिर तुरंत ही उसने अपने भ्रम को झटका दिया. नहीं, ये वे लोग नहीं थे. ये लोग तो इस प्रभावशाली व्यक्ति से मिलने आये थे जो इन्हें देखते ही खड़ा हो गया था. अब इनका गर्मजोशी से स्वागत कर रहा था.

▣

वह दिग्भ्रमित-सा बाहर आया तो अचानक ही उसे महसूस हुआ कि वह प्रभावशाली व्यक्ति उसकी तकलीफ से जरा भी विचलित नहीं हुआ था. अब उसे ध्यान आ रहा था कि उस व्यक्ति का अफसोस प्रकट करना किस कदर मशीनी था. जब वे लोग आये थे तो वह किस कदर उल्लास से उन लोगों से मिला था. उसकी ओर तब देखा तक नहीं था. क्या इस आदमी के पास दुबारा आयेगा वह? तभी अपनी बच्ची का चेहरा उसकी आंखों के आगे कौंध गया. वह आयेगा. वह डी. एम. से कहेगा. वह उन लोगों को सजा दिलाएगा.

वह जिलाधीश की कोठी के बाहर काफी देर से उस प्रभावशाली व्यक्ति के आने का इंतजार कर रहा था. उसकी बेटी साथ थी. इतनी देर तक इंतजार करना उसकी तकलीफ

को बढ़ा रहा था. लेकिन उसकी बेटी वैसी ही बैठी थी, जैसी उसने बिठा दी थी. वह न हिल रही थी, न डुल रही थी. उसे लगा, उसकी बेटी देख भी नहीं रही है, सुन भी नहीं रही है.

वह बाहर सड़क की ओर देख रहा था, जिधर से उस प्रभावशाली व्यक्ति के आने की उम्मीद थी. तभी उसके कानों में गूंजती-सी सामूहिक हंसी की ध्वनि पड़ी, परिचित-सी. उसने चौंककर गर्दन घुमायी. वे लोग. वे सब डी. एम. की कोठी से निकल रहे थे. वैसी ही आंखें, वैसे ही चेहरे, वही दरिंदगी, वैसी ही खौफ पैदा करनेवाली हंसी. लेकिन नहीं. ये वे लोग नहीं थे. ये जिलाधीश के निवास से निकले थे. ये वे लोग नहीं हो सकते थे. उसे फिर भ्रम हुआ था.

एक कार आकर रुकी. वह प्रभावशाली व्यक्ति अपने कुछ साथियों के साथ उतरा. वह लड़की को वहीं छोड़ उस व्यक्ति के सामने जाकर खड़ा हो गया.

"अच्छा, अच्छा. तो आ गये आप. लड़की कहां है?" उन्होंने चारों ओर नजर फेरी.

"जी, वह है." उसने अपनी बेटी की ओर संकेत किया.

"अच्छा. अच्छा. उसे लेकर साथ आइए." वे मित्रों सहित जिलाधीश-कक्ष की ओर बढ़ते हुए बोले.

वह दौड़ता हुआ लड़की के पास पहुंचा. उसे बांह से पकड़ लगभग घसीटता हुआ-सा उनके साथ हो लिया.

औपचारिक अभिवादन की रस्म अदायगी के बाद वे सामने कुर्सी पर जमी साम्राज्यी शख्सियत से खुशामद भरे लहजे में बोले, "हम अपनी बात दो मिनिट बाद करेंगे, पहले एक मिनिट आप जरा इन साहब और इस लड़की की बात सुन लीजिए."

वह भारी शख्सियत बिना कुछ बोले, उससे मुखातिब हो गयी. मुद्रा संकेत कर रही थी कि वह जल्दी कह डाले, जो भी कहना हो.

इतने लोगों और अपनी बेटी के आगे वह सब कहने का खयाल करते ही उसके बदन से पसीना फूटने लगा.

"कहो भाई, मुंह क्या ताक रहे हो. साब का वक्त बहुत कीमती है." जैसे उसके हाथ-मुंह बांधकर धक्का दिया गया.

उसे बेटी बिसर गयी. आस-पास के लोग बिसर गये. फिर जब उसका कहना रुका तो वह बुरी तरह से हांफ रहा था. उसकी आवाज लड़खड़ाने लगी थी. आखिर में उसके मुंह से निकला, "मुझे न्याय दिलाइए हुजूर. मैं और मेरी बेटी. . ." फिर वह कुछ नहीं कह सका. वह बिल्कुल भूल गया था कि वह पढ़ा-लिखा आदमी है.

सब लोग गंभीर थे. न कोई हंसा था, न कोई बीच में बोला था. मगर सबकी निगाहें लड़की को ऊपर से नीचे तक टटोल रही थीं. उसे लगा, उसकी बेटी उस कमरे में एक दर्शनीय वस्तु है. वह चाहता था कि लड़की कमरे में न हो, मगर. . .

"तुम्हें कहां उठाकर ले गये थे?"

लड़की चुप रही.

"क्या यह लड़की बोलती नहीं?" उस भारी आवाज में झल्लाहट भरी हुई थी.

वह हड़बड़ा गया, "बोलती है, साब, मगर उस दिन से. . .उस हादसे के बाद. . ."

"हादसा तो हो ही गया. अब क्या चुप रहने से बदमाश पकड़ में आ जायेंगे. ठीक है, इस लड़की से कहो, वह सब लिख-कर मुझे दे." वह भारी शख्सियत अब उस प्रभावशाली व्यक्ति से कह रही थी, "इस लड़की का मेडिकल कराया कि नहीं?"

"जी हां, जी हां, वह सब तो हो गया है." प्रभावशाली व्यक्ति की प्रभावहीन आवाज उसके कानों तक आयी, "भई देखो, साब ने सारा मामला सुन लिया है. तुम इस लड़की से यहीं एप्लीकेशन लिखवा दो और फिक्र मत करो."

लड़की वैसी ही गुमसुम खड़ी रही. कागज-पेन उनके हाथ से उसने ले लिये. लड़की के हाथ में देता हुआ बोला, "लिख बेटी, लिख. लिख दे."

थोड़ी देर बाद जब वह उस भव्य इमारत के सुसज्जित कक्ष से अपनी बेटी के साथ बाहर आया तो उसे लग रहा था, बाप-बेटी दोनों को एक साथ नंगा कर दिया गया है.

वह कुछ ही कदम चला होगा कि एक बेहूदा-सा आदमी सामने आ गया. थाने के सामने भी शायद यही आदमी मिला था. ध्यान से देखा तो लगा कोई और आदमी था.

वह आदमी उसकी आंखों में झांकते हुए बोला, "क्यों इस भोली-भाली छोरी की मिट्टी कुटवा रहा है? यहां क्या है, असली तमाशा तो अदालत में होगा. गड्डी के गड्डी नोट डकारकर वकील तेरी छोरी से पूछेगा—जो तुझे भगाकर ले गया था, उसके साथ तू पहले क्या-क्या करती रही थी? तुझे वे कहां ले गये थे? कैसे ले गये थे? किसने तेरे कपड़े उतारे? किस आदमी का अंडरवियर किस रंग का था? जो आदमी सबसे पहले नंगा हुआ, उसके छिपे हिस्सों पर कौन-से छिपे निशान देखे? पहले तू किस-किस के साथ भाग चुकी है?"

लोग उसको और उसकी बेटी को घूर-घूर कर देखने लगे थे. कुछ लोग उसे रास्ते में रोककर अफसोस प्रकट करते थे. कुछ सहानुभूति प्रदर्शित करने उसके घर तक आने लगे थे. वे पूरी घटना ज्यों की त्यों सुनना चाहते थे. कुछ जोर देते थे कि सारा वाकया लड़की ही बयान करे. वे यह भी जानना चाहते थे कि उसने जो प्रार्थना पत्र जिले के अधिकारियों से लेकर प्रदेश और देश के उच्चाधिकारियों तक पहुंचाये हैं, उनका क्या हुआ? अभी तक किसी अधिकारी ने कोई प्रभावी कदम क्यों नहीं उठाया? वे जानना चाहते थे कि अपराधियों को पकड़वाने के लिए और पुलिस तथा सामाजिक कार्य-कर्ताओं-नेताओं को गति में लाने के लिए उसने अब तक कितना रुपया फूंक दिया था. जब वह उन्हें बताता कि उसके पास इतना पैसा नहीं है कि वह किसी को दे सके और उसने किसी को कुछ नहीं दिया, तो वे उसकी नादानी पर तरस खाते, झल्लाते उठ खड़े होते थे—जाते-जाते लड़की को नजर से खंगालते थे. उसके पास से कोई स्कैंडल सूंघ ले जाना चाहते थे ताकि अपने नथुने फुलाकर उसे बाहर सिनक सकें. इधर लड़की सफेद से और सफेद होती गयी थी. लोगों को उसकी बेटी पागल नजर आने लगी थी या बेवकूफ या बीमार.

लेकिन कुछ लोग ऐसे भी थे जो उससे नजरें मिलते ही बिचारने की कोशिश करते थे. वे उसे टोकते नहीं थे. उससे उसकी बेटी का हाल नहीं पूछते थे. पर उनकी एक नजर ही उसे बता देती थी कि ये न बोलने वाले लोग उसकी तकलीफ को महसूस कर रहे हैं. बहुत करीब से उसके और उसकी बेटी के घाव को पहचान रहे हैं. उसे यह भी लगता, ये लोग चाहते हैं कि अपराधियों को सजा मिले. तब उसके भीतर फिर से उबाल उठने लगता था और वह अपराधियों को खोज निकालने पर आमादा हो जाता था.

अखबार की बात अचानक उसके दिमाग में आयी. उसने सोचा, वह शुरू से ही गलती करता रहा है. सबसे पहले अखबार के संपादक से ही मिलना चाहिए था. अगर अखबार तरीके से कुछ छाप दे तो बहुत कुछ हो सकता था.

अब तक वह जान चुका था कि किसी भी प्रमुख व्यक्ति से मिलने जाने के लिए बेटी को ले जाना जरूरी है. हादसा उसके साथ नहीं, उसकी बेटी के साथ हुआ था. बेटी बोलती नहीं थी. फटी-बुझी आंखों से दिशाहीन देखती-ताकती थी. बेटी के एवज में सारी बातें उसे ही बयान करनी पड़ती थीं. फिर भी लोग बेटी की अनुपस्थिति में केवल उसके बाप का बयान सुनने को तैयार नहीं होते थे.

उसकी बेटी अब बात-बात पर झगड़ा नहीं करती थी. मान-मनौव्वल नहीं करती थी. हल्ला-गुल्ला नहीं करती थी. हर बात पर अपनी मौलिक राय नहीं देती थी. बाप जैसे ही बांह पकड़ता था, वह उठ खड़ी होती थी. बाप जिधर को चलता था, उसी तरफ चल पड़ती थी.

▣

संपादक के कमरे के बाहर ही चपरासी ने उसे और उसकी बेटी को रोक दिया. संपादक महत्वपूर्ण व्यक्ति था. अन्य महत्वपूर्ण लोगों का उससे मिलने आते रहना स्वाभाविक था. इस समय भी उसके साथ कुछ ऐसे ही लोग वार्तालाप कर रहे थे.

वह प्रतीक्षा करने लगा कि वे महत्वपूर्ण लोग बाहर निकलें तो वह अपनी बेटी के साथ जाकर अपनी बात कहे. तभी कमरे के बाहर लगा लाल बल्ब जलने-बुझने लगा. चपरासी दरवाजा खींचकर अंदर घुसा तो घनघनाती हंसी की आवाज संपादक के कमरे से निकलकर उसके कान से टकरायी. वह याद करने लगा कि यह आवाज पहले कहां सुनी है.

चपरासी ने उससे कहा कि साहब बुला रहे हैं. वह अंदर की ओर दरवाजा खोलकर खड़ा हो गया.

उसे आश्चर्य हुआ कि संपादक को उनकी उपस्थिति का भान कैसे हुआ! तभी उसकी नजर उस शीशे पर पड़ी जो अंदरवाले को बाहरवाले की उपस्थिति का आभास कराता था. उस शीशे के ठीक सामने ही उसकी बेटी खड़ी थी.

संपादक के एयरकंडीशन कमरे में घुसते ही वह रुक गया. एक बार फिर उसे लगा ये वही लोग हैं जिनकी वह तलाश कर रहा है. वे संपादक को घेर कर बैठे थे. चेहरों से टपकती पाशविकता, आंखों में वहशीपन. वह रक्तसनी मुस्क-

राहट, वैसा ही खूनी आत्मविश्वास. उसे लगा उसका दिमागी संतुलन डगमगा रहा है: ये लोग वे कैसे हो सकते हैं. ये संपादक के लोग हैं जो स्वयं संपादक की तरह महत्वपूर्ण हैं. इस समय संपादक से महत्वपूर्ण वार्तालाप कर रहे हैं. संपादक दयालु है जो उसने उसको और उसकी बेटी को इन महत्वपूर्ण व्यक्तियों के बैठे होने के बावजूद अंदर बुलवा लिया है.

उसने एक बार फिर बेटी की ओर से सारी घटना का बखान किया. संपादक एक-एक शब्द गौर से सुनता रहा. कनखियों से लड़की को भी देखता रहा. जब वह अपनी बात पूरी सुना चुका तब भी दो मिनिट तक लड़की की तरफ देखता हुआ चुप बना रहा. फिर उसने पूछा, "अब आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

लोगों से बातें करते-करते अब तक वह डगमगाना-लड़खड़ाना भूल गया था. वह हाथ जोड़कर बोला, "आप चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं. . . वे बदमाश लोग. . . आप अपने अखबार में. . ." वह एक भी वाक्य पूरा और पूरे आत्मविश्वास से नहीं बोल सका.

संपादक ने उसकी बेटी पर एक नजर डाली और पूछा, "आपकी बेटी पढ़ी-लिखी है?"

'जी. . . जी. इसने एम. ए. किया है. आगे रिसर्च की तैयारी थी, तब तक यह. . ."

"आप इस पढ़ी-लिखी लड़की की जिंदगी से क्यों खेलना चाहते हैं? वह तो गनीमत हुई आपका यह केस हमारे किसी संवाददाता के हाथ नहीं पड़ा. अन्यथा अब तक एक चटखारे-दार खबर अखबार में छप गयी होती—एक कुंवारी लड़की के साथ चार गुंडों द्वारा बलात्कार या एक पढ़ी-लिखी लड़की

मेहनत और मंजिल

▣ जेम्स ए. मिचनर

मैं एक बहुत ही गरीब परिवार में पला था. मेरी विधवा मां सीने-पिरोने का मुश्किल से मुश्किल काम करके परिवार के गुजारे के लिए कमाई करती रही और उस कमाई में से अपने छह बच्चों को स्कूल तक और दो को कॉलिज तक शिक्षा दी.

ग्यारह वर्ष की उम्र के बाद मैं हर ग्रीष्म काल में हफ्ते के छह दिन काम करता रहा और हर शीतकाल में हफ्ते के सातों दिन सुबह चार बजे उठकर लोगों के घरों में समाचार-पत्र देता रहा. चौदह वर्ष की उम्र में मैं नल बनानेवाले एक व्यक्ति के साथ दस घंटे काम करने लगा था.

इस सख्त मेहनत ने मेरे मन में काम के लिए नफरत पैदा करने के बजाय यह अहसास पैदा किया कि अक्लमंद लोगों को अपनी मंजिल पर पहुंचने के लिए सख्त से सख्त मेहनत करनी चाहिए. □

प्र. : सुखबीर

चार लड़कों के साथ भागी. इस तरह की खबर छपती तो आपकी बेटी की समाज में क्या इमेज बनती? आप एक शरीफ इंसान हैं, आपकी बेटी पढ़ी-लिखी लड़की है, इसलिए मैं आपको नेक सलाह दे रहा हूं कि इस सारे मामले को अखबार से दूर ही रखिए, वरना जिस बात को आज केवल चार लोग जानते हैं उसे कल सौ लोग जानेंगे. होना-जाना कुछ नहीं है. हम तो सिर्फ छाप सकते हैं, बाकी एक्शन लेना तो पुलिस और एडमिनिस्ट्रेशन का ही काम है. वैसे, आप कहें तो मुझे छापने में कोई एतराज नहीं. . . और आपकी बेटी की तबीयत ठीक नहीं है क्या?" संपादक और उसके पास बैठे लोग सिर्फ उसकी बेटी को घूर रहे थे.

उसकी बेटी फटी-बुझी आंखों से न जाने किस दिशा में देख रही थी. जब वह बेटी के साथ बाहर निकला तो संपादक के कमरे से फिर वही घनघनाती हंसी उठी. उसके बाहर आते ही संपादक के कमरे की हर आवाज अपनी जगह वापस आ गयी थी. लेकिन उसे वे सारी आवाजें मरी हुई लग रही थीं. वह किसी का कोई अर्थ नहीं समझ पा रहा था.

▣

उसकी बेटी बीमार थी. वह उसे लेकर एक डाक्टर से दूसरे डाक्टर तक भाग रहा था. डाक्टर कहते थे कि वह इतने दिनों तक क्या करता रहा. लड़की जिस मानसिक बीमारी का शिकार थी उसका निदान शीघ्र ही होना चाहिए था. उसकी विक्षिप्तता काफी आगे तक आ गयी थी. वे उसे मानसिक चिकित्सालय में भरती करने की सलाह देते थे. लेकिन वह अपनी बेटी को स्वयं से अलग करने के खयाल से ही दहलने लगता था. वह चाहता था कि उसकी बेटी बिना अस्पताल में भरती हुए ही ठीक हो जाये.

पश्चात्ताप के बगूले अब उसके अंदर पूरे वेग से घुमड़ते थे. क्यों वह उन शैतानों को सजा दिलाने की नाकाम कोशिश करता रहा? क्यों उनकी तलाश करता रहा? क्यों इस आदमी से उस आदमी तक भागता रहा? क्या हुआ उसकी भागदौड़ का परिणाम? उसे सबसे पहले लड़की को किसी डाक्टर के पास ले जाना चाहिए था. उसे तो यह होश ही नहीं रहा था कि उसकी बेटी बीमार है.

वह अपनी बेटी को सुप्रसिद्ध मनोचिकित्सक के पास ले गया था. उससे भी लड़की को पागलखाने में भरती कराने की सलाह पाकर निराश वापस लौट रहा था. चौराहा पार करके उसे दूसरी ओर के फुटपाथ पर पहुंचना था, इसलिए वह ट्रैफिक कम होने का इंतजार करने लगा. सहसा उसके कानों में दूर से आती कुछ आवाजें पड़ने लगीं. वह सतर्क होकर उन आवाजों को पहचानने की कोशिश करने लगा.

शायद कोई जुलूस था. हां, जुलूस ही था. जुलूस के झंडे दूर से ही नजर आने लगे थे. जुलूस इसी ओर आ रहा था. नारों की आवाजें तेज होती जा रही थीं, मगर अभी तक अस्पष्ट थीं. शायद विजय जुलूस था. अब जुलूस की अगुआई करते लोगों की आकृतियां साफ हो चली थीं. वे लोग उत्साह से मुट्ठियां हवा में उछाल रहे थे. कुछ लोग स्वयं को ही हवा में उछाल देते थे. उस समय उनके पैर किसी अदृश्य सीढ़ी पर पड़ते-से लगते थे मानो वे हवा में से ही कुछ पकड़कर वहीं टिके रहना चाहते हों.

जिन लोगों के हाथ में झंडे लगे थे उनका एक हाथ ऊपर उठता था. बाकी लोगों के दोनों हाथ नीचे होकर झटके के साथ ऊपर उछलते थे. लगता था, वे अपनी बंद मुट्ठियों को खोल-खोलकर अपना विजय-बीज सारे वातावरण में फैला देना चाहते हैं.

▣

जुलूस की आवाज स्पष्ट होती जा रही थी. उसने सुना जैसे कहा जा रहा हो—रोजी-व्यापार हमीं से है, घर-बाजार हमीं से है, शासन-सरकार हमीं से है. वह एकाएक गहरी लालसा और अपेक्षा से जुलूस को देखने लगा. क्या ये लोग उसकी मदद कर पायेंगे? एक-एक कर वे सब चेहरे उसकी आंखों से गुजर गये, सहायता की उम्मीद लेकर वह जिनसे मिला था और जो उभरे हुए काले दाग की तरह उसके दिमाग से चिपक गये थे. वह खरोंच-खरोंचकर इन दागों को मिटाने की बात सोचने लगा था. क्या उन काले दागों को खरोंचने में ये लोग कुछ करेंगे?

उसे अपने अंदर उत्साह पैदा होता हुआ लगा. जुलूस काफी करीब आ गया था. हवा में शान से लहराते जुलूस के झंडों की चमक में उसकी नजर खो गयी, तभी उसने अपनी बेटी की चीख सुनी, "पापा, वे! . . . वे!" लड़की की पुतलियां भय और आतंक से उलट गयी प्रतीत होती थीं. वह उसके कंधे पर झूलकर उसकी बांहों में आते-आते चेतनाशून्य हो गयी. उसने ध्यान से देखा तो उसके पैर भी बुरी तरह कांपने लगे. वह साफ-साफ पहचान रहा था—वे वही थे. उनकी आंखों में वहशी किस्म की चमक थी. चेहरों पर शैतानियत पसरी हुई थी. वे कहीं से भी विचलित नहीं थे. किसी के मुंह पर ढाटा नहीं बंधा हुआ था. उनके चेहरे आत्मविश्वास और विजयदीप्ति से ढके हुए थे. अगुआई करते वे शानदार झंडे उन्हीं के हाथों में थे. कांपते-थरथराते भी वह सोचने लगा था, किसी तरह उन झंडों को. . .! □

● ए-71, न्यू शाहगंज, आगरा (उ.प्र.)

चलते-चलते

"आखिर आपने इतना बड़ा व्यंग्य उपन्यास किस तरह से लिख डाला?"—किसी ने भगवतीचरण वर्मा से जरा गंभीरता से पूछा था.

पास ही पान चबा रहे श्रीलाल शुक्ल बोले, "बंधुवर! वास्तव में ऐसा व्यंग्य उपन्यास पत्नी से झगड़ने जैसा सहज काम है. बात में से बात और लतीफे में से लतीफा प्रसव करता चलता है और अपनी छाप उन पन्नों पर छोड़ता चला जाता है जो लेखक की कलम के नीचे बेरहमी से दबे रहते हैं." □

—अरविंद भारद्वाज

घुसखोरी

नरेंद्र निर्मोही

▣ सांत्वना पुरस्कार विजेता
कहानी : एक

हमें फाल-इन किया गया.

मैदान में खड़े रह सकना बहुत मुश्किल हो रहा था. कुछ जवान इधर-उधर पड़े पत्थरों से बर्फ हटा, उन पर बैठ गये थे. इस समय बुलाये जाने का कारण स्पष्ट था, किंतु कार्यवाही क्या होगी? अनुमान ही लगाया जा सकता था, निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना संभव नहीं था, घमासान लड़ाई के बाद जीती हुई दुश्मन की चौकी की तरह.

कैप्टन साहब को दूर से आते देख, हम सभी अपनी-अपनी जगहों से उठ, कतारों में खड़े हो गये. सावधान-विश्राम के बाद नायब सूबेदार ने सैल्यूट दिया और कैप्टन ने हाथ के पुलिंदे को कांख में दबाते हुए बैठने का इशारा किया.

"बावजूद इतनी ठंड के सुबह-सुबह बुलाने का कारण तुम लोग समझ ही गये होगे. कल जो अनहोनी हुई है, उसने हमारी यूनिट को कलंकित किया है. हमारी यूनिट अनुशासन तथा देशभक्ति के लिए पूरी ब्रिगेड में मशहूर रही है. आज एक जवान की नासमझी के कारण किस कदर बदनाम हुई है, उसका अंदाज तुम लोग नहीं लगा सकते. मेजर साहब का कत्ल, वो भी दिन-दहाड़े, पूरी यूनिट को दहला देनेवाली घटना है. यह सब एक साजिश के तहत हुआ है. हैरानी की बात है कि वह वर्षों तुम लोगों के बीच रहा फिर भी तुम यह न जान सके कि वह किसी खास गिरोह के लिए काम करता था. यह सरासर झूठ है कि मेजर साहब उसे बात-बात पर तंग करते रहते थे या कि उसने दरबार में इस बात की शिकायत की थी कि हमसे बेगार ली जाती है और अनुशासन के नाम पर तंग किया जाता है और इससे चिढ़कर ही मेजर साहब ने उसे बाद में अट्ठाइस दिन की क्वार्टर गार्ड दी थी या कि उसकी छुट्टी जानबूझकर नामंजूर कर दी गयी थी. . . असलियत तो यह है कि मेजर साहब उसकी पूरी गतिविधियों पर नजर रखे हुए थे और वे उसे रंगे हाथों पकड़ना चाहते थे. उसे 'आउट पास' देने या यूनिट से बाहर जाने देने से, कुछ का कुछ हो सकता था. ज्यों ही उसे स्पष्ट हो गया कि अब बचकर भाग निकलना किसी भी तरह संभव नहीं, तो उसने रास्ते का रोड़ा हटाने की सोची. . .बातें बहुत हैं जिन्हें बताने के लिए फिलहाल समय नहीं." कैप्टन बोलते-बोलते रुका और कागजों को उलटने-पलटने लगा.

"अभी कुछ देर बाद ब्रिगेडियर साहब फ्लाइट से आने वाले हैं. अपने अपने-टेंटों में जाकर सामान करीने से सजा लो और बारह बजे फिर यहीं इकट्ठे होना. मेजर साहब को सनिक सम्मान दिया जायेगा. . .नायक परवेज, लांस नायक सजवाण, सिपाही राजबहादुर, शिरिंग दोरजे तथा रामसिंह दस मिनट बाद दफ्तर में हाजिर होंगे," कहते हुए कैप्टन ने कागजों के पुलिंदे को हाथों में लिया और तेज-तेज कदमों से दफ्तर की तरफ चल दिया.

हम अजीब-सा एहसास लिये लौट रहे थे. साथ होते हुए भी न होने का दंश झेलते हुए, न पहले की तरह मुस्करा रहे थे और न ही बातचीत कर रहे थे. यूं लगा कि हम अपनी ही मय्यत में खुद शरीक हैं. इतनी कड़ी सर्दी का कोई आभास नहीं हो रहा था. हम सभी के चेहरों पर दुःख, क्षोभ, दहशत, उकता-

हट, दयनीयता के मिले-जुले भाव थे. मन-मस्तिष्क में अजीब उथल-पुथल थी. दिमाग किसी भी तरह यह गवारा नहीं कर रहा था कि इस माहौल के जरिये हमारे भीतर अनुशासन के नाम पर गुलामियत भरी जा रही है. सही-गलत की पहचान से महरूम किया जा रहा है. वर्ना सच्चाई को जानते हुए भी एक नयी साजिश की अभी-अभी नींव रखी गयी है, इसके विरुद्ध हम में से एक व्यक्ति भी सिर क्यों नहीं उठा सका? कैप्टन साहब ने जो कहा, क्या वह सच है? नहीं. . .नहीं. . .मन चीख-चीखकर कहना चाहता था लेकिन दिमाग क्रॉलिंग, पंद्रह मील की रेस, क्वार्टर गार्ड, कोर्ट मार्शल की आशंका और घर बरबाद हो जाने की कल्पना मात्र से मथा रहा था.

जब मेजर साहब को सैनिक सम्मान दिया जा रहा था, उसकी नजर बार-बार मेजर साहब के पार्थिव शरीर पर से फिसलती हुई यूनिट के सभी जवानों के चेहरों पर आ थम जाती. सभी के चेहरों पर अथाह पीड़ा के भाव थे. नजरें एक-दूसरे का सामना कर पाने में स्वयं को असमर्थ महसूस कर रही थीं. किसी नजर के हल्के इशारे भर की जरूरत थी, वह तम-तमाकर लाईन से बाहर आ ब्रिगेडियर साहब को साफ-साफ कह देता कि साहब हर छोटा साहब बड़े साहब के सामने सच्चाई को एक षड्यंत्र के रूप में प्रस्तुत करता है. हर बड़ा साहब इस षड्यंत्र को जानते हुए भी अनजान बने रहने का स्वांग भरता है चूंकि वह भी तो उन्हीं सीढ़ियों से चढ़ता हुआ ही तो मंजिल तक पहुंचता है. आज ही इन्हें यह अहसास क्यों हुआ कि हमारे गुमराह जवान ने सिर्फ मेजर साहब को ही कत्ल नहीं किया बल्कि बेकसूर परिवार को अनाथ किया है. मेजर साहब के भीतर के देशभक्त व कर्तव्य-परायण आदमी को कत्ल किया है. यहां जो कुछ रोज हो रहा है, उससे आंखें क्यों चुरायी जा रही हैं? क्या आप इस यूनिट के पिछले वर्षों का इतिहास जानते हैं?

जब 'स्लोप ऑफ आर्मस' हो रहा था, उसके लिए खड़े रह सकना दुश्वार हो रहा था. उसे अपने छोटेपन का एहसास कचोट रहा था. आत्मा में भीषण उतार-चढ़ाव था. एक क्षण के लिए वह स्वयं को रवि के साथ खड़ा महसूस कर रहा था, दूसरे ही क्षण उसे लगता कि वह किसी दूकान में खड़ा अपने बच्चों के लिए खिलौने, मिठाइयां खरीद रहा है. . .

अपने-अपने टेंटों में जाने की बजाय हम सभी एक ही टेंट में घुसे. सुबह से मन पर छाये जानलेवा सन्नाटे को हर कोई तोड़ना चाहता था लेकिन एक झिझक थी. कुछ वैसी ही जैसे किसी व्यक्ति को हम वर्षों से जानते हों और अपनी तकलीफ कहना चाहते हुए भी इस एहसास से जकड़े हों कि हमारी तकलीफ क्या वास्तव में इतनी बड़ी है कि यूं सभी के सामने बयां की जाय. होठों में हल्की-सी जुंबिश होती और फिर होंठ जकड़ जाते. विश्वास-अविश्वास के बीच एक द्वंद्व छिड़ा हुआ था.

टेंट के अंदर बुखारी धीरे-धीरे जलना शुरू हो चुकी थी. बुखारी के आस-पास हाथ ही हाथ थे. अपने-आप को गर्माने की कोशिश में मसरूफ. कुछ की नजरें छत पर केंद्रित थीं, कुछ की जमीन पर और कुछ की नजरें छत और जमीन पर से होती हुई पास पड़ी खाली चारपाई पर जा टिकतीं.

कल रवि यहां था और आज. . .कमाल ने उसके कंधे को हल्के से छुआ. बुखारी की आग से शरीर की सर्दी के साथ-साथ दिमागी ठंडापन भी कम होने लगा था. ये जानते हुए भी कि रवि के बारे में जो भी कहा गया है, वह सब मनगढंत है. खुले में कहने से हर कोई हिचकिचा रहा था. इससे पहले किसी भी ज्यादती पर मुंह की जुगाली तो प्रायः हर कोई कर ही लेता था सिवा दो-एक के. प्रत्येक के भीतर डर पैठ गया था कि यदि किसी ने रवि से सहानुभूति प्रकट की तो बहुत संभव है उसे भी इस मामले से संबद्ध कर लिया जाय. आंखों के सामने क्वार्टर गार्ड, क्रॉलिंग, कोर्ट मार्शल घूम जाता और दूसरी तरफ सच्चाई से आंखें मूंदने की विवशता मन को उद्वेलित करती. एक तरफ बीवी, बच्चे, मां-बाप, भुरभुरी दीवारों के सहारे खड़े घर, गांव और कस्बे थे और दूसरी ओर घुटन, सड़न और गुलामी का निरंतर कसता जाता हुआ रस्सा था.

उस दोपहर कुछ नहीं घटा और जो घटा था वह हम सबके भीतर ही भीतर बरसाती बादलों-सा उमड़-घुमड़ रहा था. बर्फ का गिरना जारी था. वातावरण में खामोशी थी. यहां तक कि उस तरफ बनी आफिसर्स मेस में सिर्फ पर्दे झूल रहे थे. कहीं कोई आहट नहीं थी.

पूरी दोपहर करवटें लेते ही गुजरी थी. जब भी वह करवटें लेता-लेता थक जाता तो बाहर गिरती बर्फ को किसी मासूम बच्चे की तरह चुपचाप निहारने लगता. सोने की कोशिश करता तो पिछले कई बरस आंखों में फैल जाते.

“ उस दिन किसी जवान ने खाना नहीं खाया. सेना में खाना न खाना संगीन जुर्म है, मगर.....!——सरहद पर तैनात निगहबान और चौकस आंखों की दुश्मन पर आग उगलती गाथाओं से अलग-थलग, उनके आंसुओं को, घर की दहलीज से लेकर सीमा-चौकी तक बिछे रास्तों के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ संजोती हुई गुस्से और प्यार से भरपूर संवेदनशील कहानी—— **”**

तीन बरस पहले की एक ढलती दोपहर को हम सभी ट्रकों पर बोरियां लादकर लौटे थे, भूख-प्यास से बेहाल, थकावट से चूर. उस रोज पंद्रह दिनों बाद डाक आयी थी.

सभी को खतों का इंतजार था. वीरान इलाकों में खत भी जिंदा साथी ही तो होते हैं. हम सभी खत पढ़ने में व्यस्त थे. वतना अपनी बीवी का खत सभी को पढ़कर सुना रहा था. सभी खिलखिला कर हंस रहे थे कि तभी मेजर साहब आ धमके. शाम की हाजिरी में एक मिनट की देरी हो गयी थी. मेजर साहब ने गुर्राते हुए वतने के हाथ में पकड़ी उसके बच्चे की फोटो फाड़कर उसके कदमों पर गिरा दी थी. वतना बिल-बिला उठा. वतने ने सावधान मुद्रा में कहा, "साहब, ये जला-वतन हम अपनी बीवी, बच्चों की खातिर झेलते हैं."

"आई शैल मेक यूअर लाईफ हेल."—चिल्लाते हुए मेजर साहब हाथ में पकड़े रूल को अपनी जांघों पर किसी मासूम गोलमटोल बच्चे के गालों को थपथपाते से चले गये.

बात-बात पर खिलखिलाने वाला वतना इतना संवेदन-शील भी हो सकता है, यह हमने उस दिन ही जाना

दूसरे दिन उसे सजा हुई पांच मील लंबी दौड़. पांचवें-सातवें रोज उसकी क्वार्टर गार्ड की गयी. आर्डरली ड्यूटी के लिए बुलाया गया. फिर एक दिन मेजर साहब की मेम साहिबा को सैल्यूट न करने के एवज में सप्लाई में बोरियां ढोने की

ड्यूटी लगायी गयी. उसने छुट्टी मांगी जो नामंजूर कर दी गयी. संदेशवाहक के रूप में उसे मीलों-मील दौड़ाया जाता. हर शाम कोल्हू के बैल-सा थका-हारा यूनिट में लौटता.

किसी की हल्की-सी पीड़ा से द्रवित होने वाला हृदय मरघट में परिवर्तित होने लगा. चिपचिपाती जुराबों को धोते उसके हाथ अचानक रुक जाते. बात-बात पर मजाक करने की उसकी आदत, कैंसर से जर्जर होते-जाते रोगी-सी अंत-र्मुखता में तब्दील होने लगी. मग-प्लेट उठाता और बिना कुछ कहे जनरल मेस से अपना खाना ले आता. ट्रंक पर खाना रख खाट पर लेटा कुछ न कुछ सोचता रहता. बक्से में से पुरानी चिट्ठियां निकालता और पढ़ने लगता. सिगरेट सुलगा लेता.

उसकी चारपाई पर कुछ न कुछ बिखरा रहता, किसी स्कूल के सामने बैठी बुढ़िया द्वारा बेचे जा रहे सौदे-सुल्फे की तरह. हम उसे बातों में उलझाना चाहते हुए भी उलझा न पाते. दरअसल, होता यह था कि रोज किसी न किसी बात पर कोई न कोई सजा उसे मिल ही जाती. मेजर को यह बर्दाश्त नहीं था कि कोई आदमी सजाएं तो झेल ले पर किये की माफी न मांगे. नायब सूबेदार ने अभिन्न मित्र की हैसियत जताते हुए उससे पेशकश भी की थी कि चलकर मेजर से माफी मांग ले और रोज के झंझटों से मुक्त हो. पर वह एक जवान नहीं, युवक था. वह युवक बने रहना चाहता था. उसके पास जुबां थी, हाथ थे और था दिलो-दिमाग किंतु सही जवान होने के लिए जुबां, हाथों, दिलोदिमाग को देश निकाला दिया जाना अपेक्षित ही नहीं जरूरी था, क्योंकि उसके होते अनुशासन के नाम पर गुलामी को देशभक्ति का कवच ओढ़ाकर अपने आपको सुरक्षित महसूस नहीं किया जा सकता था.

एक दिन तो हद ही हो गयी. इंस्पैक्शन परेड हो रही थी, मेजर साहब मुआयना कर रहे थे. . . "खालसा, बाहर आओ."

"मैं खालसा नहीं, जवान हूं."

"पंजाबी में बात करो," मेजर ने दहाड़ते हुए कहा.

"मैं पंजाबी नहीं जानता." वतने ने धीरे से उत्तर दिया.

"सूबेदार, इसे पंजाबी सिखाओ." मेजर ने वतने को ऊपर से नीचे तक घूरते हुए कहा.

"इसे वास्तव में पंजाबी नहीं आती." रवि ने परेड से बाहर आकर कहा.

"तुमसे पूछा किसने?" मेजर चीखा.

वतने को सात दिन पिट्ठू लगाकर लगातार पांच मील दौड़ने की सजा मिली और रवि को पंद्रह दिन तक क्रॉलिंग करते रहने का आदेश हुआ. हम फटी-फटी नजरों से ये सब देखते रहे.

यह सही है कि वतने ने मेजर से माफी नहीं मांगी, लेकिन उसने सभी कुछ सहने की एक आदत-सी बना ली थी. वह पिट्ठू ढोता, क्रॉलिंग करता, क्वार्टर गार्ड भुगतता, किसी संत की तरह जो दर्द को भगवान की देन समझता है, आत्मा-परमात्मा की बातें करता हुआ उदास हो जाता. वह असह्य दर्द से कराहता जरूर लेकिन इस तकलीफ में किसी को शामिल न करता. उसके होठों पर न हंसी होती न क्षोभ. कभी-कभी तो लगता कि वह बोलना भूल ही चुका है. बहुत संभव है उसे हमसे वितृष्णा हो गयी हो पर रवि से भी तो उसका कोई विशेष लगाव नहीं रह गया था. हालांकि रवि ने उसकी तरफदारी की थी, टेंट में नहीं, खुलेआम डंके की चोट पर. जब वह नया-नया आया था तो अक्सर लंबे-लंबे खत लिखता. हमें हैरानी होती कि मिल्टरी में रहते हुए भी कोई आदमी इतने संजीदा एवं बढ़िया खत लिख सकता है. लेकिन ज्यों-ज्यों वह विचारों के जंगल में भटकता गया, खतों का आकार निरंतर कम होता चला गया. लंबे खतों की जगह आधे-आधे पृष्ठ के खतों ने ले ली. पहले वह महीने में आठ-दस खत लिखता, किंतु अब महीने में एक या बहुत किया तो दो खत लिखता औपचारिक से. उनमें घुमा-फिराकर एक ही बात लिखी होती. हम जिंदा कठपुतलियां हैं, जिनके पोर-पोर में तारें फिट कर दी गयी हैं. जब तारें खींची जाती हैं तो हम दर्द से बिलबिलाकर हाथ-पांव, सिर पटकती हैं और पटक रही हैं और तमाशबीन तालियां पीट-पीटकर हंस रहे हैं.

एक बार उससे पूछा भी था कि वह अब पहले जैसे खत क्यों नहीं लिखता. जिज्ञासावश नहीं, बल्कि इसलिए कि किसी

तरह वह फिर से उसी तरह लंबे-लंबे खत लिखने लगे तो हो सकता है कि वह अपने इर्द-गिर्द बुने हुए जाले से बाहर निकल आए. सिर्फ रवि था जो कभी-कभार उसकी दुनिया में झांक लेता. महाजन के सूद-सी बढ़ती जाती पीड़ा निरंतर निराशा में बदल रही थी.

"साथी शिवचरण, गुलामी क्या है? बता सकते हो?" कमाल ने बड़ी मासूमियत से उसके कंधे को रूठे हुए जिद्दी बालक की तरह झिझोड़ते हुए, उसकी आंखों में झांकते हुए पूछा. कमाल के चेहरे पर फैली आड़ी-तिरछी रेखाएं, हल्का पीलापन, क्षण-प्रतिक्षण बदलते-भाव, पटखनी खाए पहलवान-सी खिसियाहट लिए कहीं भी समा जाने को आतुर थे. सोच और चिंता से झुका सर, अभी-अभी डोली विदा करके आए बाप-सा धीरे-धीरे उठ रहा था.

"साथी. . ." कमाल कुछ क्षण खामोश रहा. कुछ खोजता-सा अपने भीतर ही भीतर, फिर बोला, "शिवु, आदमी पशु नहीं है. . .आदमी कठपुतली नहीं है. . .आदमी मजबूरी नहीं है. . .आदमी. . ." उसकी आवाज मैदानी नदी के जल-सी गंभीर तथा समतल थी.

बाहर हल्का-हल्का अंधेरा घिरने लगा था. शेड में खड़े इंजिन-सी थरथराती बुखारी आंच में तप रहे लोहे-सी धीरे-धीरे लाल होती जा रही थी और बर्फ मास्टर को पाठ सुनाते बच्चे की तरह रुक-रुककर गिर रही थी. सर्दी बाढ़ के पानी की तरह निरंतर बढ़ती जा रही थी. कमाल का बोलना जारी था. —"साथी, तूने वतने का मरना नहीं देखा. चेरियन को आर्डरली ड्यूटी से इनकार करते नहीं देखा और इस पर मेजर की बौखलाहट नहीं देखी—यू माई फुट. आई विल शूट यू. रवि को अक्सर पढ़ते और रात-रातभर परेशान होते नहीं देखा. तब तुम लंबी छुट्टी पर थे." तुम्हें छुट्टी पर गये ज्यादा दिन नहीं हुए थे कि एक दिन हम सब ट्रकों में पत्थर लाद रहे थे. वतना काफी सुस्त नजर आ रहा था. हमारे लाख पूछने पर भी वह खामोश रहा किसी मौनी बाबा की तरह. रवि ने उसे पास ही में वृक्ष के नीचे आराम करने को कहा. वह बैठ गया. तभी नायब सूबेदार की नजर उस पर पड़ी. वह आकाश छूती आग की लपट-सा भभका—'गरायीं, इधर काय को बैठा है!'

'नहीं उस्ताद, थक गया हूं.' वतने ने धीरे से कहा; जो हमने तो सुना पर उस्ताद ने नहीं.

'अरे, वह तो दफ्तर में बैठा बुखारी सेंक रहा है. यू माई फुट.' चेरियन पीठ पर रखे भारी पत्थर को ट्रक में ठेलते हुए बोला. सभी खिलखिला कर हंस पड़े. उस्ताद भी बिना मुस्कराये न रह सका.

'उस्ताद शरीर टूट रहा है और हल्का बुखार भी है.'

'गरायीं, पहले क्यों नहीं बताया?' कहते हुए उस्ताद दूसरी तरफ हो लिया.

गरायीं सूबेदार का तकिया कलाम था.

दोपहर जब टेंटों में पहुंचे वतने के शरीर की हरारत बढ़ रही थी. बिना कुछ खाए-पिए वह लेट गया. उसने पूरा ट्रंक छान मारा पर कहीं कोई टिकिया नहीं मिली, जो बुखार को कम कर सकती.

'गरायीं. . .गरायीं. . .' करता हुआ उस्ताद आ पहुंचा.

'गरायीं, देसी नुस्खा कर.' कहते हुए गिलास में थोड़ी-सी रम डालकर पानी मिलाने लगा.

'हरारत थकावट से है गरायीं, और हरारत खत्म करने का एक ही नुस्खा है गरायीं, दो पैग दारू.'

दूसरा पैग खत्म होने को ही था कि हम यानी मैं और रवि पहुंचे.

हम सभी के साथ वतने का नाम भी रेकी पार्टी में था. सांय साढ़े तीन बजे मेजर साहब ने 'इंसट्रक्शंज' देने के लिए बुला रखा था. मेजर बात-बात पर बरसता था. सजा देने के नये-नये बहाने ढूंढ़ता. बहाने न मिलते तो सीधा गालियों पर उतर आता. दरअसल, उसे दिन-प्रतिदिन अनुशासन की चिंता घुन-सी अंदर ही अंदर खाये जा रही थी. फलस्वरूप रोज एक न एक को तो सजा मिलती ही. चार-छह जवान रह गये थे जिनकी कुहनियों पर क्रॉलिंग के निशान नहीं थे.

"साथी शिवचरण, सुन रहे हो न?" कमाल ने पूछा तो वह उस समय जमीन को अपलक देखे जा रहा था. जिसके साथ बरस गुजारे हों, छोटे-छोटे दुःख-सुख बांटे हों, सफर किया हो, लड़ाइयां लड़ी हों, एक-दूसरे के जख्मों को सहलाया हो, साथ-साथ पत्थर ढोये हों, जिसकी शादी, मंगनी में शामिल हुए हों. रातें बातें करते हुए गुजारी हों. भाभी-भाभी करते हुए मुख सूखा हो, उसी भाभी की सूनी मांग की कल्पना करना कितना तकलीफदेह होता है.

▣ नरेंद्र निर्मोही
जन्म : 8 मार्च, 1952

—"निजी असफलताओं के दौर में, जो कुछ मैं नहीं था, वही कुछ साबित किया जाता रहा तो खुद को अभिव्यक्त करने की छटपटाहट ने हाथ में कलम थमा दी. मगर ज्यों-ज्यों अनुभव-संसार का दायरा व्यापक हुआ, निजी तकलीफें बहुत छोटी लगने लगीं. बेहतर जीवन की तलाश में जुटे लोगों के संघर्ष को उनकी खामियों-खूबियों के साथ उजागर करना मेरी लेखनी का ध्येय है."

—अब तक दस-बारह कहानियां प्रकाशित : 'निर्झर' मासिक का संपादन.
संप्रति : हिंदी अधिकारी.

मर्मांतक पीड़ा के अथाह क्षणों में किसी आत्मीय स्पर्श से जिस तरह जमीन को घूरती एकटक नजरें, पहले जमीन पर इधर-उधर फैलती हुई, आत्मीय को देखने की इच्छा से अभिभूत धीरे-धीरे उठती हुई आत्मीय के चेहरे पर आ टिकती हैं ठीक वैसे ही उसकी नजरें भी कमाल के चेहरे पर आकर टिक गयीं. कोई कुछ नहीं बोला, अभी-अभी झगड़े दो दोस्तों की तरह.

जानलेवा चुप्पी को तोड़ने की गरज से कमाल खंखारा और फिर सुनाने लगा.

दोपहर बाद की इंस्ट्रक्शंज कहर बरपा गयीं. हम इंस्ट्रक्शंज लेने के लिए एकत्रित हुए तो हाजिरी हुई. वतना नहीं था. मेजर चीखा, 'सूबेदार, काल हिम जस्ट नाऊ.'

नायब सूबेदार के मुंह से अभी 'राईट सर' भी नहीं निकला था कि रवि लाइन से बाहर आ गया, "सर, उसे बुखार है."

'राइट सर', कहने के बाद 'अबाऊट टर्न' होता-होता उस्ताद रुक गया, इस उम्मीद में कि शायद साहब अपना फैसला बदल दें. बरसों मिलटरी में रहने के बाद भी उस्ताद नहीं जान सका कि साहब के मुंह से अगर किसी के लिए 'फांसी' निकल गयी तो 'फांसी' लगकर ही रहेगी. दुनिया की कोई ताकत इसे रोक नहीं सकती. साहब का 'आर्डर' आर्डर है, किसी विरोधी राजनीतिज्ञ के विरुद्ध बिठाया गया जांच कमीशन नहीं, जहां सच्चा-झूठा होने के लिए कुछ-न-कुछ करना तो अभीष्ट रहता है. मिलटरी तो मिलटरी है, जहां आर्डर पिरामिड की तरह ऊपर से नीचे तक फैलते जाते हैं.

"गो!" मेजर साहब ने इतने ऊंचे स्वर में कहा कि लेफ्ट-राइट करता उस्ताद दौड़ते-दौड़ते टेंट तक पहुंचा.

"डाक्टर को रिपोर्ट किया! मेजर मुखातिब हुआ."

"नहीं साहब." रवि ने बताया.

"क्यों?" साहब का पूछना दिमाग में हथौड़े-सा बजा.

"डिस्पेंसरी में कोई नहीं था."

"नो बहानेबाजी."

रवि लाईन में फाल-इन हो गया. वतना अपना तपता हुआ शरीर लिए हाजिर हुआ.

"टर्न अप क्यों नहीं हुए?"

"साहब बुखार आ. . ." वतना कह भी न पाया था कि मेजर चीखा, "डाक्टर को रिपोर्ट किया?"

"साहब, डिस्पेंसरी. . ." वतना हकलाने लगा.

"तो इधर आकर पेशेंट लाईन में खड़ा क्यों नहीं हुआ?" मेजर ने दांत किटकिटाये. इसी बीच शराब की बू मेजर के नथुनों से आ टकरायी. वे वतने के थोड़ा और करीब आये, "यू ब्लडी ड्रिंक किया!"

"साहब उस्ताद ने. . ."

"रवि, कम आऊट. मुझे डॉज किया. आई विल टीच यू ए लेसन."

"साहब मैंने डॉज. . ."

"यू शटअप. यू बीफूल्ड मी."

"नहीं साहब. रवि ने. . ."

"यू शटअप नानसेंस."

"यू फाईव माईल. यू टेन माईल. जस्ट नाऊ." मेजर ने उंगली के इशारे से वतने और रवि को सजा सुनायी.

"स्टार्ट. . ." मेजर चिल्लाया.

"साहब, ही. . ." रवि ने कहना चाहा.

"आई से स्टार्ट!" से पूरा वातावरण गूंज उठा.

रवि ने भागना शुरू किया पर वतना बुखार, नशे, अपमान, क्षोभ और क्रोध से जल रहा था. वह भाग सकने की स्थिति में कतई नहीं था.

मेजर उसके पास जाकर गुर्राया, "स्टार्ट. . .!" वतने ने मेजर को देखा और स्थिर खड़ा रहा.

"आई से स्टार्ट." कहते हुए मेजर ने हाथ में पकड़े रूल को पूरे जोर से वतने की पिंडलियों पर मारा गोया किसी रईस ने यह बताने के लिए कि उसका घोड़ा सधा हुआ, आज्ञाकारी और हवा से बातें करने वाला है, अपने मेहमानों को बुलाया हो और घोड़ा मारे दर्द के उनके सामने चलने से इनकार कर रहा हो और रईस अपमानित-सा महसूस करता हुआ और अपमान से बचने के लिए घोड़े को चाबुक मार रहा हो.

वतना दर्द से बिलबिलाता हुआ थोड़ा भागा. . . दस-बीस कदम ही चला होगा कि मन, शरीर, दिमाग जवाब देने लगे.

मरते-करते चालीस कदम ही तय किये होंगे कि उसे भागना तो दूर, खड़ा होना असंभव लगने लगा. फिर भी किसी तरह होंठों को दांतों के बीच दबाये वह खड़ा रहा. रवि मुड़-मुड़ कर वतने को देखता रहा और लगातार भागता रहा.

मेजर फिर वतने के पास पहुंचा, "ओबे मी. अदरवाइज आई शेल मेक यूअर लाईफ हेल. माईंड इट!"

वतना तीन कदम और चला. उससे आगे नहीं जा पाया और वहीं बैठ गया.

मेजर को लग रहा था कि यह सब उसे नीचा दिखाने के लिए ही किया जा रहा है. वे चाहते थे कि किसी तरह एक राऊंड तो पूरा हो फिर भले ही वे खुद उसे छोड़ दें. क्षण भर के लिए उन्हें लगा कि संभव है जवान वास्तव में ही बीमार हो और फिर वह अक्सर उसके बच्चों को स्कूल, घर छोड़ने जाता रहा है. पार्क में घुमाने ले जाता रहा है. जब कोठी बन रही थी तो ईंटें, गारा, मिट्टी ढोता रहा है. इच्छा हुई कि अपना आदेश वापिस ले लें. लेकिन जब तक वे वतने के पास दुबारा पहुंचे उनकी नजर चमचमाती वर्दी, बूटों और हाथ में पकड़े रूल पर से फिसलती हुई कंधे पर लटके शेर पर जा अटकी. शेर के साथ एक स्टार की कल्पना करते ही उन्होंने सिर को हल्का-सा झटका दिया, 'नो मर्सी.' वे पूरे जोश से चिल्लाये, "ओबे मी. अदरवाइज आई विल शूट यू." पूरा वातावरण थरथरा उठा.

सभी की नजर वतन पर केंद्रित थी. इसी बीच रवि दो राऊंड पूरे कर चुका था. वतने के पास से गुजरते हुए उसकी चाल धीमी पड़ जाती. रुकना चाहते हुए भी न रुक सकने की विवशता से त्रस्त वह भाग रहा था. भागता जा रहा था कि एकाएक ठिठक गया.

जब मेजर बार-बार दहाड़ रहा था, 'ओबे मी, अदरवाईज आई विल शूट यू'. . .वतना कानों को कुहनियों में दबाये बठा रहा. बैठा रहा. पलक झपकते ही वह उठा, 'यू किल मी. यू बीट मी. आई कांट ओबे, आई कांट ओबे मोर. यू किल मी, यू किल मी.' उसका स्वर हवाओं में फैल गया.

'यू माई फुट, रास्कल, यू ब्लडी, यू मैड, यू सेन.' कहते हुए मेजर लातों, घूंसों, रूल से वतने को पीटता हुआ चिल्लाया '. . .गेट हिम मेडीकल एक्जामइंड.'

शिबू, उस समय मेजर की हालत देखने लायक थी. जीवन में पहली पराजय आदमी को अपनी ही नजरों में कितना गिरा देती है, यह मेजर की हालत से बखूबी समझा जा सकता था.

कमाल जब वतने के बारे में यह सब सुना रहा था, इसी बीच सज्वाण, राजबहादुर, शिरिंग दोरजे भी टेंट में आ गये थे.

"शाथी हम वतनशिंघ का बहुत शेवा किया. जब वतन शिंघ को मालूम हुआ कि तंदुरुस्त होते ही, उस पर ग्राऊंड कोर्ट मार्शल किया जायेगा, वो शोते में बोलता, 'शाब, यू कीळ मी. मुझको गोली मार दो. वतनशिंघ बहादुरी की मौत मरेगा, गुलामी नहीं शहेगा.' अच्छा हुआ वतनशिंघ अस्पताल में ही मर गया. शिवचरण को बहुत याद करता था." इतना कह शिरिंग दोरजे बुखारी तापने लगा.

"सुबह साहब ने बुलाया था. क्या कहा?" उसने सज्वाण से पूछा. कमाल बुखारी की ओर झुक आया.

"अरे शिबू यार, तू भी भोला है, जो बड़े साहब ने कहा था चेरियन को सजा देने से पहले, वही कैप्टन साहब ने दुहराया था. वही रटे-रटाये शब्द कि रवि, हम सभी को मेजर के खिलाफ भड़काता था, कि रवि शराब पीकर हमें गालियां बकता था, कि रवि प्राहब्टिड लिटरेचर पढ़ा करता था, कि रवि हमें खाना न खाने के लिए कहा करता था, कि रवि साहब की हुकमउदूली किया करता था, कि रवि हमें जुआ खेलने के लिए प्रेरित करता था. वह बात-बात पर भिड़ जाता था. मेजर हल्की-सी सजा देता तो मानने से इनकार कर देता, अरे क्या नहीं कहा?"

"साथी, तूने क्या जवाब दिया?" कमाल ने पूछा.

"वही, जो चेरियन के वक्त कहा था कि साहब हमारी उससे कभी नहीं पटती थी. वह हमारे टेंट में आता ही नहीं था, इस डर से कि मैं सब कुछ आपके सामने उगल दूंगा. वह कभी भी एक शब्द तक नहीं बोलता था सिवा हां-हूं के. हमें इस बात का तनिक एहसास तक नहीं था कि वह यह सब करेगा. चुप तो रहता था वह!"

उस रोज दरबार में रवि ने कहा था, "साहब, दरबार में बोलने की धृष्टता कर रहा हूं, ये भली-भांति जानते हुए कि इसका अंजाम क्या होगा? लेकिन बेटा अपनी तकलीफ बाप से नहीं तो किससे कहे? आप किसी भी जवान से पूछ लीजिए कि आज जैसा लजीज खाना क्या रोज मिलता है हमें? खीर की प्लेट की दरकार कतई नहीं, लेकिन दाल-सब्जी में जो कंकड़ दांतों से टकराते हैं, आधी कच्ची, आधी पक्की रोटियां खाने से जो पेट में दर्द उठता है, उसके प्रति यदि कोई जवान शिकायत लेकर ओ. सी. साहब के पास जाता है तो दूसरे दिन उस जवान को पिट्ठू लगाने की सजा मिलती है. इस बात की आड़ लेकर कि उसकी कमीज के बटन सीध में नहीं हैं. आप ही तो कहते हैं कि किसी जवान से आर्डरली ड्यूटी नहीं ली जायेगी. हम आपकी ही बात दोहराते हैं तो ग्राउंड कोर्ट मार्शल का चाबुक हमारी पीठों पर पड़ता है. बेकसूर बीमार जवान को सजा देना ही यदि अनुशासन है तो हम इसे भी स्वीकार करते हैं, बशर्ते भर्ती करते समय हमें इस बात से भी आगाह किया जाये कि फौज में आप पढ़-लिख नहीं सकते. न कुछ बोल ही सकते हैं. सिर्फ सुन सकते हैं—आर्डर, गालियां, सजाएं, मूव, रीट्रीट."

"स्टाप." ब्रिगेडियर ने तनिक आवेश के साथ कहा, "तुम अपनी तकलीफ कहो. इनकी वकालत नहीं करो."

"साहब, एक निश्चित अवधि के पश्चात यदि हम चाहें तो नौकरी छोड़ सकें."

"सर, वी आर गेटिंग लेट." मेजर ने विनम्रतापूर्वक ब्रिगेडियर से कहा.

"इट्स आल नाऊ," कहते हुए ब्रिगेडियर साहब उठ खड़े हुए.

रास्ते भर मेजर साहब ब्रिगेडियर साहब को बताते रहे कि सर, डिस्पिलन मेनटेन करने में थोड़ी-बहुत सप्रैशन तो

टेट एंड कीप देम फिट.

सभी खामोश थे सिर्फ बुखारी की आवाज कानों को भेद रही थी. सभी एक-दूसरे के चेहरों पर आ-जा रहे भावों को पढ़ने में व्यस्त थे कि तभी कमाल ने इशारे से सभी को और पास हो जाने के लिए कहा. खुद उठकर दरवाजा बंद किया. उसने बर्नर को और तेज किया. बुखारी भक-भककर और तेज जलने लगी. उसने बेल्ट को ढीला किया. कमीज के. नीचे से कागजों का पुलिंदा निकाला. टेबल लैंप की रोशनी मद्धिम कर उसे पास कर लिया. हमने गोल दायरा बना लिया जैसे कि युद्ध के दिनों रात को नक्शा देखने के लिए बनाया करते थे.

कमाल ने पढ़ना शुरू किया, 'हम जो भी कहना या बताना चाहते हैं, अनुशासन इसकी इजाजत नहीं देता. हम सोचने के लिए विवश हैं कि जो अनुशासन हमें ये बताने के लिए भी कि हमें ढंग का खाना नहीं मिलता, कि हम से आर्डरली ड्यूटी अपेक्षित नहीं है, कि हमें गर्मी में गर्मी और सर्दी में सर्दी लगती है, कि हमारी बीवी बीमार है, हमारा मुन्ना मर गया है, छुट्टी चाहिए, पर पांच-दस मील की रेस, 28 दिन की क्वार्टर गार्ड, ग्राउंड कोर्ट मार्शल की सजा देता है, उस अनुशासन को आखिर कब तक ढोते रहेंगे. बंधुआ मजदूरी के उन्मूलन के लिए कानून है लेकिन कोई जवान जो एक बार फौज में भर्ती हो जाता है, जिंदगी भर फौज नहीं छोड़ सकता. फौज में रहकर वतने की तरह तिल-तिल मर सकता है, चेरियन की तरह तकलीफ बयान नहीं कर सकता, छुट्टी नहीं मांग सकता. इसे आप क्या कहेंगे? अनु. . .शासन?

'हम अभावों में जीते हैं, पलते हैं, तकलीफों में भी जिंदा रहते हैं. चूंकि हमारे भीतर एक आत्मा है, जो हमें मरने नहीं देती. जो जुल्मों को सहती है, आकंठ डूब जाने की स्थिति तक सहती है, फिर उन जुल्मों के रू-ब-रू खड़ी होती है. ग्राऊंड के किनारे का पेड़ वही है. उसकी दो मोटी टहनियों से रोज दो बंदूकें टांगी जाती हैं. जवान के दो हाथ उन बंदूकों को पकड़े रहते हैं, उसके पांव ऊपर उठे रहते हैं, सिर्फ उंगलियां जमीन को छूती हैं. घंटों उसे इसी स्थिति में रखा जाता है. उंगलियां टूटने की हद तक मुड़ती हैं. हम सभी जानते हैं कि कभी वे उंगलियां वतने की होती थीं, कभी चेरियन की, कभी जार्ज की तो कभी युनूस की. और फिर अक्सर मेरी उंगलियां जमीन नापती थीं तो मेरे हाथ ऊंचाई नापते थे और सोचा करता था कि जब मैं नहीं रहूंगा तो किसी और की उंगलियां यूंही. . .टूटने की हद तक मुड़ती रहेंगी.'

'वतने और चेरियन का मरना हमें अथाह पीड़ा देता रहा है, उस पीड़ा से हम बिलबिलाते रहे हैं, कितने-कितने दिन तक हमें नींद नहीं आती थी. मेजर इसी को अपनी जीत समझता है. वो सोचता है कि इस तरह अनुशासन के नाम पर वह सभी के मुंह बंद कर देगा. भगतसिंह, सुभाष बोस, की प्रतिमाएं बाजारों में स्थापित हैं. लोग, सरकार जिनके दिवस मनाते हैं, फौज में उनकी जीवनी तथा विचारधारा से अवगत होना वर्जित है—मेजर, जिससे हम सभी प्लेग की तरह घबराते और नफरत करते रहे हैं, को निशाना बनाने का एक ही मंतव्य है कि दरबार के नाम पर जो नाटक होता है, उससे हम सभी वाकिफ हैं. जवान जो दूसरी फौज के जवान को मारने का हौसला रखता है, वह जुल्म के खिलाफ भी उसी शिद्दत से लड़ सकता है. हमें अनुशासन तो चाहिए लेकिन ग्राऊंड कोर्ट मार्शल के रूप में तशद्दद नहीं, हमें अनुशासन तो चाहिए लेकिन ये एहसास नहीं कि आदमी. . .'

एकाएक दरवाजे पर सरसराहट हुई. अनुमान लगाते देर नहीं लगी कि हो न हो दरवाजे पर कैप्टन साहब हैं. कमाल ने झट कागजों का पुलिंदा बुखारी के हवाले कर दिया.

अंदर घुसते ही कैप्टन साहब ने पूछा, "क्या कर रहे थे?"

"बुखारी सेंक रहे थे," कमाल ने उत्तर दिया.

"सभी को अपने टेंट में रहने को बोला था कि नहीं?"

"हमारे पास बुखारी जलाने को नहीं है." राजबहादुर जो अब तक खामोश था., एकदम बोला.

"एम. टी. से एक जरीकेन उठाकर ले आओ."

"राईट सर."

"जो तकलीफ हो हम से आकर बोलो." कहते हुए कैप्टन साहब चले गये.

कुछ दिनों तक तो रवि के बारे में कोई खबर नहीं मिली. पहले-पहल अफवाहों के रूप में कुछ खबरें मिलीं. फिर धीरे-धीरे खबरें कानोंकान हम तक पहुंचना शुरू हो गयीं. सुनने को मिला कि रवि पर मेजर को कत्ल करने का अभियोग चला, कि कोर्ट ऑव इंक्वायरी में सिर्फ दो जवानों ने रवि के विरुद्ध लगाये गये इल्जामों की तरदीद की, कि रवि की मिलटरी कोर्ट में ग्राऊंड कोर्ट मार्शल को लेकर तीखी झड़पें हुईं, मुकद्दमा मिलटरी कोर्ट से होता हुआ सिविल-कोर्ट में पहुंचा, रवि ने मिलटरी अधिकारियों की करतूतों का पर्दाफाश खुलेआम कोर्ट में किया, विपक्ष के वकील से घंटों बहसें हुईं, न्यायाधीश को अक्सर आर्डर-आर्डर का हथोड़ा पीटना पड़ा, मुकद्दमे की प्रतियां भी गुपचुप वितरित की गयीं और फिर एक दिन दिल दहला देनेवाला समाचार मिला कि सिविल कोर्ट ने रवि को फांसी की सजा सुनायी, इस बिनाह पर कि उसने जानते-बूझते हुए भी कानून को अपने हाथों में लिया, उसके विरुद्ध लगाये गये अनेक आरोप जाली पाये गये और कि न्यायालय ने ग्राऊंड कोर्ट मार्शल की सजा सदा-सदा के लिए समाप्त कर दी है.

हमारी यूनिट को जिस रोज यह खबर मिली कि उच्चतम न्यायालय ने भी निचले कोर्ट की सजा को बहाल रखा है, उस दोपहर यूनिट में मुर्दानगी छा गयी. किसी जवान ने खाना नहीं खाया. सेना में खाना न खाना संगीन जुर्म है पर हैरानी की बात थी कि यद्यपि सभी के चेहरों पर अपने जांबाज साथी को खोने का अतीव दु:ख था पर किसी तरह का डर वहां नहीं था. □

● बैंक ऑफ बड़ौदा, डी-38 ए, अहिंसा सर्कस, अशोक मार्ग, सी-स्कीम, जयपुर.

इतिहास का रास्ता

—अशोक गुप्ता

लोगों को यह बताते रहना कि उनकी लड़ाई क्या है, किनके खिलाफ है और कहां से चलकर कहां खत्म होती है, खत्म होती भी है या नहीं, और लड़ाई के जोश को रोजी-रोटी के बंदोबस्त से अलग होने से बचाने की कोशिश में संलग्न भारत की असली जमीन से सधे हाथों द्वारा उठायी गयी एक दहकती हुई रचना.

"**गां**व में आज फिर सिपाही आये हैं."

सत्तो ने सुना तो गोबर-पानी छोड़ एकदम अचकचाकर चरही टोला की ओर भागी. उसके कान सनसना आये और सांस धौंकनी की तरह ऊपर-नीचे चलने लगी. "जरा देखो तो करम जले का भाग, सिपाही लोगन की कूट से डरकर भागा बोधा कल ही गांव लौटा चार दिन बाद, और आज फिर..." भीतर ही भीतर सत्तो को बस यही भय सताये हुए था कि कहीं आज भी बोधा पर सिपाहियों का कोप बरसा तो वह बिल्कुल टूट ही जायेगा. उसके कदम कुछ और अदबदाकर बढ़ने लगे. उसके हाथ गोबर से इस बुरी तरह सने थे कि वह आंचल भी ठीक से संभाल नहीं पा रही थी, दूसरे सीने पर सेर-सेर भर की छातियों का स्यापा. लेकिन वह रुकी नहीं. बिरजू के खेत वाले मोड़ पर अचानक उसका पैर एक पत्थर से टकराया और उसका अंगूठा लहूलुहान हो गया. सत्तो ने एक गहरी सिसकारी भरी मगर दौड़ती रही फिर भी. चरही टोला, जहां बोधा बंसहट बुनने बैठा होगा, वह तो उजली डगर पर ही पड़ता है, क्या पता सिपाही उसे अब तक धर ही ले गये हों. "रामा हो ओ ओ ..." सत्तो ने जोर से गुहार लगायी और पल भर ठहरकर फिर भागने लगी. अचानक बगीचे के मोड़ से उसे किसी के तेज भागते कदमों की आवाज सुनाई पड़ी और वह ठिठककर रुक गयी. मुतहे बरगद के बगल में खेत से निकलकर पहले एक पुरुष आकृति अंदाजी सत्तो ने और बाद में देखकर एक सांस ली गहरी. बोधा ही था वह, जो हांफता-हांफता उसके पास आ पहुंचा. "चल घर चल" और सत्तो का हाथ पकड़कर घर की तरफ बढ़ चला. बोधा सतर्कता से दायें-बायें देखता हुआ, दौड़ता-सा चल रहा था और सत्तो घिसटती हुई-सी आ रही थी उसके पीछे. घर पहुंचकर सत्तो को चैन आया. अंगूठे की टीस उसे चीरने लगी थी. वह दरवाजे की चौखट पकड़कर बोधा पर भहरा-सी पड़ी. "पहले देह संभाल अपनी, ऐसे दैव नहीं टूटे पड़ रहे हैं." सत्तो चुपचाप संभल गयी. अंधेरा हो चला था. उसने आले से ढिबरी-माचिस उतारी और जमीन पर रखकर बैठ गयी.

■ सांत्वना पुरस्कार विजेता
कहानी : दो

बोधा कुछ संयत-सा हो चुका था तब तक, और मचिया पर बैठकर तमाखू-चूना मलने लगा था. उसके चेहरे पर कुछ राहत-सी लौटी थी.—"साले सिपाही आज कलेक्टर के साथ आये थे, तभी तो मुझे चरही टोला में बंसहट बुनते देखकर भी चुपचाप चले गये. लेकिन मैं भागा जरूर फिर भी."

रोटी खाकर और देह-पैर चंपवाने के बाद बोधा तो सो गया, लेकिन सत्तो की आंखें जस की तस चौखट खुली थीं, और घर चौखट से लेकर गांव हुकूमत तक सब एक गरम हवा का बगूला बनकर उसके चारों ओर घूम रहे थे. भीतर-बाहर सब तरफ एक गहरी जलन थी उसके, और एक गहरी चुभन-सी छाती की टीस जिसके आगे उसे लहू बहाता पैर का अंगूठा भुला गया था. भगवान ने घर टोला दिया भी तो कैसे गांव में, जहां हर पत्थर के नीचे दबा एक दरद मिल जाये. औरतें सिर्फ गोबर का लौंदा और मरद, या तो भेड़िये की खोल-सी ताकत ओढ़े जिनावर, या भय से दुबके हुए से मेमने. उसकी आंख के आगे बोधा का चेहरा तैर आया, जिसकी ताकत उसने बंसहट बुनते-बुनते इसी गांव से बूंद-बूंद रिसते देखी थी, आखिरी बूंद तक. बोधा! लेकिन बोधा केवल मेमना ही नहीं था, कुछ और भी था शायद, और सत्तो की आंखें छल-छला आयीं.

"पहले देह संभाल अपनी, ऐसे नहीं दैव टूटे पड़ रहे हैं." और सत्तो के मन में बार-बार बस यही बात टकराने लगी.

"हूंह ! ! जैसे दैव टूटने पर मेरी देह संभालने तू खड़ा रहेगा मेरे पास. अरे करमजले तू तो बस सबसे पहले भागेगा सरपट घर-बखरी छोड़कर!" और सत्तो की आंखों के आगे सिपाही घूम आये, जिसकी रौंद में बोधा कुछ और भी दब गया.

■

बिना रोटी खाये ही पड़ रही थी सत्तो. जब दैव टूटने पर भी अपनी देह अपने आप ही संभालनी है तो देह-पेट की भूख का विचार भी उसे खुद ही समझना होगा. वह उठ खड़ी हुई एक झटके से. उसने ढिबरी जलायी. बोरसी में थोड़ी आग भी थी. कुरेद कर जिंदा किया, छीके पर से आधा पड़ा टिक्कड़ उठाया और पैर के अंगूठे को आग में सेंकते हुए प्याज नमक से खाने लगी.

रोटी खाने के बाद भी सत्तो बैठी ही रही ढिबरी की लौ को देखते हुए और कुछ गहरे सोचने लगी. वह सोचने लगी मरद और ताकत की बात. मरद जब भीतर की ताकत से औरत की छातियां दबाता है तो उससे सुख मिलता है, और जब जिनावर की ताकत से, डर और दहशत से उसे छूता भर भी है, तो उसमें पीर होने लगती है. एक ऐसी पीर जो सही नहीं जाती. सत्तो ने बोधा के साथ अपनी छातियों पर सुख का परबत भी देखा और दिन-रात एक टीस भी सहती रहती है. लेकिन इसमें बोधा का भी क्या दोष है?

सिपाही? कलैक्टर? चौधरी? या गांव की धरती जो अकारण ही पैर का अंगूठा लहूलुहान कर देती है.

सत्तो उठी. उसके मन में बोधा के लिए ममता ही आयी. मरद तो पैदा ही औरत की छातियां कुचलने के लिए हुआ है, चाहे उससे औरत को सुख मिले या पीर. लेकिन सुख या पीर देना भी आदमी के हाथ की बात थोड़ी ही है, वह तो तब हो, जब वह अपनी उंगलियों पर सवार डरे, सहमे-से खतरनाक जिनावर को उतारकर फेंक सकता हो. सत्तो गयी और बोधा के पास ही भूमि पर लेट गयी.

■

देखते-देखते एक नया बवंडर-सा बन गया था गांव.

कोई-कोई हवा ऐसी चलती है जब धरती के बहुत जने मिलकर बस एक जना बन जाते हैं. एक आवाज, चाहे वह आदमी के रिरियाने की हो, उसकी खामोशी की या दहाड़ की. ऐसी ही हवा गांव में चल रही थी इस बखत, और सारे गांव में बस तीन जने रह गये थे जैसे. चौधरी रतन सिंह, पूरन, और बोधा. औरतों की गिनती इसमें कहीं नहीं थी. क्यों, औरतें व्यक्ति नहीं, सिर्फ छातियां थीं. वे सिर्फ अपनी आंखों में बवंडर की हवा को भरती थीं. और उसके सुख सहकर मर्दों की ताकत को नाप-जोख डालती थीं. सत्तो की आंख में भी एक जरीब थी, जिससे वह तीनों जनों को गुन रही थी. चौधरी, पूरन और बोधा. इन तीनों नामों में एक चौथा नाम शामिल नहीं था क्योंकि गांव के दस्तूर के मुताबिक जो मर-खप जाता था, वह अपना नाम भी ले जाता था साथ. और जोखे भी फुंक गया था अपने नामधाम सहित.

जोखे गांव में नहीं था कहीं, सिर्फ उसकी जलकर काली हो आयी लाश की अगंध थी. पूरन था जो बौखला गया था उस समय, और अब तक एक समांतर बवंडर बनकर घूम रहा था. चौधरी था, जो मिनट भर में वारा-न्यारा करके अपनी हवेली में लीन हो गया था, और शहर के कलट्टर-सिपाही जुड़ने लगे थे उसके साथ. बोधा था, जो भागा था सरपट. जो गांव में चौधरी के आदमियों और सिपाहियों से लुकाछिपी खेल रहा था. गांव में दो दिन के लिए आता, लात-जूतों से तोड़ा जाता और गायब हो जाता गांव से फिर कुछ दिनों के लिए. आज गांव में सिपाही-कलट्टर के साथ आये थे, जो बोधा को चरही टोला पर बंहसट बुनते देखकर भी छोड़ गये थे, और बोधा कई दिनों बाद रोटी खाकर बंसहट पर सो रहा था, देह-पैर चपवाकर, यह सपना देखते हुए कि वह सत्तो का हाथ अपने हाथ में लिये दूर चला जा रहा है. दूर. जहां उसके और सत्तो के सिवाय कोई नहीं है. सत्तो उसकी ताकत है, उसके दिल की ताकत, और इसके आगे वह कुछ नहीं सोचता कभी. क्योंकि उसने आज तक कभी कुछ सोचा नहीं था. वह कोई सोच लेकर पैदा ही नहीं हुआ था. और यही उसके बारे में एक आखिरी सच था.

पूरन पहले बौखलाया था कि जोखे की घर-बखरी फूंक दी गयी है और खौल उठा था क्योंकि यह खबर उसे चौधरी के आदमी ने ही दी थी, एक ठंडी बात की तरह और

जन्म : 29, जनवरी, 1947 (देहरादून)
"लेखन मेरे लिए सार्थक जीवन मूल्यों की सतत तलाश है. जो साहित्य विषमताओं के भीतर उतरकर उन्हें देखता-दिखाता है, उसमें मेरी आस्था है. वह फिर चाहे किसी भी देश का हो, किसी भी भाषा का हो."
संप्रति : इंजीनियर

मुंह उठाकर चल दिया था. दूसरे दौर में पूरन ने खुद को अपराधी महसूस किया था, जैसे सारी कुछ हाय-हत्या उसी के मत्थे जाती हो, और वह रोता रहा था नीम के पेड़ से पीठ टिकाये. फिर, फिर वह उठ खड़ा हुआ था एक मजबूती दुबारा समेटकर. एक आग भर ली थी उसने अपने भीतर.

पूरन के पास एक सोच था. चौधरी एक है, लेकिन वह कई-कई जोखुओं को चूसता है. उनसे खेलता है, उन्हें खटमल-पिस्सू समझता है. और मसल देता है जब-तब. यह सिलसिला टूटना चाहिए. यह बात घटना से परंपरा तो बन गयी है, लेकिन इसे परंपरा से इतिहास बनने से रोकना चाहिए. उसे मालूम था कि इतिहास का रास्ता लड़ाई बदलती है. लड़ाई, जिसमें चौदह-चौदह तक हमले होते हैं लगातार. लड़ाई, जो कतारबद्ध होकर लड़ी जाती है.

पूरन ने सारे जोखुओं को कतारबद्ध करना शुरू कर दिया था. उसकी पहली लड़ाई जोखुओं के भीतर बैठे उनके भय के खिलाफ थी, उनकी जड़ता के खिलाफ थी, उस नियतिवाद के खिलाफ थी जिसके तहत जोखुओं को हर जन्म सिर्फ जोखे ही रहना था. यह लड़ाई जितनी अंदरूनी थी, उतनी ही कठिन भी थी क्योंकि इसमें बहा लहू पूरन को अपना ही लगता था, लेकिन यह तो करना ही था.

पूरन ने अंदरूनी और बहुत अंदरूनी ढंग से यह काम शुरू किया. वह दिनों-दिन शब्द-शब्द करके बोता रहा जोखुओं के भीतर और चित्त प्रसन्न घर लौटता रहा रात ढले, जैसे इबादत करके आ रहा हो. उसका काम शुरू-शुरू में तो ऐसा रहा जैसे दीवार में फुसफुसाकर बात करना. लेकिन दीवार में भी बात के अंखुए निकलने लगे एक दिन, तो पूरन की आस बंध कर कुछ-कुछ उठ गयी. पूरन कुछ मजबूत हो पाता कि अचानक यह घटना हो गयी.

ऊपर वाले की यह दुनिया हमेशा से लेन-देन के सहारे चलती है. एक हाथ से दो और दूसरे हाथ से लो. जब तक इस लेन-देन के पीछे न्याय होता है, दुनिया का चलना भला मालूम देता है और जब अन्याय बन जाता है, तब लगता है जैसे दुनिया चल नहीं रही, बल्कि भूकंप के झटके उसे झकझोर रहे हैं, लेकिन लेन-देन फिर भी चलता रहता है.

जोखे को भगवान ने एक बेटा दिया था तो उसकी सलोनी बंतो उससे ले ली थी. उस बेटे को फौज के रास्ते भगवान ने वापस ले लिया तो जोखे को जमीन वापस मिल गयी. आधी जमीन चौधरी के पास गिरवी रखी तो जोखे को एक जोड़ा बैल मिल गये और जोखे अपने एक जोड़ा बैलों के साथ तीसरा बैल बनकर जुट गया. उसने चौधरी की पाई-पाई चुका कर अपनी जमीन वापस ले ली थी जो सरकार के खेतों में उसका बेटा था. बेटे के खाते में उसकी मां बंतो और बंतो के खाते में तो उसकी पूरी जिंदगी पोर-पोर चढ़ी थी. जोखे जोखे था, क्योंकि उसे लेन-देन के इस सिलसिले से कोई शिकायत नहीं थी. वह हर फसल पर चौधरी के हाथ गिनकर रुपये रखता, बैलों की सर्दी-गर्मी का इंतजाम पुख्ता करता, अपने लिए एक कुर्ता-धोती लाता और उसे पहनकर धरती से लिपटकर ऐसे भीग लेता, जैसे वह साक्षात उसकी बंतो ही हो. और एक दिन इस सिलसिले के बीच अचानक पूरन आ गया. बीड़ी-तमाखू का दौर दो आदमियों के बीच जब भी चलता है, सुख की सुरंग लगाकर एक-दूसरे के दुःख की तरह पहुंच जाता है. यह बात पूरन को बहुत अच्छी तरह मालूम थी और यह भी कि उसकी लड़ाई सबसे ज्यादा आदमी के दुःख-दर्द से जुड़ी है और उस आबोहवा से, जो एक तरफ आदमी को ज्यादा से ज्यादा दुखी करती जाती थी दूसरी तरफ कुछ सुन्न ता।कि आदमी को अपने दुखों का एहसास भी न होने पाये. पूरन ने पहले जोखे को सहलाकर उसके दर्द को जिंदा किया, फिर उसका पूरा का पूरा दर्द अपने सामने उंडेल लिया. कितना रुपया जोखे ने लिया था चौधरी से बैल खरीदने के लिए? कितने बरस से वह हर फसल पर चौधरी के हाथ पर रुपये टिकाता आ रहा है? पिछली फसल पर उसने कितना रुपया चौधरी को दिया था? एक सर्द खामोशी. जितनी बार पूरन जोखे को खींचकर इन सवालों के सामने लाकर खड़ा करता, जोखे की खामोशी कुछ और गहरा आती. आखिर पूरन ने उसे कंधे से पकड़कर झकझोर दिया.

"जोखे! होश में आ. क्या तू चौधरी के पास से कभी उऋण नहीं होगा?"

जोखे दर्द से छटपटाकर उठ खड़ा हुआ. बलबलाने लगा. पके हुए फोड़े की तरह बहने लगा और पूरन जर्द हो गया. "चौधरी कहता है कि जोखे ने इतने बरसों में उसे जितना कुछ दिया है, वह केवल उस पैसे का सूद है और मूल ज्यों का त्यों खड़ा है अभी. इसलिए अब वह आधी जमीन उसकी है." चौधरी जोखे को अदालत के कटघरे में खड़ा कर देगा और जोखे वहां भी मुंह में दही जमाये चुपचाप खड़ा रहेगा. अदालत जोखे की आधी जमीन चौधरी के नाम सुनाकर अपना दरवाजा बंद कर लेगी और जोखे सुनकर चुप रह जायेगा, और सर झुकाये वापस चला आयेगा. बंतो गयी, बेटा

...नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा. और पूरन भीतर से कुछ ऐसा भर उठा कि जोखे खुद ब खुद एक अजूबा से अचरज में जड़ हो गया.

पूरन जोखे को लेकर चौधरी के पास गया. पटवारी के पास गया. मुखिया के पास गया. और एक दिन हाहाकार उठा कि जोखे अपनी घरबखरी समेत फूंक दिया गया है. चौधरी रतन सिंह खुद चार कारिंदों के साथ आया और यह खुशनसीब गम अंजाम दे गया. रार चौधरी और जोखे की थी. पूरन बिचौलिया था. लेकिन बोधा कौन था?

और बोधा वाकई अपना दुर्भाग्य लेकर खामखाह बन गया. उसने चौधरी रतन सिंह को आदमियों समेत न सिर्फ जोखे के घर पर तेल छिड़कते देखा था, बल्कि वह भर आवाज चीखा भी था, "जोखे हो ओ ओ, भागो. . ." और यही चीख उसकी शामत बन गयी थी.

जोखे घड़ी भर में कोयला होकर वहीं भहरा गया, अपनी चौखट पर. पूरन का नाम चौधरी की मूछों के बल के साथ लपेट लिया गया और बोधा के पल्ले आया एक लुका-छिपी का खेल जिसमें अब सिपाही भी मुड़ आये थे चौधरी के साथ जो गांव में बोधा को देख पाते तो बूटों तले उसकी उंगलियां कुचलकर रख देते. सत्तो सब देखती थी पत्थर बनी, तो उसकी छाती में पीर हरी हो जाती थी. हाय री किस्मत, घर का मरद घर-गांव से फरार रहे, उसे इसी में सुख.

◘

जोखे की मौत को महीना बीतते न बीतते गांव की छाती पर एक शिला अपना भरपूर आकार लेकर बैठ गयी. हवा पत्तों में बंधकर चलने लगी. दहशत, आक्रोश और चौकन्नापन. गांव के तीनों जने अपनी-अपनी पहचान के साथ पूरे तनकर खड़े हो गये. जो लड़ाई पूरन ने शब्दों से गली-गली, चौपाल-चौपाल, खेत-खेत, चरही-टोला और सूखे दरख्तों के नीचे राई-राई छितरायी थी, वह खुलकर जमीन पर उतर आयी. पूरन के हाथ और आवाज बढ़ते चले गये, जिसमें जोखे की सांस पल-पल जिंदा रही, उसकी जलकर कोयला हो आयी लाश की दुर्गंध के साथ. पूरन का काम चौतरफा हो आया था. अब एक तरफ तो पुराने योद्धाओं को मैदान में टिकना सिखाना, दूसरी तरफ नयों के मन से टूटती जड़ता को भरपूर नोंचकर फेंक निकालना, ताकि वह कोई वहां फिर न जड़ जमा सके. लड़ाई के जोश को रोजी-रोटी के बंदोबस्त से अलग होने से बचाना और सबसे बड़ी बात लोगों को यह बताए रहना कि उनकी लड़ाई क्या है, किन के खिलाफ है, और कहां से चल कर कहां खत्म होती है, खत्म भी होती है या नहीं. एक ओर पूरन लोगों को बांधता-उठाता रहा, दूसरी ओर जोखे के चचेरे भाई धनपत ने पूरन के हाथ में अपना हाथ कुछ इस तरह से दिया कि पूरन की आंखें प्यार से छलछला आयीं. सारे पूरन जोखुओं की गवाही में धनपत ने जोखे की सारी जमीन मय बैलों के खरीद ली और उस पर उसी दिन से हल चलाने लगा. पूरन ने वह नगद पैसा धनपत के ही हाथ पर रहने दिया और तैयारी होने लगी कि जोखे की मौत चौधरी को अदालत तक खींचेगी. और, उसी दिन से युद्ध का एक और आयाम खुल गया.

सत्तो पूरन को देखती तो उसकी मरद को नापने की जरीब, एकबारगी उसकी गिरफ्त से छूटकर गिर पड़ती. उसे महसूस होने लगता कि उसकी छाती तले पीर की पर्त के नीचे एक पानी का सोता है जो हिलोरें लेने लगा है. उसका दिल करता कि वह भी पूरन के साथ उतर पड़े खिलाफत में, जब से उसने सुना कि जोखे को जिंदा जलाने का मुकद्दमा चौधरी रतन सिंह पर बन रहा है, उसके हाथ-पैरों में एक अजीब सांय-सांय-सी होने लगी. लेकिन वह गोबर, पानी, रोटी, मजूरी से उबर नहीं पायी. एक तो अपना औरत होना जैसे पत्थर से बंधे हुए पांव, दूसरे मर्द की लुका-छिपी की दुतरफा सांसत. बोधा का वही रवैया दिनों-दिन जारी था. वह ज्यादातर तो गांव से दफा रहता और जिस रात घर आता भी तो किसी बात पर कान ही नहीं रखता सिवाय रोटी खाकर बंसहट पर पसर जाने के. उसके घर आने पर सत्तो बार-बार भर उठती कि वह उसके आगे गांव का नक्शा खोलकर रख दे. उसे बताये कि सारा का सारा गांव अचानक जोखे हो उठा है पूरन के साथ, कि गांव वाले लड़ाई पर उतर आये हैं, कि गांव वालों ने लड़ाई के आगे अपने दूसरे नफा-नुकसान को बेपरवाह कर दिया है, कि झम्मन के खेत में गोरू घुसा दिये गये, गोपाल और परमू को भाहरे खेत पर लहूलुहान कर दिया गया, तब भी सब के सब पूरन के साथ हैं. चरहीटोले के अकेले कुएं में रोज-रोज कुत्ते मार के डाल दिये जाते हैं. फिर भी लड़ाई रुकी नहीं, लड़ाई जारी है, और. . .और सत्तो का सोचना सिर्फ सोच में धरा रह जाता जब बोधा हर बात को तमाखू की तरह हथेली पर पर पीटकर उड़ा देता और सो जाता करवट बदलकर. सत्तो की आंखें अंगार हो उठतीं. उसकी छातियां पीर से छिदने लगतीं. उसे गहरा अपमान जैसा महसूस होने लगता कि पूरन के साथ उसका अपना बोधा क्यों शामिल नहीं है?

वह हर रात ढिबरी जलाकर उसके सामने बैठी-बैठी पूरन के बारे में सोचती रहती. पूरन की आवाज में ताकत है. उसकी आंखों में ताकत है, उसके चलने और ठहर के कुछ सोचने लगने में ताकत है. एक ऐसी ताकत जो सिर्फ औरत की छातियों पर नहीं उतरती, बल्कि दूसरे आदमी में ताकत पैदा करके उसे अपने साथ जोड़ भी लेती है. सत्तो कुछ गहराई से सोचने लगी, 'सच बात है, सिरफ औरत के जिसम में बच्चा रोपना ही मर्दानगी नहीं है, सच्ची मर्दानगी है औरत के दिल में ताकत पैदा करना और उस ताकत को अपने साथ जोड़ लेना.' वह सोचती-सोचती सिहर गयी कि पूरन ने उसकी कोख में भी एक ताकत का बिरवा-सा रोप दिया है.

फिर सारी रात उसे नींद नहीं आती. वह बस पूरन की ताकत को गुनती-सहेजती रहती लेकिन समझ नहीं पाती कि उसे करना क्या है?

किसी भी दुर्दैव, महामारी या कोप की चपेट से गांव इतना न थर्राया होगा कभी, जितना उस दिन हकबकाकर जड़ हो गया था. सतेस्वर के हाते के चारों ओर कहीं भी किसी घर-बखरी और चौबारे में तिल रखने भर भी जगह नहीं थी

और बाकी गांव में बस भांय-भांय हो रही थी. भीड़ के बीच भूमि पर पूरन, जगत चाचा और सतेश्वर सब सिर झुकाये बैठे थे और तैयारी चल रही थी. चलाचली की तैयारी जो लगभग पूरी हो चुकी थी. रुक्मिनी को लाल जोड़ा दिया गया था. सुहागिन थी न, उसकी मांग में पूरन की चुटकी का सिंदूर था. पैर में बजने वाले बिछुए, जिन्हें इस बरस सुहाग का दूसरा बसंत देखना था.

बीच-बीच में आकाश भेद देने वाला रुदन का तीखा स्वर उठता, जो सबको चीरता ही चला जाता. लोगों के कलेजे दरद से फट रहे थे. मुट्ठियां छटपटाहट से खुलतीं और फिर भिंच जातीं, जगत चाचा और सतेश्वर तक की आंखों में आक्रोश के डोरे थे, रो कर भी न चुकने वाली पीर के डोरे.

लेकिन जो शख्स सिर्फ सादी और सफेद आंखें लिये दूर, बहुत दूर देखता-सा पत्थर बना बैठा था, वह पूरन था. पूरन! रुक्मिनी का प्रीतम. जिसकी सांस-सांस में रुक्मिनी का प्यार था.

रुक्मिनी, जिसके शरीर पर हवेलीवालों ने ठंडे गोश्त की दावत उड़ायी थी रात के अंधेरे में, जब पूरन बिरजू की चौपाल में कुछ बतकही कर रहा था और रुक्मिनी अपनी बखरी में अकेले दिया बार के जगघर की बुढ़िया का कंबल ढीप रही थी.

अचानक हमला हुआ था. लोग पिछवाड़े से मुंडेर फांद कर कूदे थे आंगन के भीतर और जब तक रुक्मिनी संभलकर चेतन होती, उसे दबोच लिया था पांचों जनों ने मिलकर.

रुक्मिनी का जीवट. उनके मुंह काला करके जाने के बाद तक भी वह बेहोश नहीं हुई. उसके मुंह पर कपड़ा न भी बांधा गया होता. तब भी बाद में चीखती तो नहीं वह, हां पीठ पर बंधे हाथों के कारण वह सिर्फ बेबस पैर ही पटक पायी जमीन पर. और उसका शरीर नुचता रहा. चुक जाने के बाद वे पांचों उठे और उठकर हवेली की ओर चल दिये. रुक्मिनी भी उठी. उसने न हाथ खोलने की कोशिश की, न मुंह पर बंधा कपड़ा क्योंकि अब उसे न कुछ कहना था, न कुछ होने से रोकना था, क्योंकि वह जानती थी कि जो कुछ हुआ है, वह पूरन के काम में उसका अंशदान है.

स्वाहा करने रुक्मिनी को चरही टोला तक आना पड़ा और उसने वहीं कुएं में अपने को आहुति बना दिया. वैसे ही जैसे उस कुएं में रात को चौधरी के आदमी मरा हुआ कुत्ता डाल जाते थे. रुक्मिनी ने भीतर ही भीतर पूरन को गुहार लगायी और गहरे छपाक हो गयी. रुक्मिनी भी गयी.

पूरे गांव ने इस आघात को अपने कोण से सहा और पूरन ने नितांत अपने ढंग से. कुछ ऐसे कि उसकी लड़ाई को चतुर्दिक तेज करके उसका चीत्कार पूरे गांव में रेशा-रेशा फैल गया. गांव, जिसमें सत्तो भी शामिल थी.

गांव था. गांव में लड़ाई थी. गांव में सत्तो थी. सत्तो की छातियों में पीर थी. उस पीर के नीचे एक पानी का सोता था जो हिलोरें ले रहा था, उसके भी नीचे एक लड़ाई थी, जो कोई शक्ल नहीं ले पा रही थी. और पोर-पोर में एक फोड़ा था, पक कर चीस देता हुआ हर पल. रुक्मिनी का चेहरा,

रुक्मिनी का जुद्ध, जिसमें वह जीत गयी थी, पीर, लहर, लड़ाई और फोड़ा सब समेटे बैठी थी सत्तो, जिसके आगे एक छोटी-सी लौ का ताप उसे भसम किये दे रहा था, 'कहां होगा बोधा? जहां भी होगा मिट्ठी के लोंदे-सा पसरा पड़ा होगा भूमि पर. जोखे, जोखे का घर-संसार और रुक्मिनी इस सब की लहर से बेखबर फैला पड़ा होगा खैनी की पीक की तरह करमजला.'

जो लौ सत्तो को रेशा-रेशा जला रही थी, वह बोधा के इस ठंडेपन की थी. एक गहरा अपमान था यह सत्तो के लिए, एक त्रास था. बोधा इस लड़ाई से सूखा था. रुक्मिनी की मौत तक से निस्पंद. और सत्तो, जिसके अपने पांव औरत होने के कारण पत्थर से बंधे थे, वह खुद नख-शिख भीग गयी थी, क्योंकि लड़ाई की आन में एक जबरदस्त पानी था, और वह सोता जो सत्तो की छाती की पीर तले हिलोरें लेने लगा था, छलक उठता था.

पूरन के साथ तारा आयी, रुक्मिनी की बुआ. तीनों जने बखारी के भीतर आ गये. पूरन अपने आप बंसहट पर बैठ गया और तारा वहीं भूमि पर सत्तो के पास.

"सत्तो, कुछ मांगने आया हूं मैं तुमसे."

सत्तो चुप रही, पलकें भी नहीं उठीं उसकी.

"सत्तो, सारा गांव जोखे की घर-बखारी-सा धू-धू करके जल रहा है. गांव वालों के कलेजे का ताप इससे और भी जबर हो उठा है. पूरा गांव एकजुट हो उठा है इस बात पर कि चौधरी को अदालत में तलब किया जाये. उसे जोखे की हत्या की जवाबदेही करनी होगी. हमारी तैयारी बूंद-बूंद करके पूरी होती जा रही है. इसमें गांव भर की आस है, गांव भर की मदद है. तू भी इस गांव के बाहर नहीं है सत्तो, तुझसे तो बहुत आस बंधती है मेरी: तू बोधा की ब्याहता है."

सत्तो ने कुछ जवाब नहीं दिया, बस गठरी बनी बैठी रही सिर झुकाये, अपने आंचल के एक सिरे को मुट्ठियों में भींचे जैसे उसके छूट जाने से किसी तूफान में बह जाने का खतरा हो, भीड़-मेले में खो जाने का खतरा हो.

"सत्तो, चौधरी और उसके आदमियों की इस करतूत का बोधा अकेला गवाह है, जिसने अपनी आंखों से सारा दुर्दैव कांड देखा है, लेकिन उसकी तो मति ही मारी गयी है जैसे. जिस घटना ने गांव के एक-एक आदमी के भीतर वीरता का ज्वालामुखी खड़ा कर दिया है, उसी को देखकर वह एक दब्बू और डरपोक-सा चोर बन गया है. पता नहीं कब आता है गांव में और कब चला जाता है. कुछ पता नहीं चलता. सत्तो, तू देगी गवाही कचहरी में चौधरी के खिलाफ?"

सत्तो के हाथ-पांव गुनगुना आते हैं. उसे लगता है कि लड़ाई में कूदने का सही जरिया उसके सामने साक्षात आ खड़ा हुआ है. लेकिन उसकी जुबान उसके तालू में चिपक गयी जैसे.

▣

पूरन की आवाज मात्र ही उसे भीतर तक इतना कंपन दे गयी कि उसके अर्थ समझने भर, अर्थ को स्वीकृति देने भर की संज्ञा उसमें शेष नहीं रही. मर्द के भीतर की ताकत के आगे औरत भुरभुरा जाती है जैसे.

अब की बुआ बोली, "बोधा तेरा मर्द है सत्तो, तेरा सत. उसकी आंखों देखी बात तेरे लिए भी उतनी ही सच है, जितनी उसके लिए, तुझे एक सच्चाई की गवाही देनी है. अदालत में, जिसका मुकाबला चौधरी हजार झूठ से करेगा."

"सोचना सत्तो, सोचना." और पूरन उठ खड़ा हुआ.

"तेरे ना करने से भी मुकद्दमा तो जायेगा ही आगे, क्योंकि सच गवाही का मोहताज नहीं है, लेकिन तेरी आवाज में बोधा का आंखों देखा त्रास होगा, जोखे के कोयला होकर भहरा पड़ने का सच्चा दरद होगा उसमें. जोखे की लड़ाई सच की लड़ाई है, उतनी ही सच्ची जितनी जोखे की मौत."

पूरन बुआ के साथ बखारी के बाहर हो गया. सत्तो बैठी रही. सांकल चढ़ाने भी नहीं उठी देर तक. बस, एकटक देखती रही ढिबरी की लौ को.

एक झटके से हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई सत्तो. बखरी के दरवाजे चौपट खुले हुए थे, पूरन और तारा के जाने के बाद. ढिबरी पहले की अपेक्षा काफी मिचमिचाकर जल रही थी. सत्तो ने जाकर बखरी की सांकल चढ़ायी, ढिबरी की लौ को हथेली पटल पर बिदा किया और बंसहट पर आ गयी.

▣

कितना अजीब सपना देखा था उसने. इतना भयानक कि वह हवेली के भीतर चौधरी के आदमियों और सिपाहियों की हवस से रौंद दी गयी है. उसने देखा कि उसकी छातियां लहूलुहान हो उठी हैं. उसके कपड़े तार-तार फट गये हैं और उसकी आवाज भेड़िये जिनावरों की लाल-लाल आंखों के आगे घुट कर रह गयी है. उसने पूरा जोर लगाकर पूरन को पुकारना चाहा था कि उसकी आंख खुल गयी.

सपने को सोचते-सोचते सत्तो की नींद जैसे कोसों दूर भाग गयी. क्या होगा अगर ऐसा हो गया तो? सत्तो रुक्मिनी बन जायेगी?

नहीं, नहीं, सत्तो रुक्मिनी की तरह जान नहीं देगी ऐसे, वह तो बोधा का इंतजार करेगी पहले.

बोधा की याद से एक अजीब-सी हलचल हो गयी उसके भीतर. अगर ऐसा हो गया तो कैसा लगेगा बोधा को? क्या वह इसे भी पट पर हथेली पर तमाखू-सा पीटकर उड़ा देगा और सो जायेगा? या सनसना उठेगा, पगला जायेगा, आग बबूला हो जायेगा, छटपटा कर उठ खड़ा होगा और जड़ जायेगा पूरन के साथ अपनी सत्तो रुक्मिनी के लिए!

सत्तो को लगा जैसे उसे अभीष्ट मिल गया हो. बोधा के पूरन से जुड़ जाने का सुख. उसके लड़ाई में शरीक हो जाने का सुख. और सत्तो एक बारगी सुख से सिहर उठी.

अगर बोधा पूरन से जुड़ जाये तो उसका रुक्मिनी होना स्वारथ हो जायेगा. अगर बोधा इस बात को भी तमाखू की पीक की तरह पिच्च से थूक देगा तो इस देह के सत का मतलब ही क्या है? देह के सत का तो आदमी के प्यार से है, नहीं तो देह जैसी इसकी जूठी वैसे उसकी.

▣

सत्तो भीतर से मजबूत हो आयी. उसे लगा कि जो चीज अब तक अदृश्य-सी उसे भीतर से मथ रही थी साफ़ उजागर हो गयी है. वह छोटी-सी लौ का ताप उसके भीतर समा गया है और फैलता जा रहा है. वह अचकचाकर उठी और दरवाजे तक आ गयी. रात अभी एक पहर बाकी थी और भोर का तारा कहीं दीख नहीं रहा था. सत्तो ने कुछ सोचा और दरवाजा उढ़काकर फिर भीतर आ गयी. उसकी आंखों में नींद नहीं थी फिर भी उसने पलकें मूंद लीं और बेतहाशा पूरन के घर की ओर भागती रही. गिरते हुए आंचल की ओर से बेपरवाह. सीने पर छातियों के स्यापे से बेखबर, अंधेरे में अंगूठे के लहूलुहान हो जाने की शंका से बेपरवाह. उसे सिर्फ एक बात याद थी कि उसे बोधा की जगह चौधरी के खिलाफ कचहरी में गवाही देनी है.

सत्तो की पलकें अब भी मुंदी थीं, रात एक पहर बाकी थी. सत्तो की छाती की पीर थम गयी थी. पीर तले पानी का सोता कुछ बंध गया था. पैर में बंधा हुआ पत्थर खुल गया था. बस एक छोटी-सी लौ थी उसके भीतर जो उसे पूरन के घर की ओर दौड़ाये लिये जा रही थी. □

• 16/ 2629 फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)

चलते-चलते

विख्यात गद्य लेखक जी. के. चेस्टरटन ने स्त्रियों के सामाजिक विद्रोह के विषय में लिखा है, "अनेक औरतें एक साथ अपने पावों पर उठ खड़ी हुईं और उन्होंने घोषणा की, 'हम स्वतंत्र हैं, हम मर्दों के कथन के अनुसार नहीं चलेंगी,' और वे सभी औरतें स्टेनोग्राफर बन गयीं." □

—भैरूंलाल गर्ग

■ सांत्वना पुरस्कार विजेता कहानी : तीन

चंद्रमोहन प्रधान

बाहरी फाटक की बगल में लगी नेमप्लेट के पास ही राईफलधारी गार्ड को देखकर लड़का ठिठका. उसने प्रहरी की निगाहें बचाते हुए उजली प्लेट पर काले-मोटे अक्षरों में अंकित नाम पढ़ा—'वीरेश्वर दयाल, डी. आई. जी.'

वह जरा हिचकिचाया. सामने खाकी वर्दी में तनकर खड़ा राईफलधारी गार्ड उसके साहस को अपनी मूक उपस्थिति से ही भोथरा बनाये जा रहा था.

"यहां क्यों खड़े हो? अपना रास्ता नापो." गार्ड ने उसे वहीं ठिठका हुआ देखकर कहा.

"मिलना है."

"किससे?"

"डी. आई. जी. साहिब से."

गार्ड को लगा जैसे उसके कानों ने कुछ गलत सुना है. आश्चर्य ने उसके परिहास के अंकुर को वहीं दबा दिया. उसने बंदूक के सहारे थोड़ा झुककर उस लगभग सोलह वर्षीय किशोर को दिलचस्पी के साथ देखा. धूल से भरा चेहरा, छोटे-कटे सूखे बाल और आंखों में दहशत!

भीतर से खाकी कमीज-धोती पहने एक आदमी बाहर निकला. गेट को पूर्ववत् हुड़का लगाकर उसने बंद किया, तभी

■ अखबार में जो खबर सज-संवरकर छपती है, उसकी शुरुआत, कोई पैबंद लगे धारीदार कपड़ोंवाला लड़का, कुछ इस तरह से करता है—"हुजूर! . . .आग. . .लाश. . .चितपट. . . छटपट. . . औरत. . . बच्चा...मर्द. . .लाश ही लाश !"—आम आदमी के दर्द और पुलिस की क्रूरताओं के पीछे हर पल हरकत में रहनेवाले, तीसरे हाथ को बेनकाब करती कहानी कि आखिर असल अपराधी कौन है! . . .

गार्ड ने जरा परेशानी के साथ कहा, "अरे भई ठाकुर! यह लड़का साहिब से मिलने आया है."

ठाकुर ने ऊपर से नीचे तक लड़के का जायजा लिया. सड़क के किनारे पिच से थूकते हुए उसने गार्ड के विपरीत, कर्कश स्वर में पूछा, "साहिब से मिलना चाहता है? क्या काम है साहब से? कहां से आया है?"

लड़का इस नवागंतुक को देखकर जरा असहज होने लगा, "गांव से."

"अबे, किस गांव से? साफ-साफ बताता क्यों नहीं?" ठाकुर ने खीझकर कहा. तभी उसकी समझ में कुछ आया. मुलायमियत से पूछा, "क्या साहब के गांव से आये हो?"

लड़के की समझ में प्रश्न नहीं आया. वह चुप रहा.

"आओ भीतर." ठाकुर ने फाटक खोलते हुए कहा.

लॉन पार करके, बड़ी-सी लाल कोठी के चौड़े बरामदे में जब लड़का आ खड़ा हुआ, तो उसका संचित साहस पिघलने लगा कि. . .वह डी. आई. जी. साहब से क्या कहेगा!

"चलो, इधर साहिब बुला रहे हैं." ठाकुर वापस लौटकर भारी स्वर में बोला.

लड़का आतंकित-सा भीतर गया. बड़ी-सी मेज के उस छोर पर कागज-पत्रों के बीच बैठे भारी-भरकम, रोबदार चेहरेवाले डी. आई. जी. साहिब को देखकर वह चौखट के पास ही ठिठक गया.

रोज-रोज के बड़े-बड़े मामलों में उलझनेवाले, बड़े लोगों से काम रखनेवाले डी. आई. जी. साहिब को यह अपना नया मुलाकाती एक ताजगी भरे मनोरंजन-सा प्रतीत हुआ. उन्होंने हल्की अंगड़ाई ली, "हां,आओ!"

लड़का झिझकता हुआ मेज के पास आ खड़ा हुआ, तो उन्होंने चश्मा उतारकर पूछा, "क्या बात है? यहां क्यों आये?"

वह सूखे होठों पर जीभ फेरकर रह गया.

"हां, हां, बोलो, डरो मत." डी. आई. जी. साहिब ने उसे प्रोत्साहित करने के लिए स्वर को कोमल बनाते हुए पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा?"

"सोना लाल."

"मुझसे तुम्हें मिलना क्यों है, सोना लाल?"

"हुजूर!" लड़का एकाएक फक्का फाड़कर रो पड़ा. आंसुओं से भर्राये, टूटे-फूटे शब्दों में वह इतना कह पाया, "आग. . .लाश. . .चितपट. . छटपट. . .छट. . .फट. . .! औरत, बच्चा! मर्द. . . लाश ही लाश. . .!"

डी. आई. जी. साहिब को लगा जैसे लड़के का दिमाग कुछ ढीला हो. उसे भीतर बुलवा लेने के लिए अपने निर्णय पर उन्हें शंका होने लगी. कई आवश्यक फाइलें निबटाकर कल गृह मंत्री के पास भेजनी हैं, किंतु वे हिचकिचाये. लड़के की बातें असंबद्ध होते हुए भी अजीब-सी गंध का आभास दे रही थीं. उन्होंने कॉल बेल पर उंगली रखी.

घंटी की आवाज के साथ ही जैसे खिंचा हुआ ठाकुर भीतर आ पहुंचा. उन्होंने कहा, "एक गिलास पानी."

ठाकुर ट्रे में ठंडे पानी का गिलास लेकर आया तो उन्होंने लड़के की ओर संकेत किया. ठाकुर ने उसके कंधे को हिलाया और कहा, "पानी पी लो." लड़के ने कांपते हाथों से गिलास लेकर एक ही सांस में पानी पी लिया.

ठाकुर के बाहर जाकर पर्दा बराबर कर देने तक साहिब चुप रहे. फिर सिगार ऐश-ट्रे में रखते हुए मेज पर झुककर उन्होंने पूछा, "हां, आगे कहो, कैसी लाशें? क्या बात हुई?"

लड़के ने गला साफ किया. उसके चेहरे पर छाई हल्की धूल में आंसुओं के चिह्न बन गये थे. हाथ जोड़कर भर्राये स्वर में बोला, "हुजूर, पाली गांव. . ."

"पाली कहां है?"

"सात मील पूरब होगा."

"फिर?"

"परसों रात में सब लोग सोये पड़े थे कि बहुत आदमी तीन जीप, एक ट्रक लेकर आया. गैस बत्ती, टार्च,. . .बंदूक. . . हीरा बाबू साथ में थे, गांव को सबने घेर लिया. . .सब घरों में आग लगा दिया. . ." वह फिर लड़खड़ाया, "लोग सब भागे तो. . .गोली चलाने लगे. . .सैकड़ों लोग मार दिये. . .मेरा . . .मेरा. . ." उसका स्वर टूटा.

"तुम्हारा भी घर जल गया?"

"जी राख कर दिया. . .मेरा. . .मेरा दादा, बाप. . .मां, एक भाई, दो बहन. . ." वह फिर फूट पड़ा.

"हूं, कौन लोग थे, जिन्होंने यह सब किया?"

"बाबू साहिब के आदमी सब."

"कौन बाबू साहिब?"

"महुली के बाबू साहिब."

"महुली कहां है?"

"पाली से दो मील पर."

"क्या करते हैं?"

"खेती, ब्योपार, ठीकेदारी सब कराते हैं."

"तुम कैसे बचे?"

"हम पछुआड़े से भागकर इमली के पेड़ पर चढ़ गये थे. भोर होने पर उतरे, तो देखा, गांव में कोई नहीं. . .सब राख. दो-चार आदमी जो जिंदा बचे, उन सबका भी घर-परिवार सब. . ." वह सिसकने लगा.

"हूं, तुम . . .मतलब गांव में कौन जाति के लोग ज्यादातर हैं. . .थे?"

"छोटे जात के लोग. कुरमी, दुसाध, चमार. . ."

"रिपोर्ट तो थाने में दर्ज है न?" साहिब ने पूछा.

"नहीं लिखते."

"नहीं लिखते?"

"दारोगाजी ने डांट कर भगा दिया."

"तुम भी गये थे?"

"हम दूसरे बार गये, अकेले कल दुपहर में. दारोगाजी के पास हीरा बाबू बैठे थे. . ."

"हीरा बाबू कौन?"

लड़के ने आश्चर्य के साथ देखा. ऐसा भी कोई है, जो हीरा बाबू को न जानता हो!

"जी, बाबू साहिब के लड़का हैं."

"अच्छा, आगे कहो."

"थाना पर हमको देखकर दारोगाजी ने गाली देकर कहा, 'भाग जा, नहीं तो बंद करा देंगे,' हीरा बाबू ने कहा हमको

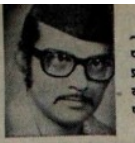

जन्म : 10 जनवरी, 1940

—"मानव समाज में दिनानुदिन उमर रही पशुता का सामंजस्य प्राचीन गुणों की परंपरागत धरोहर से बिठा पाना कठिन पाकर आश्चर्य होता है कि सृष्टि का श्रेष्ठ प्राणी, मनुष्य, दूषित ढंग से स्वार्थी कैसे हो जाता है. इस विसंगत और घुटन भरे वातावरण में भावनाओं को शब्द-रूप देना विवशता है. न लिखूं तो इस गरल को पचाऊं कैसे!"

संप्रति : ज्ञानकला केंद्र का संचालन.

"तुम गांव से आये हो?"

लड़के ने सिर हिलाया.

"यहां किसने भेजा तुम्हें?"

"हम खुद आये हैं. जानते हैं, हुजूर बड़े साहिब हैं."

"रिपोर्ट दर्ज नहीं हुई तो तुम और कहीं भी गये थे?"

"जी, इहां आके आज सबेरे कोतवाली में गये थे."

"क्या हुआ?"

"बाहर . . .सिपाही ने डांट के भगा दिया."

"तुम पढ़े-लिखे लगते हो. . .पढ़ते हो?"

"जी, मिडिल तक पढ़ा हूं."

"आगे क्यों नहीं पढ़े?"

"गांव से दो कोस पर मिडिल स्कूल है. उसके बाद यहीं आके पढ़ना पड़ता है. दादा ने पढ़ाई छुड़ा दिया कि यहां रह के पढ़ाई को पैसा नहीं है."

"अब क्या करते हो?"

"खेती और मजूरी करता हूं."

"कितनी जमीन है?"

"तीन बीघा . . . बाबू साहिब के पास बंधक है."

"इससे गुजर होती है?"

"बाबू साहिब के खेत पर हम लोग मजूरी भी करते हैं."

"उन्होंने गांव पर हमला क्यों करवाया?"

लड़का चुप रहा. उसे शायद कारण का पता नहीं था.

"कुछ खाया है तुमने?"

"जी नहीं. सुबह से कुछ नहीं खाया!"

उन्होंने कॉल बेल पर उंगली रखी.

ठाकुर के आने पर उन्होंने कहा, "इस लड़के को ले जाओ, खाना खिलवाओ और इसके रहने का इंतजाम गैरेज के बगल-वाले खाली क्वाटर्स में कर दो."

सोना लाल ठाकुर के साथ बाहर निकला, तो उन्होंने आधे सिगार को ऐश-ट्रे में कुचलकर फोन पास खींच लिया.

"बाबू साहिब!" थानेदार ने घबराये स्वर में उलाहना दिया, "फंसवा दिया न आपने हमें."

"बैठो, दरोगाजी." बाबू साहिब ने अलस भाव से आधे कमरे के फर्श पर बिछी मसनदों की ओर इशारा किया.

"क्या हो गया?"

"अजी, क्या न हुआ. वह साला लौंडा सीधा जा पहुंचा है. . .डी. आई. जी. साहिब के पास."

"ऐं?" बाबू साहिब ने सिगरेट की डिबिया उठायी.

"जी हां."

"अच्छा सिगरेट तो लो." उन्होंने सिगरेट बढ़ायी, "लेकिन डी. आई. जी. उस देहाती भुच्च से मिला कैसे?"

"जमाना बहुत बदल गया है, बाबू साहिब! देहाती भी अपने हक समझने लगे हैं. उस पर शहर जाने के रास्ते में ही तो डी. आई. जी. की कोठी है, लौंडा देखता रहा होगा."

"तो, तुम्हारे डी. आई. जी. हमारा क्या उखाड़ लेंगे?"

"आपका क्या कर सकता है कोई, मगर हम तो. . ."

"अरे नाहक पतले क्यों हो रहे हो? देखा है ऐसे बहुत डी. आई. जी. फाईजी को! कहो, कल सीधे तुम्हारे डी. आई. जी. की ही यहां से बदली करा दें?"

"फिर भी वह. . ."

"कोच्छ नहीं." बाबू साहिब ने धुएं का लच्छा बनाते हुए कहा, "तुम चुपचाप बैठे रहो."

"उन्होंने एस. पी. साहिब को हुक्म दिया है कि कल सुबह उनके साथ हम भी उनकी कोठी पर पेश हों. अभी एस. पी. साहिब ने हमको खबर भेजी है."

"कहा न, कुछ नहीं होगा." उन्होंने पास रखा फोन खींचा, "होम मिनिस्टर जिस का भाई लगता हो, उसके होते तुम क्यों घबराते हो. अभी देखना तमाशा!"

उन्होंने नंबर डायल कर, रिसीवर में कहा, "हां, हां, इंदुजी हैं? हम हैं, इंदुजी, जरा भाई साहिब से बात कराना."

न जाने किस पत्रकार को पाली गांव के सामूहिक हत्याकांड की खबर लगी और अखबारों में सचित्र विवरण छप गये. प्रदेश की राजधानी में मुख्यमंत्री को बयान देना पड़ा, गृह मंत्री ने दौरे का प्रोग्राम बनाया.

उसी रात्रि, नौ बजे डी. आई. जी. साहिब का प्राइवेट फोन घनघनाया.

"येस?"

"मि. दयाल, मैं शाही बोल रहा हूं." उधर से आई. जी. का परिचित स्वर आया, "उस पाली गांववाले मामले की क्या बात है?"

"सर, एक लड़का मेरे पास शिकायत लेकर आज ही दिन में आया है. पूरा गांव जला दिया गया. रात में रेड हुई थी परसों. बाबुओं की तरफ से गोलीबारी हुई और थाने पर इंचार्ज ने रिपोर्ट भी. . ."

"वो सब तो समझा, आप कुछ कर रहे हैं?"

प्रश्न साहब की समझ में नहीं आया. बोले, "जी, मैं. . ."

"देखिए, बात यह है कि अभी होम मिनिस्टर ने मुझे रिंग किया था. मामला पालिटिकल हो गया है, हाई लेवल का. चीफ मिनिस्टर आजकल खुद परेशानी में हैं. आप खूब जानते हैं, उनके विपक्षियों के लिए आपका रेंज इन दिनों गढ़ बना हुआ है. आप ऐसा करें, अभी कोई भी कदम न उठायें. कल दस बजे आप हर हालत में यहीं चले आइए. मेरे साथ आपको चलना है. . . सी. एम. से मिलने."

दूसरे दिन, तीसरे पहर जब डी. आई. जी. साहिब राज-धानी से लौटे, तो उन्होंने सोना लाल को बुलवाया.

ऑफिस के कमरे में, अपनी ओर उत्सुकता से निहार रहे लड़के को देखकर उनके मन में अजीब-सी हूक उठी.

"बेटे, तुम सब बात . . . भूल जाओ."

लड़के ने आश्चर्य से उन्हें देखा. "हुजूर, रपट. . .?"

"सरकार की तरफ से जांच होनेवाली है." उन्होंने उससे नजर बचाकर सिगार का रैपर निकालना शुरू किया, "लेकिन अभी मै कुछ नहीं कर सकता. . .तुम नहीं समझोगे. तुम सब भूलकर यहीं रहो. बाहर तुम्हारे लिए. . ., वे जरा अटके, "खतरा भी है."

लड़का अविश्वास के साथ उन्हें देखता रहा. ऐसा भारी अफसर और कुछ नहीं कर सकता! फिर ये हैं किसलिए?

प्रकारांतर से साहिब के मन में भी यही सवाल गूंज रहा था. वे किसलिए हैं? उनकी पुलिस ने उनकी नाक के नीचे ही ऐसी बर्बरता दिखायी है. . . इस हत्याकांड का उत्तरदायित्व किस पर होगा? क्या उन पर भी नहीं आता?

अस्थिर हाथों से उन्होंने मेज पर से छुरी उठाकर सिगार का कोना काटा, उसी पर दृष्टि जमाये हुए कहने लगे, "तुम्हारा सारा इंतजाम मैं कर देता हूं. यहीं रह सकते हो, जब तक कि कोई दूसरा प्रबंध न हो."

इसके तुरंत बाद, घंटी को भूलकर उन्होंने व्यस्त भाव से पुकारा, "ठाकुर."

संध्या साढ़े छः बजे ही डी. आई. जी. साहिब क्लब से वापस लौट आये. आज वहां मन लगा ही नहीं, आते ही उन्होंने अपनी स्टडी में कॉफी मंगवा ली.

ठाकुर को बुलाकर उन्होंने पूछा, "सोना लाल ठीक है?"

"हुजूर," ठाकुर जरा परेशान दीख रहा था, "वह तो पता नहीं कब, सबकी आंख बचाकर निकल गया."

"निकल गया! इडियट!" वे बिगड़ पड़े, "वह गार्ड क्या कर रहा था? बाहर उसके लिए खतरा है. . . और तुम लोग ऐसे नालायक हो कि. . ."

वे कॉफी छोड़कर उठ खड़े हुए.

"उसे अभी खोजो, सब तरफ. जितने आदमी मिलें, सब दौड़ो, गार्ड को भी कहो . . आसपास तलाश करे."

रात को आठ बजे के लगभग महुली थाने में एक सिपाही साइकिल बाहर पटककर हड़बड़ाया-सा भीतर घुसा.

थानेदार को सैल्यूट कर बोला, "हुजूर, पोला-ग्राउंड के आगे एक्सीडेंट हो गया है!"

"कैसा एक्सीडेंट?"

"कोई लड़का पोला ग्राउंड के आगे, पाली की तरफ जा रहा था कि शहर की ओर से एक जीप आयी और उसे सीधे कुचलते हुई आगे जाकर महुली की तरफ मुड़ गयी."

"तू उसे वहीं छोड़ आया नालायक!"

"वह तो एकदम कुचल गया, सरकार! देख आया हूं. जीप का नंबर नोट कर लिया है हुजूर."

"हूं, लाओ देखें."

उन्होंने फोन की तरफ हाथ बढ़ाया.

सिपाही ने एक मैली-सी नोट बुक निकाली. उसका एक पन्ना खोला और उनके आगे मेज पर रख दिया. नंबर पर नजर पड़ते ही उन्होंने रिसीवर पर से यों हाथ हटा लिया जैसे बिच्छू ने काट लिया हो.

"अबे, यही नंबर है? तूने ठीक से देखा है?"

"मैंने टॉर्च से देखा है हुजूर, नंबर ठीक है."

"हूं," थानेदार ने पूछा, "उस लड़के का हुलिया बताओ."

"हुजूर, जल्दी में सिर्फ कपड़े देख सका हूं. नीली कमीज और पाजामा पहने था."

थानेदार ने हाथ बढ़ाकर वह पन्ना फाड़ लिया. उसके टुकड़े-टुकड़े करते हुए बोले, "देखो, इसे भूल जाओ. यह नंबर तो बाबू साहिब के बड़े लड़के की जीप का है."

चौथे पहर की चाय लॉन में बैठकर पी रहे डी. आई. जी. श्री दयाल ने पश्चिम की ओर क्षितिज पर देखा. लाल रंग के बादल ढलते हुए सूर्य की रोशनी में गहरे होते जा रहे थे. उन्हें कुछ बेचैनी हुई. बुजुर्गों से सुन रखा था कि देश पर भावी संकट के लक्षण, ये बे-मौसम के लाल बादल होते हैं!

जीवन में पहली बार उन्हें अपनी पदोन्नति के समाचार पर प्रसन्नता या उत्साह की कमी लग रही थी. गृह मंत्री ने मुख्यमंत्री के सामने ही संकेत किया था कि शीघ्र ही आई. जी. साहिब सेवा निवृत हो रहे हैं, इसके बाद उन्हीं को आई. जी. की जगह पदोन्नति मिलेगी. उन्होंने चुप रहकर सुन लिया था.

ठाकुर अखबार का सांध्य संस्करण लाकर मेज पर रख गया. अनमने भाव से पन्ना पलटते ही, बीच के पृष्ठ पर उनकी दृष्टि पड़ी. वे चौंके, कुछ पंक्तियां पढ़ते-पढ़ते उनकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा.

एक छोटी खबर बॉक्स में छपी थी. . .

"गत रात्रि, स्थानीय पोलो-ग्राउंड से पाली गांव की ओर जानेवाली सड़क पर गांव से दो मील इधर, एक अज्ञात लड़का किसी कार या ट्रक से कुचल गया. वह एक नीली-सी कमीज और पाजामा पहने हुए था. दुर्घटना रात में किसी वक्त हुई थी. पुलिस उस गाड़ी का पता लगा रही है."

उन्हें लगा, उनका सिर चकरा रहा है, चारों तरफ गहराते अंधकार में लाल बादल गहरे होने लगे. लॉन, कोठी इधर-उधर डाल रखी कुर्सियां, सब पर अजीब तरह की लाली छाने लगी. उन्होंने देखा, हाथ के अखबार पर छपी वह खबर धीरे-धीरे गहरी लाल हो रही है, खून की तरह!

घबराकर उन्होंने अखबार नीचे गिरा दिया. □

● ज्ञान कला केंद्र, आमगोला, मुजफ्फरपुर-2 (बिहार)

हिसाब और हिसाब

शशिप्रभा शास्त्री

ऐसा क्यों होता है . . . क्यों हो जाता है ऐसा कि बहुत बार पति की हर इच्छा और कामना का संकल्प लेने के बावजूद पत्नी ऐसा नहीं कर पाती और रिश्तों का ताना-बाना टूट-बिखर जाता है? ...दांपत्य जीवन के स्नेह और संशय को रेखांकित करती कहानी—

अपने बत्तीस बरस के अनवरत कार्य के पश्चात् मुक्त हो जाने पर वह एकाएक बेहद घबड़ा उठा था—सवेरा होते ही उसे अपनी दैनंदिन चर्या का ध्यान आता—अपने विद्यार्थियों का, अपने महाविद्यालय का, वहां के परिवेश का, वहां के साथी प्राध्यापकों का, उनकी बातचीत-व्यवहार का. अब वह सबसे काट दिया गया था.

वह जानता था, पत्नी सुभद्रा की आंखों में वह अत्यंत धैर्यवान, विवेकी और त्यागमयी वृत्ति का जीव है, सामान्य व्यक्तियों के सदृश सरलता से निरुत्साहित होने वाला नहीं—वह उससे यही अपेक्षा करती है कि वह अब अपनी दिन-चर्या इस प्रकार की बनायेगा, जिसमें वह अपने स्वास्थ्य-सामाजिक दायित्वों और घरू कर्त्तव्यों की ओर विशेष ध्यान देगा—अपने से संदर्भित पत्नी के इन विचारों से अवगत होने के कारण उससे अपना दिल खोलकर वह उसे ठेस नहीं पहुंचाना चाहता था. वह उससे नहीं कह पा रहा था कि अपनी वर्तमान स्थिति में वह अपने को नितांत टूटा, एक भग्न व्यक्ति महसूस कर रहा है.

खटिया ही पकड़ ली थी उसने. पत्नी समझ नहीं पा रही थी. वह उसका इलाज करवाने लगी थी. उसकी मनोदशा को सहज रख पाने के लिए भी वह पूरी तरह सचेत थी, पर ज्ञान के सामने अपनी अस्तित्व-रक्षा का प्रश्न था. पत्नी की उस प्रकार की तपश्चर्या उसे संतुष्ट नहीं बना पा रही थी. वह खुद से हरदम झगड़ता-सा रहता. कोई चारा न देख एक दिन उसने पत्नी सुभद्रा से अपना हृदय खोल ही डाला.

पत्नी सुनकर पहले तो विस्मित हुई, फिर आशंकित—वह वैसा ही कुछ अनुमान स्वयं भी लगा रही थी. उसने उस मुद्दे पर गंभीरता से विचार किया और फिर वह उसके साथ सहमत हो गयी थी कि अगर किसी जगह उसके मन लगाने का कोई साधन उपलब्ध है, तो उसे कुछ दिन के लिए उधर चले जाना चाहिए—अगर जगह और काम अनुकूल न पड़े, (जैसा कि वह स्वयं मना रही थी) तो उसे शीघ्र लौटकर आ जाना चाहिए. वह आश्वस्त हुआ था, कुछ प्रसन्न भी कि पत्नी ने उसके चले जाने की बात को कष्टकर रूप में नहीं लिया है और वह घर में अकेली रह लेगी. पत्नी को उसने आश्वस्त किया कि वह प्रयत्न करेगा कि वह महीने में कम से कम दस-बारह दिन उसके पास ही रह पाने का सुयोग जुटा सके.

सुभद्रा

कलेजे पर पत्थर रखकर उसने पति को चले जाने की अनुमति दी थी. वह खुद पति को स्टेशन तक पहुंचाने गयी थी. चलते हुए एक हिलक भर उठी थी उसके कंठ में, पर किसी प्रकार इत्मीनान से उसने पति को विदा किया मगर पति के चले जाने पर वह रातों-रात जागती रहती. खाना खाने बैठती तो आंसू बबल उठते, चाय बनाने लगती तो सोचती, पति के पास न जाने कितने, क्या साधन होंगे और वह दुःखी हो उठती.

उन्हीं दिनों पति का पत्र उसे मिला जिसमें सूचना दी थी कि उधर उसने अपने एक शिष्य को बुला लिया है, जो हर काम में निपुण है, खाना अब वही बनाता है और अब उसे किसी बात की कठिनाई नहीं है—पत्र पढ़कर वह संतुष्ट हुई थी. सुनने वाले विस्मित होते कि मां अथवा पत्नी के अतिरिक्त वह तीसरा व्यक्ति कौन है, जो किसी व्यक्ति को उतना तृप्त कर सकता है और उसकी तमाम सुविधाओं का ध्यान रख पा रहा है—सुभद्रा को आश्चर्य होता, लोग उसकी बात पर विश्वास क्यों नहीं कर रहे!

इस बार ज्ञान आया तो उसे वह कुछ बदला-बदला लगा. वह एक अलग कमरे में लेटा रहता, रात-रात भर उसकी बत्ती जलती रहती और वह कुछ-कुछ लिखता रहता. पति की लिखने-पढ़ने की आदत से भी वह परिचित थी, इस प्रकार अलग-थलग हो लिखते रहने की उसकी क्रिया को उसने सामान्य ढंग से ही लिया. पर जब वह बार-बार डाकिये के आने के बारे में पूछने लगा तो उसे आश्चर्य हुआ. पर एक सुबह जब उसने नाश्ते के समय बताया कि वह अपने उस शिष्य को पुत्र का दरजा दे रहा है, तो उसके सामने पूरा रहस्य उजागर हो उठा कि उसकी बेकली अपने उस पुत्र के लिए ही थी.

"हमारा वह बेटा, जो दो दिन का होकर चला गया है, हम उसे उसकी जगह ही क्यों न मान लें?" उसने उसका मन लेने के लिए पूछा था.

"हूं!" वह तुरंत पूरी तरह कुछ भी नहीं समझ पायी थी. उन दोनों के अपने बेटे-बेटियां हैं, सगे-संबंधी भी अपनी अपनी जगह हैं ही, तब? वह सिर्फ मुस्करा भर दी थी.

ज्ञान

अपने उस शिष्य को पुत्र बना लेने वाली बात पर पत्नी के प्रफुल्लित न होने पर उसे विस्मय हुआ. वह बहुत देर तक सोचता रहा था. फिर उसने उसे पत्नी की अन्यमनस्कता मान लिया था और अगली बार वापस लौटने पर उसने अपने शिष्य सुधीर को (यही नाम था उसका) आश्वस्त कर दिया था कि उसने उसको पुत्र के रूप में स्वीकार लिया है. पत्नी के मन को अधिक टटोलने का प्रयत्न उसने किया ही नहीं. इस सबको उसने बहुत सामान्य ढंग से लिया था और सोच लिया था कि पत्नी भी उसे स्वीकार कर ही लेगी, इसमें मुश्किल भी क्या है? हमारे दूसरे बच्चे हमारे पास नहीं रह पा रहे हैं, तो यह बच्चा हमारे पास रहेगा और हम दोनों की सहायता-सेवा करेगा. अगली बार घर आने पर उसने पत्नी से यही बात कही, तो पत्नी ने पूछा था, "कैसी सहायता-सेवा?"

ज्ञान को फिर आश्चर्य हुआ था, लड़का हर काम जानता है, बेहद सुशील, आज्ञाकारी, विनम्र है—शादी के बाद अपनी पत्नी को भी वह अपने काबू में रखेगा. दोनों के रहने से घर में रौनक भी रहेगी और घर का काम भी होता चलेगा.

सुधीर के प्रति पत्नी का व्यवहार भी उसे अच्छा नहीं लगा था—न मधुर, न शालीन, न भद्र. पहली बार वह सुधीर को घर लाया, तो पत्नी सुभद्रा ने उसके खिलाने-पिलाने में कोई उत्साह प्रदर्शित नहीं किया. वह उन दिनों अपने दफ्तर आने-जाने में ही व्यस्त रहती थी, पर सुबह-शाम जो भी समय मिलता, उसमें भी वह सुधीर में कोई रुचि नहीं ले रही थी. जबकि अन्य अतिथियों के प्रति सौम्य और उदार बनी रहती है, तो उसके उस बेटे के प्रति ही वह इतनी उदासीन क्यों है? वह केवल उसका अध्ययन करता रहा था.

सुभद्रा इतने दिनों पति से वियुक्त रहती थी. पति से वह अपेक्षा करती कि जब वह आये, तो उससे उसकी कठि-नाइयों को सुने, उसकी समस्याओं को समझे. इस बात को महसूस करे कि इस उम्र में अकेले रहना उसके लिए कितना भारी पड़ता चला जा रहा है, पर वह आता, तो या तो वह अपने उस नव उपलब्ध पुत्र की चर्चा करना चाहता या चुप रहकर कुछ-कुछ सोचता रहता. पत्नी घर में एकदम अकेली होकर तरह-तरह की कठिनाइयां और असुविधाएं झेल रही है, तरह-तरह की जिम्मेदारियां उठा रही है—घर की जरूरत का सामान खरीदने, दूध लाने, मकान और पानी-बिजली संबंधित बिलों के पेमेंट जैसी अनेक असुविधाओं में मर-खप रही है. अकेली रहने पर एकाध बार उसके दरवाजे पर बिना उसकी उम्र का लिहाज किये ही कई अवांछित व्यक्ति भी आ टपके हैं—वह ये सब बातें अपने पति से कहती भी रही है, पर वे महाशय हर समस्या और हर चिंता से मुक्त होकर इतनी दूर पहुंचकर अलग-थलग बैठे हैं, अकेले. फिर ध्यान आता, वे अकेले कहां हैं, उनके साथ तो उनका यह पुत्र है, जिसके साथ वे नाश्ता-खाना खाते होंगे, सोते, हंसते, बोलते रहते होंगे.

जब पति उसके पास थे, तब वे दोनों भी तो उसी तरह एकत्र होकर सब काम करते रहे थे, दोनों एक-दूसरे की प्रकृति को जानते-समझते. एक-दूसरे के सुख-दुःख में सिर से सिर लड़ाकर विचार करते, बोलते-बतलाते रहते थे. उन सब सुखों और उनके सानिध्य का उपभोग अब वह नवपुत्र कर रहा होगा—उसे उस पुत्र से ईर्ष्या होने लगी थी, ठीक वैसी ही जैसी गोपियों को कृष्ण की बांसुरी से होती थी, जिसे कृष्ण हमेशा अपने साथ रखते और जब-तब होंठों पर रख लेते थे. दो-एक बार उधर जाकर उसके पति के साथ उसके उस सानिध्य-सुख के दर्शन वह खुद कर आयी थी.

सुभद्रा की प्रकृति-प्रतिक्रिया अनजाने में ही धीरे-धीरे परिवर्तित होती चली जा रही थी. पहले जब उसका पति उधर अकेला था, (वह अवधि यद्यपि बहुत थोड़ी थी) जब भी वह घर आता तो वह हमेशा हंसती-खिलखिलाती रहती,

---

तनख्वाह

जॉन कायरन उन दिनों 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के संवाददाता थे, जो विशेष रूप से खेलों के बारे में एक कालम लिखा करते थे.

उनका यह कालम बहुत लोकप्रिय था. कुछ अर्सा काम करने और नाम कमाने के बाद कायरन को लगा कि उनकी तनख्वाह में वृद्धि होनी चाहिए. लेकिन इस बारे में वे 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के मालिक, अडोल्फ औक्स से कहने का साहस नहीं कर पा रहे थे.

आखिर उन्होंने एक तरकीब सोची. एक दिन औक्स से दफ्तर में जाकर बहुत आदरपूर्वक कहा, "मिस्टर औक्स, 'न्यूयॉर्क टाइम्स' के लिए काम करना अब मेरे लिए किसी ऐश्वर्य से कम नहीं है. और यह ऐश्वर्य अब मुझे बहुत महंगा पड़ रहा है."

औक्स के होंठों पर मुस्कराहट आयी और उन्होंने कहा, "मेरे दिल में तुम्हारे कामों की कद्र है. अगले महीने तुम्हारी तनख्वाह बढ़ा दी जायेगी." □

—सुखबीर

पति का भरपूर आतिथ्य करती और यह दिखाने का यत्न करती रहती कि वह उसके पीछे भी उसी तरह सुविधापूर्वक सब काम करती रहती है और उसकी अनुपस्थिति में उसे कोई विशेष कष्ट नहीं होता. एकाकीपन उसकी अनुपस्थिति में उसे किस तरह डसता रहता है, उसके 'साथ' के लिए वह कितनी तड़पती है और अंतर में कितनी दुःखी है—उस सबका वह रत्ती भर प्रदर्शन नहीं करती थी. यह नाटक वह इसलिए करती कि उसका पति वहां (जहां रहकर उसे संतोषमिश्रित आनंद मिल रहा है) खुश रहे, उधर की चिंता न करे. वह जानती थी कि वह उसकी चिंता करता है, उसके और घर के बारे में सोचता है. पर सुधीर के उधर आ जाने से उसके मन में यह अनुभूति घर करने लगी थी कि सुधीर के प्रति उसके पति की आसक्ति और लगाव उसे अब पत्नी के बारे में सोचने की फुरसत ही नहीं देता है, इसीलिए जब पति के घर आने पर वह अपनी कठिनाइयां उसे विस्तार से बताती, पर उसे अनुभव ही नहीं होता कि उसके द्वारा प्रस्तुत वह विस्तृत वर्णन उसके पति को कहीं से भी प्रभावित कर रहा है.

पर पति की ओर से उपेक्षा-तटस्थता उसे फिर गुमसुम और उदास बना देती. उसे उन्हीं दिनों अपने दफ्तर के किसी काम से बाहर जाना था, उसके पति ज्ञान ने ही प्रस्तावित किया, "हम दोनों साथ चले चलेंगे. मेरी जगह तुमसे पहले आयेगी. मैं उतर जाऊंगा, तुम आगे चली जाना."

"क्यों, तुम बीच में क्यों उतरोगे. तुम भी मेरे साथ आगे चले चलना, लौटने पर अपनी जगह उतर जाना."

"नहीं नहीं, वह मुश्किल है, उधर एक आवश्यक मीटिंग है, उसमें मेरा सम्मिलित होना जरूरी है." ज्ञान ने कठिनाई प्रस्तुत की थी.

"चलो, न सही, उतनी दूर तक ही सही. तुम्हारा स्टेशन आयेगा तो मैं वहां उतरकर मुंह-हाथ धो लूंगी, हम दोनों नाश्ता कर लेंगे और तब तुम चले जाना. वहां पर गाड़ी कुछ देर रुकती है न?"

"हां, काफी देर रुकती है." ज्ञान ने समर्थन किया था.

▣

पर उसे आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि वह स्टेशन आते ही उसकी आंखें किसी को ढूंढ़ने लगी थीं. तभी उसने जाना था कि उसने सुधीर को अपने पहुंचने की सूचना दे दी थी और इस समय वह उसे ही देखने की कोशिश कर रहा था. पत्नी के उस स्टेशन पर मुंह धोने या नाश्ता कर लेने की बात उसे बिलकुल विस्मृत हो चुकी थी—पति के व्यवहार ने उसे क्षुब्ध किया था. सुधीर के प्रति उसकी विरक्ति और बढ़ने लगी थी.

सुधीर के यथासमय वहां उपस्थित न होने ने ज्ञान को बेहद उद्विग्न और चिंतित बना दिया था. चिंतित पत्नी के प्रति नहीं, जो आगे की लंबी यात्रा एकाकी करने जा रही थी, प्रत्युत उस मानस पुत्र के प्रति जो उसके दृष्टि-पथ में पहुंचने में विलंब कर रहा था. उसकी दृष्टि बावली-सी उसे ढूंढ़

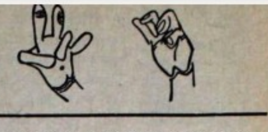

रही थी. गाड़ी ने सीटी दे दी थी और वह अब भी नहीं दिखा था. गाड़ी हिलने पर सब कुछ भुलाकर सुभद्रा रेल की खिड़की से पति को हाथ हिला-हिलाकर विदा लेना चाहती थी, पर उसके पति की आंखें पुल पर लगी थीं, जहां से ढेर स्त्री-पुरुष चले आ रहे थे. हृदय में एक मर्मांतक वेदना हुई थी, जिसे उसका पति नहीं पहचान पाया था.

गाड़ी ने गति पकड़ ली तो अनजाने में ही एक दूसरा दृश्य सुभद्रा की आंखों के आगे रेंगने लगा... गर्मियों की छुट्टियां, जून का तपता मास... उसने आशा की थी कि पति उन दिनों अपनी छुट्टियां होने के कारण उसके पास आकर उतने दिन रहेगा. पर सुधीर उन दिनों किसी परीक्षा की तैयारी कर रहा था और उसे उधर रहने में ही अधिक अनुकूलता पड़ रही थी, सो उस अपने बेटे (चौबीस बरस के बच्चे) को वह अकेले छोड़कर कैसे आ जाता, इसलिए उन दिनों वह भी उधर ही रहता रहा था. सुभद्रा चाहती तो छुट्टियां लेकर खुद उधर जाकर रह सकती थी, पर मन की पीड़ा-दुखन और पति की ओर से आने की बात न लिखे जाने पर उसके मन ने उसे वहां चले जाने की अनुमति नहीं दी. दुक्खम-सुक्खम वे दिन भी उसने अकेले ही बिता दिये थे. वह अक्सर सोचती कि उस प्रकार का एकांतिक प्यार अगर उसका पति उसके अपने पेट जाये बेटे से भी करता तो अपने उस पुत्र के प्रति भी वह उतनी ही ईर्ष्यालु हो उठ सकती थी. वह कुछ कहती तो उत्तर मिलता, "काहे को जली-मरी जा रही हो, वह कोई लड़की तो नहीं है."

'सवाल लड़के-लड़की का नहीं है, सवाल एक तीसरे व्यक्ति का है', पर नारी-हृदय के इस छोटे-से मनोविज्ञान को समझने में उसका पति असमर्थ ही चलता रहा.

सुधीर के प्रति पत्नी की उदासीनता उसे व्यथित और पत्नी के प्रति कुपित बनाये रखती. उसे दंडित करने का अथवा उससे प्रतिकार लेने का एक सभ्य उपाय उसने और निकाल लिया था—पत्नी की सखियों अथवा किसी भी अन्य व्यक्ति (जिससे वह परिचित-अपरिचित हो) के घर में आने पर वह ऊपर छत पर जाकर लेट जाता, या बाहर घूमने निकल जाता और पत्नी के किसी भी काम (व्यवस्था या वार्तालाप तक) में सक्रिय भाग लेने से तटस्थ हो जाता.

सुभद्रा ने पति की उपस्थिति में अपने दफ्तर की कुछ सहकर्मिणियों और अपने डायरेक्टर महोदय को आमंत्रित करने की योजना कब से बना रखी थी. वह कार्यक्रम आवश्यक था, किंतु एक लंबे अर्से से टलता चला आ रहा था. ज्ञान ने पत्नी के प्रस्ताव को स्वीकृत तो कर दिया, किंतु वह खुद ऐन मौके पर अदृश्य हो गया और अगले दिन तक नहीं लौटा.

▣ शशिप्रभा शास्त्री
रचनात्मक लेखन के लंबे सफर में अब तक इनके चार कहानी संग्रह, पांच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं.
"लेखन मेरे लिए आत्माभिव्यक्ति और आत्म-संरक्षण दोनों का जरिया है."
संप्रति : देहरादून में अध्यापन

सुभद्रा

सुभद्रा ने उस समय सबके सामने पति की अनुपस्थिति के लिए कोई बहुत खूबसूरत बहाना बना तो दिया, पर जिस प्रकार की जिल्लत उसने उस दिन महसूस की, उससे प्रताड़ित होकर वह पूरी रात सिसकती रही थी. पति की उपेक्षा अब उसके सामने खुलकर आने लगी थी, उसका निदान भी उसे विदित था—पति का प्रेम-सहयोग पाने के लिए उसके प्रिय को स्नेह दो—पर अनथक प्रयत्न करने पर भी अपने हृदय का स्नेह वह उस पर बरसा पाने के लिए अपने मन को राजी कर ही नहीं पायी.

सुभद्रा के लिए वे अजीब कशमकश के दिन थे, पति की मनचाही न कर पाने पर वह खुद पर खीझती, कोशिश करती कि पति के आने पर वह सुधीर की अच्छाइयों का खुद बखान करे, पति के और उसके पुत्र के भावी कार्यक्रम के बारे में विचार-विमर्श करे, अपने को वह समझाती कि एक माता-पिताविहीन लड़के को अपना बनाकर उसके पति ने कोई अनर्थ नहीं कर डाला है. पर अपने किसी भी संकल्प में वह सफल ही न हो पाती.

कभी वह पति से इसरार करती कि वह इस बार सुधीर को घर पर फिर लाये और वह देखेगा कि उसका व्यवहार इस बार उसके प्रति कितना परिवर्तित और मृदु हो गया है. वह पति को आश्वस्त करती कि उसने अपने को बदल लिया है. ज्ञान पत्नी के उस प्रकार के चिंतन और परिवर्तन से प्रभावित और प्रसन्न होता पर पति के चले जाने पर एकाकी होते ही वही पुराने, बासी, सड़े विचार उसके मस्तिष्क को कुरेद-कुरेदकर फिर खाने लगते. सुधीर के आने पर वह फिर अपने को अकेली और उपेक्षित महसूस करने लगती. उसे लगता वह पचास-पचपन बरस की एक प्रौढ़ महिला न होकर पच्चीस-तीस बरस की एक नवोढ़ा है, जो पति नहीं बरन किसी प्रेमी का स्पर्श-सानिध्य पाने के लिए बेतरह आकुल-व्याकुल है. अगर वह स्पर्श उसे नहीं मिलेगा तो वह बावली हो जायेगी. सड़क-सड़क, गलियों-गलियों दोने-कुल्हड़ चाटती घूमेगी. पति से चीख-पुकार के मध्य वह कभी सुना भी देती, "तुम नहीं जानते, मेरी रुक्षता-शुष्कता का क्या कारण है. मैं इस प्रकार ऊदबिलाव क्यों बन गयी हूं? मैं क्यों इतनी बेरहमी से भरा अमानवीय, अशिष्ट व्यवहार करती हूं. क्योंकि मैं प्यासी हूं, प्यासी, बेहद प्यासी. क्या मिला मुझे तुम्हारे साथ? सैक्स के प्रति उदासीन तुम रह सकते थे, तुम संत-पुरुष थे; पर मैं, मैं तो एक अत्यंत साधारण नारी थी, नितांत निम्नस्तरीय. मैंने जिंदगी भर उस क्षेत्र में तुम्हारी कृपणता झेली है, झेलती रही वह सब कुछ, क्योंकि हम दोनों के बीच कोई तीसरा नहीं था, तब... पर अब जब एक तीसरा व्यक्ति हम दोनों के बीच आ बैठा है, जिस पर तुम जी भर कर प्यार उड़ेलते हो, तो भले ही वह लड़का है या लड़की, मेरी वही प्यास फिर भड़क उठी है. इस उम्र में भी. मैं किसी से पिसना चाहती हूं, किसी से भी, कोई भी हो."

अंतिम कुछ वाक्य वह उचारती नहीं थी, अपनी बात को अधूरा छोड़ वह बेतरह किचकिचा उठती, ज्ञान उसे अजनबी निगाहों से देखता रह जाता, कभी वह भी किटकिटा उठता.

"मैंने सचमुच शादी करके गलती की है, बहुत बड़ी भूल की है. मैं अब समझा हूं. मैं सचमुच पति बनने के लायक नहीं था. तुम उसे दोष देती हो, उस बेसहारा सीधे-सादे बच्चे को. मैं कहता हूं कमी मुझमें है, तुम्हारा अपराधी मैं हूं. मैं ही नहीं समझ पाया कि दांपत्य जीवन को सफल बनाने के लिए किन-किन बातों को अपनाना होता है...!"

वह निरुत्तर हो जाती, समझ नहीं पाती क्या कहे! कभी सोचती कहे, गलती तुमने की, किस्मत मेरी फूटी. पर फिर चुप रह जाती. अजीब फटी-फटी आंखों से वह उसे ताकती रहती और फिर उठकर चली जाती. अपने कमरे में जाकर वह फूट-फूटकर रोने लगती, उम्मीद करती कि उसका पति आयेगा, उस पर, उसकी बांह पर हाथ रखेगा, सहलायेगा, उसके बालों में उंगलियां फिरायेगा. कहेगा, 'मैं तुम्हारा दोषी जरूर हूं, पर मैं बुरा इंसान नहीं हूं. तुम्हारे प्रति मेरे मन में रत्ती भर कलुष नहीं है. दोष तुम्हारा भी तो नहीं है. इस स्थिति में कोई भी स्त्री इसी प्रकार का उखड़ा-उखड़ा व्यवहार करती.' पर उसकी उम्मीद अंधेरे में कपकंपाती रह जाती.

उसके पति ने उन्हीं दिनों अपने उस बेटे का विवाह रचाया था. विवाह बहुत सामान्य ढंग से ही आयोजित हुआ था, पर उसका सम्मिलित होना जरूरी था. उसके पति की यह इच्छा उसने पूर्ण कर दी थी, पर उसका अंतर खील-खील हो उठा था. उसे लगा था उसके और उसके पति के बीच की दूरी और बढ़ गयी है. वह और अकेली हो उठी है. उतनी उम्र की हो जाने पर, वह अपने पति के सुख-दुःख में सहभागिनी बनती हुई उसके साथ ही रहना-बसना चाहती थी. अब इस उम्र में उन दोनों के मध्य उतने

और दिन-दिन बढ़ते हुए प्राणियों का आगमन उसे संत्रस्त बनाये रखता. किसी प्रकार के भी भीड़-मड़क्के से वह अब बचना चाहती थी, खासकर उस प्रकार की मनःस्थिति के माहौल में.

वह अपने परिवेश और स्वयं उगी हुई उन समस्याओं और स्थितियों से अब ऊब उठी थी. अंधकार, अकेलापन, उजाड़, प्रताड़ित, किंकर्तव्यविमूढ़ हुई ,समय की गति के साथ वह बहती चली जा रही थी. ईश्वर से वह फिर भी मनाती रहती कि उसे उसका घर फिर वापस मिल जाये. संतोषप्रद, प्रफुल्लित, शांतिप्रद रास्ता नहीं सूझ रहा था, हालांकि अकेले रहते रहने की वह अब तक काफी अभ्यस्त हो चली थी, पर इन दिनों कभी-कभी वह मानसिक रूप से बेहद अस्वस्थ हो उठती, ढेरों बुरे-बुरे खयाल उसके दिमाग में चक्कर लगाते रहते. वह रातभर जागती और दिन में ऑफिस में ऊंघती रहती और ऑफिस से लौटकर उलटा-सीधा कुछ निगलकर सोती रहती.

ऐसी ही हालत में एक दिन दुःखी होकर उसने एक महानगर के एक महिलासदन में आवेदन पत्र प्रेषित किया था कि कुछ समय पश्चात इधर के अपने कार्य से अवकाश लेने के बाद वह इधर उनकी संस्था में रहकर सेवाकार्य करना चाहती है. यदि उसे वहां कार्य मिल सके, उसके रहने की व्यवस्था हो सके, तो कृपया उसे सूचित किया जाये.

इस प्रकार की योजना वह प्रायः गढ़ती रहती, उसने पूरा-पक्का निश्चय कर लिया था कि अपनी अवकाश प्राप्ति के उपरांत वह भी कहीं चली जायेगी.

ज्ञान

उसकी तरफ से पत्नी के प्रति कोई कोताही हुई है— वह कुछ विचारने का उसके पास समय ही नहीं था. वह पूर्ववत् घर आता-जाता अवश्य रहता था, पर उसके मन में कहीं यह कसक बनी ही रहती कि वह व्यक्ति जो उसके द्वारा स्वीकारा गया है, पत्नी की ओर से उसे मान्यता नहीं मिल पायी है. पत्नी से अपने इस नवपुत्र और पुत्रवधू के प्रति अपेक्षित स्नेह-सम्मान की कामना वह अब भी करता. वह प्रायः पत्नी को झटकारता. ऊंचे स्वर में कहता कि "मुसलमान-ईसाई तक के लिए तुम्हारे हृदय में स्थान हो सकता है, उनसे तुम सौजन्य, शिष्टता का व्यवहार कर लेती हो, पर वह बेचारा तुमसे एक सामान्य शिष्टाचार की अपेक्षा भी नहीं कर सकता, कितना बदनसीब है वह!"

सुभद्रा बताना चाहती, "प्रश्न ईसाई-मुसलमान का नहीं है, प्रश्न तो एक तीसरे व्यक्ति को एक महत्त्वपूर्ण सदस्य के रूप में घर में प्रविष्टि दिलाने का है, जिसके कारण दूसरा सदस्य अपना गौरव और स्थान खो बैठा है. यही कील मुझे हरदम सालती रहती है कि मैं उसके सामने क्या रह गयी हूं, कुछ भी नहीं न!"

"कोई व्यक्ति अपने स्थान से भ्रष्ट अपने कर्तव्य से च्युत होने पर ही होता है, तुम वैसा महसूस करती हो तो अपनी खामियां ढूंढ़ो, दूसरों पर आक्षेप लगाते रहने से कोई लाभ नहीं है. और यह भी समझ लो कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे का स्थान नहीं ले सकता. यह तुम्हारी खाम-खयाली है कि उस बच्चे ने तुम्हारा स्थान ले लिया है, हर व्यक्ति की अपनी जगह होती है."

"और उसने मेरी वह जगह ले ली है. मैं यही अनुभव करती हूं, और यही टीसता है मुझे!" वह पीड़ायुक्त स्वर में कहती.

"तुम पागल हो."

"मैं भावुक हूं."

"निरर्थक भावुक व्यक्ति ही पागल होता है. भावुक न बनकर विवेक से काम लो, तुम पाओगी कि कहीं कुछ नहीं बिगड़ा है."

सुभद्रा चुप हो जाती जैसे उसकी बात को समझने का प्रयास कर रही हो. पति-पत्नी के बीच यह मुद्दा उन दिनों इतना अहं हो उठा कि उसने उन दोनों के मध्य औपचारिकता के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं छोड़ा था.

वह उस दिन बरामदे में लेटा था, सुधीर और उसकी बहू कमरे में थे, तभी फुसफुसाहटें उगीं. हल्की हकडा-तुकड़ी के स्वर उसके कान में पड़े.

"तुम्हारे बाप का यह तुमसे इतना चिपट्टूपन मुझसे नहीं सहा जाता. दूध पीते बच्चे की तरह तुम्हें लैलमना बनाये रहते हैं. उनके होने से सध-बंधकर रहना पड़ता है मुझे, हरदम सिर ढके रहो, नब-दबकर चलो. बहोऽऽत मुश्किल है. क्या हम दोनों कहीं अलग नहीं रह सकते? क्या कोई नौकरी तुम्हें कहीं और नहीं मिल सकती? कौन से तुम्हारे वे सगे बाप हैं...!"

ज्ञान ने उस बात को सुना और बात कहीं गहरे में उसके कलेजे में धंस गयी. शेष रात वह सो नहीं सका था.

जो नहीं है, वह कहां से लाऊं!

▣ चेखव

"प्रायः मेरी भर्त्सना की गयी है. और भर्त्सना करनेवालों में ताल्सतोय भी हैं, कि मैंने छोटी-छोटी और तुच्छ बातों पर लिखा है. मेरे पास न तो कर्मठ नायक हैं न क्रांतिकारी, यहां तक कि लेस्कोव की कहानियों जैसे ईमानदार पुलिस इंस्पेक्टर भी नहीं हैं. फिर कोई मुझे बताए, जो नहीं है, वह कहां से लाऊं? बहुत ही सामान्य और स्तरहीन है हमारी जिंदगी. शहर ऊबड़-खाबड़ और गांव एकदम गरीब हैं तो गांववाले कतई फटेहाल. बचपन में हम लोग चूहों और गिलहरियों की तरह गंदगी में खेलते रह जाते हैं... चालीस की उम्र तक बुढ़ापा महसूसने लगते हैं... हर वक्त मृत्यु के विषय में विचारमग्न रहते हैं...! □

सवेरे उठते ही उसने सुधीर को बुलाया, कहा, "बेटे, देखो तुम्हारे और मेरे बीच कोई पर्दा नहीं रहा है. मैं तुमसे हमेशा स्पष्ट बात कहता रहा हूं और तुमने भी मेरे आगे सब कुछ खुल कर कहा है. बेटे, रात बहू के मुंह से निकला, जो कुछ मेरे कानों में पड़ा है, उसने मुझे मेरे कर्तव्य की याद दिला दी है. बेटा जब वधूवाला हो जाये तो उसके साथ पिता का रहना ठीक नहीं होता. तुम्हें नौकरी इधर मिली हुई है, नयी नौकरी ढूंढ़ने में तुम्हें कठिनाई होगी, इसलिए तुम यहीं रहो. मैं चला जा रहा हूं. मेरा क्या है! मैं तो ऐसे ही दिन बिता रहा था. आर्थिक लोभ से मैंने अपने घर को छोड़ा भी नहीं था, मैं अब वापस जा रहा हूं. इतने दिनों से वह भी अकेली है, बहुत क्लेश भुगते हैं उसने, मुझे इधर अब वापस चले ही जाना चाहिए..." शब्द ज्ञान के मुंह से सहज भाव से निसृत होते चले जा रहे थे और सुधीर की आंखों से आंसू टप्प-टप्प गिर रहे थे.

"पिताजी, आपने यह नहीं सुना कि मैंने अपने पत्नी से कह दिया है कि मैं तुम्हें छोड़ सकता हूं पर अपने पिताजी को नहीं. आप मेरे पास रहेंगे और कहीं नहीं जायेंगे."

पर उसने निश्चय कर लिया था. उसने सुभद्रा को पत्र लिख दिया था कि वह आ रहा है.

▣

उस अंतर्देशीय पत्र को थामे सुभद्रा बहुत देर तक चुपचाप बैठी रही थी. बहुत देर तक सोचती-मथती हुई. उसका वांछित खुद अपने पैरों चलकर आया है. उसके कलपने की अब इतिश्री हो जायेगी. उसके भगवान ने उसकी सुन ली. पूरे ढाई साल हो गये थे उसे मरते-खपते-भुगतते— उसने सच्चे मन से ईश्वर को धन्यवाद दिया था.

वह आज निश्चित मन सो पायी थी, पर आधी रात को उसकी आंख अचानक खुल गयी. कुछ चित्र उसकी खुली आंखों के आगे तिरने लगे. उदास, बुझी-बुझी एक आत्मकेंद्रित आकृति—वह शुरू से ही आत्मकेंद्रित रहा है. बहुत मुश्किल से उसका बोल फूटता है, जब फूटता है तब डांट-फटकार का, शिकायत का, अवहेलना का. उस व्यक्ति की प्रकृति कभी नहीं बदलती, पर अब क्या वह प्रकृति को सहन कर पायेगी? पहले कभी वह सब कुछ सहन कर लेती थी, क्योंकि उस वातावरण में दोनों के मध्य कोई भेदभाव नहीं रहा था. पर अब? अब जो कुछ घटित हो चुका है, उस सबके बाद? उसने ईश्वर से मनाया था कि उसका घर किसी प्रकार पहले की तरह बस जाये, वे दोनों फिर से एक साथ रह सकें. फिर से उस प्रकार ढर्रा चल निकले, जैसे पहले चला करता था, पर अब क्या उस प्रकार की दिनचर्या चालू होना आसान होगी?

उसके मन का गुबार कि एक दिन उसे पत्नी की ओर से असहयोग मिला था. वह गुबार तो उसके मन में रहेगा ही. फिर अपने बेटे से तो वह अब भी ज्यों का त्यों जुड़ा है. उसका ध्यान वह बराबर करता रहेगा. छत पर घंटों लेटे हुए, किसी से बिना कुछ बोले, बतलाये हमेशा शिकायत करते हुए कि यहां आकर उसे हमेशा घटिया सुनते रहना होता है, उसे ही दरवाजा खोलना पड़ता है हमेशा. हीन भावना उसे फिर घर पकड़ेगी. उसकी उदासीन और अपने प्रति तटस्थ मुद्राओं को वह कैसे सहन करेगी? एक-दूसरे से अलग-थलग लेटे-बैठे संवाद की स्थिति भी जहां संभव न हो—वैसे माहौल में क्या रह सकेगी अब वह? उसने महसूस किया कि पति के बिना रह सकने की क्षमता उसे पति की ही ओर से ही अर्जित करवा दी गयी है. साथ रहने के लिए अब उसे फिर अभ्यास की अपेक्षा होगी. कर सकेगी नये सिरे से अब वह वैसा अभ्यास?

उसके सपनों में तो अब फूही लग गयी थी. एक दूसरा, एक दूसरे के साथ अपनी अंतरंग भावनाओं को कह-बांट न सके, तो कैसे संभव होगा रहना-बसना? तब? तब? वह पूरी रात जागती ही रही थी और अपने से झगड़ती रही थी. आसमान धुंधला होने लगा था, चांद का अधूरापन चांद समेत गुम हो गया था. बिखरे बाल और सलवटी गाउन पहने वह मेज के आगे कुर्सी पर बैठ गयी, उसकी कलम लिख रही थी—

महोदया,

मेरे अमुक तारीख के खत का जवाब मुझे आपकी ओर से नहीं मिला है. अब मुझे उसकी जरूरत भी नहीं है. मैंने निश्चय किया है कि मैं अब अपनी इधर की नौकरी छोड़ दूंगी और आप की संस्था में आ जाऊंगी. मुझे पूरा विश्वास है कि जिस महिला ने आपकी संस्था की सेवा के लिए अपनी स्थायी नौकरी छोड़ दी है, उसे आप अपने 'महिलासदन' में स्थान अवश्य देंगी. मेरे योग्य कोई न कोई कार्य निकल ही आयेगा. मैं विश्वास दिलाती हूं कि मेरी ओर से आपको शिकायत का अवसर कभी नहीं मिलेगा. अगले सप्ताह से पहले ही मैं आपके पास पहुंच जाऊंगी.

आपकी बहन
सुभद्रा

पत्र को उसने एक बार पढ़ा और तब उसे एक तरफ रखकर वह दूसरा पत्र अपने दफ्तर के डायरेक्टर के नाम लिखने लगी थी...! □

● 3/6, भगवान नगर, देहरादून (उ.प्र.)

लेखक की कामना

▣ ताल्सतोय

यदि मुझसे कोई यह कह दे कि जो मैं लिख रहा हूं, उसे आप के बच्चे बीस साल के भीतर पढ़ेंगे, और वह उन्हें रुला देगा, हंसा देगा और सिखाएगा जिंदगी से प्यार करना... तो मैं इसमें अपना पूरा जीवन और शक्ति लगा दूंगा. □

● 'वार एंड पीस' लिखते समय ताल्सतोय के उद्गार

एवज

अनुराधा शंकर

▣ सांत्वना पुरस्कार विजेता कहानी : पांच

मजीद की समझ में न आया कि वह पिता की अंगारे उगलती, मां की आंसुओं से भीगी और अपनी सपनों से भरी आंखों को मूंद लेने के एवज में मिले उन रुपयों का क्या करे! जीने के साधन ही नहीं, जीने के हक तक से बेदखल कर दिये गये तबके की दुःखद गाथा . . .

वे सुबह सात बजे से चल रहे थे, चीख रहे थे, नाच रहे थे, गा रहे थे, बड़ी ही उमंग में थे. उसे भी अब्बू अपने साथ ले आया था. अब्बू माने उसका बाप.

अब्बू भोरे जब बांध की ओर जा रहा था, तो अम्मी से बोला, "आज पंद्रह-गो रोटी बान्ह देना, एजीटेसन के सुरूआत है, देरी लगेगा. और मज्जू, तू हमरा साथे चलिहे."

रोज मजीद बांध पर अब्बू के साथ जाता है. वह बांध बहुत नीचा पड़ गया है न, सो ऊंचा करते हैं. कहते हैं बांध की भराई कर रहे हैं. का कप्पार भराई करते हैं! किनारे से मिट्टी खोद-खोदकर ऊपर डाल देते हैं, जिससे बांध और भी पतला हो जाता है, ताकि कोशी के हराते जल की एक ही चोट में बांध टांय-टांय फिस्स. नहीं तो बांध को ऊपर ही ऊपर खोद देते हैं. ठीकेदार बाबू कहते हैं, "ऐशे ही तो बांध उट्ठल लगता है. कोई इंजीयड़ इंचीटेप शे नापेगा जो? औड़ नाप भी लेगा तो बाजाड़ शे बिदेसी माल औठ कुर-मुड़ी तो मंगाना ही है. . ."

मजीद की समझ में नहीं आता कि बाजार से आई खाने-पीने की चीजों का बांध की नपाई से क्या ताल्लुक है. मगर यह जरूर लगता कि ठीकेदार बाबू बदनीयत है. अभी परसों ही तो जब किनारे से खोदकर एक टोकरी मिट्टी मजीद उत्तर-बरिया ताड़ के पास डाल रहा था, तो ठीकेदार बाबू उससे बोले, "ई मिट्टी उधड़ वाले टड़क में डाल दो. . ."

"मगर मालिक," मजीद विरोध में कुनमुनाया, "हमरा तो अब्बू कहले है बन्हवा पर डाले वास्ते . . ."

"मश्शाले, ड़ोज एक ड़ुपिया हम देते हैं कि अब्बू?" मरता क्या न करता, मजीद वह टोकरी ट्रक में डाल आया. पीछे ठीकेदार बाबू ओवरसीयर साहब से कह रहे थे, "बात ई है शड़, जी, अपना घड़ बन ड़हा है. जमीन जड़ी शन लो शैड में पड़ता है, शो भड़ाई के लिए अपने को जड़ूड़त हो. . ."

अगर ऐसी बात है, तो मजीद ने सोचा, वह भी दो बोरी मिट्टी घर ले जाएगा. उसे भी मूर्तियां बनाने का मन है. फिर रंग पोतकर अगला हटिया में बेच देगा. कलुआ वहीं तो अपना बनाया आम और सांप बेच आया था. दोनों मिलाकर हुए थे पचपन पैसे. साला, खूब मलाई बरफ खा रहा था. दस पैसे वाला भी. पचीस पैसे वाला भी. मजीद को कलुआ से कम हुनर नहीं. जब दो बोरी मिट्टी ले जाएगा तो बहुत सारी चीजें बनाएगा. बहुत सारे फल, जानवर और पंछी. एक और मजदूर, एकदम अब्बू जैसा रूखड़ा और खूंख्वार. एक ठीकेदार बाबू, ऊपर से मोटा—बुद्धू—पर भितरिया बदमाश, एक ओवरसीयर साहब जिनकी जेब से हमेशा एक

[illegible] झांकता रहता है. और ? औउर, एक अम्मी, बेचारी, जिसके कपार से अगहन-पूस में भी पसीना चूता रहता है. कभी अगर उसे निठल्ले बैठे, बातचीत करते दिखा दो, तो मजीद सौ टके की बाजी बदे.

पिछली ही रात, जब अम्मी अब्बू के पैर दबाने आयी, तो अब्बू समझाने लगा, "जाने हो आइसा, कल्हे जलूस में जाना है. सरकार को तो सबक सिखाना ही है. देखो तो, महंगी बढ़े जाता है और हम लोग के मजूरी अभियो डेढ़े रुपिया है. हम लोग का बच्चा भी बराबरे काम करता है, पर ओकरा एक्के टका मिलता है. ई उपरका आदमी सब भी कम बदमास नै है. परसूए तो ई ठीकेदरवा साला दू टरक मिट्टी ले गया है. गड़ा में घर बनाता है, भराई करेगा. कल्हे जुलूसे में बुझाएंगे. . ."

"मगर," इतनी देर से चुप्पी साधे बैठी अम्मी के बोल फूटे, "सुने हैं कि जलूस-तलूस में लाठी-गोली सब चलता है. हमरा बरा डर लगे है—तू लोग मत जइह. . .कौनो जरोरत है?"

"चोप्प सांड़िन. समझेगी-उमझेगी कुछ नईं और बाते करे बैठेगी. हमरा भी माथा खराब है कि पाथर से मारे हैं!" अब्बू बड़बड़ाता हुआ मुंह घुमाकर लेट गया था. 'सांड़िन' अब्बू की खास गाली है. उसका मतलब क्या है वही जाने. अम्मी और फातेमा को सांड़िनी, मुस्ताक और अयूब को सांड़, मगर मजीद को कुछ नहीं. वह तो बांध पर काम करता है न! कमाऊ बेटा है. मुस्ताक, अयूब तो मदरसे में 'मौलीस्सा' के डंडे तले रहते —अलिफ से अकबर, बे से बकरी ते से. . .धत्. उसे नहीं आता यह सब. उसे तो ताजिए के गीत आते हैं, और. . .और याकूब भाई की चिट्ठी जबानी

याद है. लिक्खा था, "मिले अब्दुल रजाक (अब्बू), मोफर-मीन जनाब वालिद साहेब को हमारे तरफ से अस्सलामालै-कुम. मैं खैरीयत से रहकर आप लोगों की खैरीयत खोदाबंद करीम से नेक मनाता रहता हूं. अगाड़ी खबर ई है कि यहां कल-कत्ता में हमको बस के खलासी के काम मिल गिया है. कभी-कदा नेपाल भी जाने होता है. महीना में कम-से-कम डेढ़ सौ टका हो जाता है. जनाब वालिद साहेब और मोहतेरीमा अम्मीजान के खैरीयत और मुस्ताक, अयूब, मजीद और फातेमा के पढ़ाई के वास्ते हम सौ ठो टका भेजेंगे. मजीद, अयूब, मुस्ताक और फातेमा को प्यार. अम्मीजान के कदमों में आदाब. वे अपने हैल्थ का खयाल रखती हैं या नहीं. आपका बेटा जैकू उर्फ मो. याकूब अली रजाक, पनामावाले."

अम्मी कहतीं, "बेटा हो तो ऐसा, परदेस से भी पैसा भेज रहा है. और मेरी सेहत का भी खयाल कितना है. और इन मरदूदों को देखो—भर दिन छाती पर मूंग दलेंगे." आगे, कभी जैक भाई सौ टके भेजते, कभी डेढ़ सौ. जाने कहां से इतना पैसा था उनके पास.

जलूस से पहले की रात डांट खाकर अम्मी नीचे चटाई पर मुस्ताक और अयूब के बीच सो गयी थी. फातेमा उसके पैरों के बीच सोयी थी. और मजीद, अब्बू का प्यारा तेरह साला कमाऊ बेटा, अब्बू के बगल में घर की इकलौती चौकी पर सोया था, बांह पर सिर टिकाये. उसकी नजरें अम्मी पर थीं. बड़ी, सुपारी-सी आंखों के कोरों पर, ढिबरी की रोशनी में, दो मोती चमक रहे थे. अम्मी ढिबरी बुझाना भूल गयी शायद. अचानक अब्बू उठेगा और अम्मी को गरियाने लगेगा, मजीद को न अब्बू का गरियाना भला लगता है, न अम्मी का गाली घोंट जाना.

वह रोशनी गुल करने को उठा. कहीं कोई जाग न जाय इसलिए दबे पांव अम्मी के सिरहाने रखे 'मोरा' के पास गया. उसी पर ढिबरी रखी थी. उसने हाथों से ढिबरी को छुआ तो लौ जरा तेज हो गयी. रोशनी अम्मी के चेहरे पर पड़ी, तो दो मोती फिर झिलमिला उठे. इस बार वे सच्चे-मोती-से लग रहे थे—लगा ही नहीं आंसू थे. उसने हल्के से उन्हें छुआ—पानी था, गरम. जीभ से सटाया, नमकीन. अम्मी सुगबुगायी, "ऊं. . .!" उसने झपटकर ढिबरी को एक फूंक मारी—"फू!" एक ऊंची लौ उठी और अंधेरा. वह बिस्तर पर पड़ गया. खिड़की से एक आंजुर चांदनी अंदर आ रही थी. बाकी जगह था खाली अंधेरा—वह उसमें कुछ देख रहा था. सच, अंधेरे में बहुत कुछ दिख जाता है. अम्मी की आंखों के दो मोती. अम्मी को जो अब्बू ने डांटा, 'सांड़िनी. . .' इसीलिए रो रही है. पर अम्मी ने जवाब क्यों नहीं दिया?

उसके सोचने का सिलसिला टूट गया. उसने खिड़की की ओर देखा—सुबह का तारा उगने ही वाला था. बादलों ने ढक लिया था शायद, क्योंकि उगने का समय हो चुका. ये बादल क्यों उगते हुए तारे को ढंक देते हैं? उन्हें क्या दुश्मनी है बेचारे से? ज्यादातर तारा बादलों से ढंका रहता है. कभी एक झलक भी मिलती है तो बड़ा प्यारा लगता है.

▣ अनुराधा शंकर
जन्म : 3 मई, 1964
—"मेरी रचनाएं ही मेरा आत्मकथ्य भी हैं वरना लिखती ही क्यों?"
संप्रति : स्नातक की छात्रा.

धत्! बहुत सोचता है मजीद. . .अब नहीं सोचेगा, एक दम नहीं. सुबह होने को है और वह अभी तक सोया भी नहीं. उसने आंखें बंद कर लीं. मगर विचार आ ही गया—कल के जुलूस के बारे में. अब्बू कहता था कि कैसे भी अपनी मांगें मनवानी हैं, जमीन और मकान लेना है, बच्चों की पढ़ाई के लिए पैसे मांगने हैं और. . .जाने कैसे उसे नींद आ गयी. सपने. आने वाले कल के सपने. ..खुदा का शुक्र, वह सोया.

अब्बू ने उसे छह बजे सुबह ही उठा दिया था. वैसे तो वह आठ-नौ बजे उठता है, दस बजे काम पर जाना होता है. आज तो चार-साढ़े चार बजे वह सोया ही था. यानि बहुत तो डेढ़-दो घंटे सोया होगा, और क्या? उसे बेहद खीझ हुई. तभी अब्बू ने कहा, "आखिर जलूस का दिन आया." यह सुन-कर मजीद बिस्तरे से कूद पड़ा. उसका दिल बल्लियों उछलने लगा. पर कुछ कहने से पहले उसने अब्बू की आंखों में झांका—कहीं वे रात वाली लाल, खूंख्वार आंखें तो नहीं? नहीं, आज अब्बू की आंखों में कुछ चमकीला-सा था—दीए की लौ सरीखा, सुबह के उगते तारे सरीखा. वह झटपट नहाकर, मरूआ की मोटी-रोटी लहसुन की चटनी और ठंडे पानी के साथ गटक, अब्बू के साथ चलने की कोशिश करने लगा.

थोड़ी ही देर में वे बांध पर पहुंच गये. सबने मिट्टी माथे लगायी. सबको एक पर्चा दिया गया. मज्जू ने उसे सहेजकर जेब में रख लिया, मुस्ताक को दिखाएगा. बहुत से लोग आ रहे थे. वह दौड़ गया आगे, ठीक नेताजी की जगह के पीछे. उसने मुड़कर देखा, आदमियों का समंदर था. सब बांध पर काम करते हैं? इतने-से बांध पर? उसने जरा गर्दन टेढ़ी करके बांध को निहारा. अरे. . .इतना बड़ा फैलाव . . . और जहां-तहां पार्टी के अनगिनत झंडे.

तभी आगे कोई बोला, "हलो माईक टेस्ट. हलो, वन टू थ्री. . ." अरे! माईक आ गया. मजीद हसरत भरी नजर से उस ओर देख रहा था. माईक में बोलने से कैसी टनाटन आवाज निकलती है. तभी नेताजी आ गये. लंबे, काले, तोंदियल नेताजी ने सफेद धोती कुर्ता पहना था. माईक वाला चीखा, "हमारे नेता—" मजदूर चिल्लाए, "भूपिन्नर ठाकुर." उसने नेताजी के मुंह को गौर से देखा, सिर पर चौखाने का रूमाल, मुंह में पान. लगभग सफा चांद पर दो-एक चुड़की बाल, हाथ में जली हुई सिगरेट. पनामावाले. पता नहीं क्यों मजीद सोच गया. क्या ऐसा ही होता है नेता? पता नहीं क्यों मजीद थोड़ा निराश हो गया. खैर. देख तो लिया नामी-गिरामी नेता को. अच्छा हुआ वह आगे खड़ा था.

वह हर जगह आगे खड़ा रहता है. जब सजदे से पहले खड़ा होता है तब भी, जब कल्लू के साथ रामलीला देखने जाता है तब भी. पता नहीं अब्बू कल्लू से क्यों चिढ़ता है? कहता है, "तू ओकरा संग न खेला कर. उसकी तो कौम ही कुत्ती है, मौलीस्सा के बेटा कहते हैं कि सहर में दो रोज पर दंगा करते हैं वे. ईद हो या दुर्गा पूजा." शायद ठीक ही कहता है अब्बू. फिर भी मजीद कल्लू के संग खेलेगा, नहीं तो उसके संग सनगोह के शिकार में जायेगा कौन? गांव के पढ़क्कू तो नहीं.

सामने नेताजी ने हुलकार दी, "हम्मारा प्यारा. . ." मजदूर चीखे, "मजदुर सन्न!" नेताजी तांगे पर बैठे भाषण देते रहे, "प्यारे मजदूर भाइयो. . ." पीछे-पीछे भेड़ों के रेवड़ की तरह भीड़ चलती रही थी. तभी से वे चल रहे थे. जब वे घंटाघर के करीब पहुंचे, तो बारह बज चुके थे. नेताजी ने काला चश्मा पहन लिया था. शहर आने में पांच घंटे लग गये थे. . .वे कई कोस चल भी चुके थे. बीच-बीच में वे रुकते भी थे. नेताजी और उनके बेलचों को चाय-पान-सिगरेट दिया जाता था. राह में उसे अब्बू ने अंडी के तेल में तली झिल्ली-कचरी और जिलेबी भी खिलायी. पूछा भी कि थक गये हो तो गोद में उठा लूं.

वे सब अब कलेक्ट्रियेट के सामने बैठ गये थे. नेताजी कुछ भाषण कर रहे थे. मजीद के चारों ओर सब बैठ गये थे—वह भी बठ गया. नेताजी ने हाथ भांज-भांज कर क्या कहा कि सब बड़ा घर पर सड़क से उठाकर कंकड़ फेंकने लगे. एक-दो कांच टूटे और एक चौकीदार की आंख में चोट लगी. कल्लू ने मजीद की बांह पकड़कर कहा, "निसाना बैठा?" मजीद चकित-सा, कभी कल्लू को, कभी अब्बू को, कभी नेताजी को, कभी कंकड़ों को देख रहा था. कैसी अजीब हालत थी. सब जुनून में. वह एक पेड़ के पीछे छिप गया.

तभी किसनगंज के दरोगा जैसा, मगर जरा ज्यादा रोबदाबवाला पुलिस, नीली टोपीवाले राईफलधारी सिपाहियों के साथ आया. नेताजी ने उन पर भी पत्थर फिक-वाए. अफसर ने कुछ कहना चाहा, पर मुंह खोलते ही तीन-चार पत्थर मुंह पर आ लगे. उसकी आंखें गुस्सैल अब्बू की तरह लगने लगीं. लाल, खूंख्वार. वह चीखा, "ये हरामजादे सुनेंगे नहीं, चलाओ गोली. फायर!" सिपाहियों ने बंदूकें संभालीं और तड़-तड़-तड़. . . अंधाधुंध गोलियां चलीं. भगदड़ मच गयी. पेड़ के पीछे बैठे मजीद की नजरों में सब गड्डमड्ड हो गया—अब्बू-कल्लू जाने किधर थे. मगर नेताजी को पता नहीं क्यों एक सिपाही ने गोली चलने से पहले जीप गाड़ी में बिठा दिया था.

कुछ देर बाद तड़-तड़ बंद हुई. लोटे लोगों के जख्मों से बांध के पासवाले परनाले की तरह लहू बह रहा था. लहू—अब्बू की आंखों की तरह लाल. उसने छुआ—अम्मी

आंसुओं की तरह गर्म. वह हर किसी को देखता बढ़ रहा था. तभी उसे जानी-पहचानी आंखें दिखीं, "अब्बू!" अब्बू था यह. निष्क्रिय, काला फैलाव. सारे बदन पर जख्म थे और लहू रिस रहा था. ढीली मुट्ठी में कंकड़ थे. आंखों के तारे को जैसे बादलों ने ढंक दिया था, जाने क्यों सोच गया मज्जू, बुझने से पहले लौ ऊंची उठी होगी. जाने कैसे सोच गया वह. अचानक उसके थरथराते पैर मुड़ गये और वह धप्प से बैठ गया. कोई उसके पूरे वजूद को दरिंदे की तरह चूस रहा था और बुलंद मगर फटी आवाज में मजीद गाने लगा—

"हांजी रोई रोई पुछथिन दादी ओजिर से
हम्मर लाल कहां छै जी
हांजी मक्का मदीना में दस करबोला
ओत्तहि मारि पड़ी है जी
हांजी मारि पड़ी है लहास धरी है
खून के दरिया बही है जी. . ."

"ऐ हसन इमाम, क्या मेंमिया रहा है? मुहर्रम है तेरा साले?" एक सिपाही ने थप्पड़ रसीद किया तो नाक सुड़कता हुआ मजीद चुप हो गया. सब सिपाहियों ने अब्बू वगैरह को एक गाड़ी में बैठाया, एक के ऊपर एक. मजीद भी बैठ गया.

वे बड़े अस्पताल में रुके. अब्बू को बिस्तर पर लिटाया गया. अम्मी और तीनों बच्चे पहले से वहां थे. अब्बू को एक नर्स एक कमरे में ले गयी. अम्मी वहीं दीवाल से टेक लगाकर सिसक रही थी. मुस्ताक, अयूब, चुप बैठे थे. फातेमा पता नहीं कैसे उस महकते गलियारे में 'खंबा छू' खेल रही थी. मजीद एक खंबे से टिका खड़ा था—लाश से चिपककर रोती कल्लू की माई को देखता. अब वह सनगोह का शिकार कैसे करेगा?

अम्मी बुदबुदा रही थी, "कहले हलियै त कोहो हलै जे कोहो है. . ." कहती थी तो कहता था कि कहती है. अम्मी की थरथराहट भरी आवाज में ताजिए के गीत उठते थे. मजीद के कानों में मीठी-थरथराती आवाज गाने लगी—

"आहे बीबी, आबहूं तू सिनुरा उतारू
सैयद तोहर मारल गेला. . .
आरे लोगों सैयद मोरा पढ़थि कोरान
सैयद कोना मारल गेला . . ."

थोड़ी देर बाद अब्बू का बिस्तर चलाते हुए एक नर्स निकली. दूसरी नर्स एक और आदमी को अंदर ले जा रही थी. पहली ने दूसरी से कहा, "ये ग्यारहवां मरा है." अम्मी झपटकर बिस्तरे पर गिर पड़ी और चीखने लगी, "नई. . . जैकू के अब्बा. . .हम कैसे जी सकेंगे जैकू के अब्बा. ये इधर तो देखो जैकू के अब्बा. . .!" मजीद बुत बना रह गया. तीनों बच्चे अम्मी को पकड़कर रो रहे थे. नर्सें परेशान थीं, अम्मी खिसक ही नहीं रही थीं. आखिर एक ने चिल्लाकर कहा, "अरे बाबा रे, रोना है तो साईड में जाकर रो लो न. . .!" अम्मी बकरी की तरह खिसक गयी. और भी तो थे वहां, मौत का इंतजार करते.

कल्लू की माई पास खिसक आयी थी, "चुप रह ऐसा, करम है ऐसा, मत रो ऐसा." उसी ने आंसू भीगी साड़ी के पल्लव से अम्मी का सिंदूर पोंछ दिया था. अम्मी ने लहू से सनी धूल अब्बू के तलवे से लेकर मांग में भर ली थी, कल्लू की माई समझाती रह गयी, "नै ऐसा, ये नै—रांड़—मसोमात लाल रंग मांग में नहीं लेते." अम्मी ने भर हाथ चूड़ियां सर पर दे मारीं. चूड़ियों के साथ सर भी फूट गया.

तभी एक बाबू साहब आकर अंगूठा छाप लेकर पैसे बांटने लगा. अम्मी के पास आने से पहले उसने कागज-कलम और रेडियो वाले एक आदमी से कहा, "आकाशवाणी के लिए? चार मृत और ग्यारह घायल. दो की स्थिति गंभीर है. भई देखिए, ये लोग सिटी एस. पी. पर पिकेटिंग करने लगे. छः सिपाही घायल हैं. मजबूरन गोली चलानी पड़ी." अभी-अभी एक नर्स ने कहा कि ग्यारह मर चुके और घायलों की तो गिनती ही नहीं. मजीद का जी किया कि थाम ले गिरेबान इस शैतान की. पर पैर नहीं उठे. उसे तो अपनी आंखों के दिए को जलाना ही नहीं है कि बुझने की नौबत आये. जेब में पड़े पर्चे को उसने मुट्ठी में मुस दिया. न! अब मुस्ताक, अयूब कोई न देखे.

उस बाबू ने अम्मी को एक गड्डी थमायी और कहा, "तेरे छोटे बच्चे तो नहीं. ये सब कमाऊ हैं. सही रास्ते पर रखना. यह अब्दुल रजाक को लगी गोली के एवज में है." मजीद की आंखों में पानी भरने लगा. तो क्या सुबह का तारा उसकी आंखों में उग रहा है? उसने कसकर पलकें मूंद लीं—आंसू निकल गये. वह तारे को उगने ही न देगा कि उसके बादलों से ढंकने की नौबत आये.

अम्मी ने उसके हाथों में रुपये थमा दिये और उसने सहेज लिए वे रुपये—जो मिले थे अम्मी के आंसुओं के एवज में, अब्बू की लाल आंखों के एवज में, कल्लू के जख्मों से रिसते लहू के एवज में. यकबयक उसे लगा कि उसकी आंखों में उगने की कोशिश करता वह तारा हमेशा के लिए डूब गया है, और वह टिमटिमाता दिया—उसकी तो बाती ही जलकर खत्म हो गयी. उसने सम्हालकर जेब में रख लिए वे रुपये जो उसे मिले थे अपने सपने छोड़ देने के एवज में. □

● 441, रोड न. 8, सोनारी वेस्ट लेआउट, सोनारी जमशेदपुर-831011

चलते-चलते

प्रसिद्ध गायक, इर्विंग बर्लिन यूजीन ओ'नील से मिलने जा रहे थे. उनके मन में ओ'नील के प्रति जितना अधिक सम्मान का भाव था, उतना ही डर भी था कि वे पता नहीं किस प्रकार पेश आयेंगे और वे खुद उनसे क्या बातें करेंगे. और क्या ओ'नील ने कभी उनका नाम भी सुना है?. . .

आखिर जब वे उनसे मिले, तो उन्हें कुछ भी कहने का मौका न मिला. उनके कुछ कहने से पहले ही ओ'नील ने उनकी दिल खोलकर प्रशंसा की और उनके बहुत से गीतों का जिक्र किया, जो उन्हें जबानी याद थे. यहां तक कि उन्हें वे बहुत पुराने गीत भी जबानी याद थे, जो इर्विंग बर्लिन खुद भूल चुके थे. □

पुरानी हवेली

अब्दुल बिस्मिल्लाह

यह इमारत पुरानी हवेली के नाम से मशहूर है. उस रोज इस इमारत के सामने एक जीप आकर रुकी तो सामने की कोठरियों में रहने वाले रिक्शेवालों और अन्य दूसरे प्रकार के मजदूरों के बच्चे जीप के आस-पास आकर खड़े हो गये और एक अच्छा-खासा मजमा वहां दिखाई पड़ने लगा.

हवेली की इमारत काफी पुरानी है और जगह-जगह से वह काफी कमजोर हो गयी है. बाहर की ओर, दीवारों से लाखौरियां ईंटों की बड़ी-बड़ी दरारें साफ दिखाई देती हैं. हवेली में एक खूब बड़ा-सा फाटक लगा हुआ है जो देखने से ही जेल के फाटक जैसा लगता है. सामने एक खूब बड़ा-सा मैदान है, जिसमें आस-पास बसे ग्वालों की गायें अक्सर ही चरती हुई दिखाई पड़ जाती हैं. उसी मैदान में एक ओर एक मंदिर भी है, जहां शायद ही कभी शोर-शराबा होता हो.

इस हवेली के सामने प्रायः ही कोई न कोई गाड़ी रुका करती है. लेकिन बहुधा वे सरकारी गाड़ियां होती हैं और उनसे उतरने वाले लोग सरकारी वर्दी से लैस होते हैं. हवेली में उनका आना और हवेली से उनका जाना—केवल एक रूटीन के रूप में दिखाई पड़ता है और शायद इसलिए उनके प्रति कोई दिलचस्पी इस इलाके के लोगों में नहीं रह गयी है.

लेकिन उस रोज जो जीप यहां रुकी थी वह सरकारी नहीं थी. उसमें से उतरने वाले लोग भी सरकारी नहीं थे. वह शहर के कुछ संभ्रांत किस्म के लोग थे, हालांकि शक्ल से वे बदमाश लग रहे थे.

तभी हवेली का फाटक किसी दत्य के जबड़े की भांति खुला था और उसमें से एक मोटी ताजी महिला निकलकर बाहर आ गयी थीं.

"कहिए!"

वह भव्य महिला उन संभ्रांत किस्म के लोगों से अत्यंत गंभीरता के साथ पेश आयी थी.

"अधीक्षिका आप ही हैं?"

"कहिए!"

"आज सुबह जो दो औरतें यहां लायी गयी हैं, हम उन्हें छुड़ाने आये हैं. यह रहा आर्डर."

"लेकिन संस्था का ऐसा नियम है कि पांच बजे के बाद यहां से किसी को भी रिलीज नहीं किया जा सकता. आप लोग कृपया कल आइएगा. आज हमें माफ कीजिए."

और वे झटके के साथ फाटक के भीतर समा गयी थीं. लोग जीप थामे खड़े रह गये थे.

◘ सांत्वना पुरस्कार विजेता कहानी : छ :

किस हद तक खामोश रह सकता है इंसान.....? क्या होता है तब जब इत्मीनान हद से गुजर जाता है ? और कैसा होता है वह तूफान जब किसी का अहम् जाग उठता है...! जिंदगी के मुकाबले, खामोशी और इत्मीनान को तिलांजलि देती हुई उस अहम् की कहानी जिसका सिला था..... हत्या !.......

इस हवेली के भीतर आने वाली रात बाहर वाली रात से कुछ भिन्न होती है. अंधेरा होते ही हवेली में कैद लड़कियां अनावश्यक रूप से उछलने-कूदने लगती हैं. जो कुछ उम्र-दराज हैं वे एक-दूसरे से लड़ने में व्यस्त हो जाती हैं और जो कमसिन हैं वे आपस में छेड़छाड़ करके एक विचित्र-सी हरकत पैदा कर देती हैं पूरी हवेली में. लेकिन उस रोज सारी लड़कियां आंगन में एकत्र हो गयी थीं और उन दो औरतों को बड़ी हसरत के साथ देख रही थीं जो नयी-नयी वहां पकड़ कर लायी गयी थीं. उन्हें वेश्यावृत्ति के अपराध-स्वरूप गिरफ्तार किया गया था. उनमें से एक औरत काफी मोटी और काली थी तथा दूसरी वाली लंबोतरी और मरियल-सी दिखाई पड़ रही थी. लड़कियों ने उन्हें छेड़ना शुरू किया.

"तो आप लोग धंधा करती हैं?"

"हां, करती हैं."

"एक दिन में कितने मर्दों के साथ सोती हैं?"

"जितने मिल गये."

"थकती नहीं?"

"रंडी अगर थकने लगे तो हो चुका धंधा!"

"अच्छा आप लोग नयी लड़कियों को भी भरती करती हैं?'

"जरूर करती हैं."

"मैं चलूं तो मुझे रख लेंगी?"

"क्यों नहीं, तुम चली चलो रानी तो पचीसों की हमारी आमदनी बढ़ जाये."

"अच्छा बताइये आप लोग गाना भी गाती हैं?"

"जरूर गाती हैं."

"सुनाइये कुछ."

हवेली की दीवारें हुस्नो-मुहब्बत के तरानों से गूंज उठीं.

लेकिन अचानक दुलारी बहिन की घुड़कती हुई आवाज झन्नाने लगी आंगन में.

"अरे ओ भतारकटियो. माटीमिलियो· रात-रात भर यही रंडीबाजी होगी यहां? चलो सब लोग सो जाओ अब."

और सारी की सारी लड़कियां भरर-भरर भाग चलीं आंगन से. एक-एक कमरे में दो या तीन-तीन लड़कियां रहती हैं और हवेली में जो एक सबसे बड़ा कमरा है उसमें सात लड़कियां एक साथ सोती हैं.

देवबाला और झुन्नीबाई एक साथ रहती हैं. उनका कमरा बिल्कुल किनारे पर पड़ता है, अतः वहां काफी एकांत रहता है. बिजली तो लगभग हर कमरे में जलती है, लेकिन एक ही स्विच से सारी बत्तियां एक साथ जल उठती हैं और एक साथ बुझ जाती हैं. अभी देवबाला और झुन्नीबाई कोठरी में पहुंची ही थीं कि सारी बत्तियां बुझ गयीं और पूरी हवेली अंधेरे के गहरे समुद्र में डूब गयी.

देवबाला और झुन्नीबाई जमीन पर बिछे अपने बिस्तर पर लेट गयीं. देवबाला बंगालिन है और झुन्नीबाई केरल की रहने वाली है. झुन्नीबाई के नाक-नक्श तीखे हैं. उसे उसके चाचा ने एक भड़वे के हाथ बेच दिया था और कोठे से भागकर वह दिल्ली पहुंच गयी थी. किसी ने उसे वहां बीवी बना लिया था और फिर उसने भी एक अपराधकर्मी के हाथों उसे बेच दिया था. झुन्नीबाई वहां से भी भाग गयी थी और गिरफ्तार होकर इस वनिता संरक्षण गृह में चली आयी थी.

देवबाला अपने प्रेमी के साथ भागी थी. प्रेमी उसका एक गलतफहमी के कारण डाकू समझकर मार डाला गया था और वह हवेली में लाकर बंद कर दी गयी थी. यहां दोनों में दोस्ती हो गयी थी.

रात काफी गहरी हो गयी थी.

देवबाला और झुन्नीबाई साथ-साथ, पर थोड़ी दूर-दूर लेटी थीं. देवबाला को नींद नहीं आ रही थी. झुन्नीबाई की आंखें झपक रही थीं.

"नींद आता है?" देवबाला ने अंधेरे में प्रश्न किया तो लगा कि कोठरी में अभी जिंदगी थोड़ी-बहुत बाकी है.

"हां सो जा अब."

झुन्नीबाई ने उसका जवाब अत्यंत मुर्दादिली के साथ दिया था और चूड़ियों की आवाज से लगा था कि उसने करवट बदल ली है.

"ये रंडी लोग तुमको कैसा लगा?"

"मैंने बोल दिया न कि सो जा अब. सबेरे बात होगा."

"अच्छा बता, तेरा मन क्या मरद के साथ सोने को नहीं होता?"

"मैंने बोल दिया न कि सो जा अब."

देवबाला चुप हो गयी थी. लेकिन थोड़ी ही देर बाद वह सरकती-सरकती झुन्नीबाई के पास पहुंच गयी थी और एक झटके के साथ उसे उसने दबोच लिया था.

झुन्नीबाई चीखने लगी थी.

और देखते ही देखते पूरी हवेली जाग गयी थी. स्विच आन कर दिया गया था और सारी की सारी लड़कियां आंगन में आ गयी थीं. अधीक्षिका अपने हाथ में डंडा लिये जंभाई लेती हुई बीच में खड़ी थीं.

"क्या हुआ झुन्नीबाई, साफ-साफ बताओ. कौन आया था तुम्हारे कमरे में?"

"कोई नहीं बहिनजी."

"तब तुमने शोर क्यों मचाया?"

"ये देवबाला हमारे साथ रेप करना मांग रहा था..."

और सारी की सारी लड़कियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं. अधीक्षिका को भी हंसी आ गयी. देवबाला को रंडियों के कमरे में भेज दिया गया. हवेली एक बार फिर अंधेरे में समा गयी.

सुबह जब रंडियां चली गयीं तो देवबाला अकेली रह गयी. उसने इस बात की कोशिश भी नहीं की कि उसे किसी के साथ रखा जाये. रात वाली घटना को लेकर वह दुःखी भी नहीं थी. लेकिन वह उदास हो गयी थी.

हवेली में कुल साठ लड़कियां थीं और अलग-अलग हर लड़की को अपनी जिंदगी निरर्थक लग रही थी. इस तरह उस इमारत में अलग-अलग साठ जिंदगियां निरर्थक ढंग से जी रही थीं. वे अपने जीते रहने पर अफसोस कर रही थीं. अपनी पुरानी जिंदगी को लेकर क्षुब्ध हो रही थीं और अपनी आगामी जिंदगी के बारे में सोच-सोच कर उदास हो रही थीं.

देवबाला भी उदास थी उस रोज. उसे अपना प्रेमी याद आ रहा था. लेकिन प्रेमी को याद करने की अपेक्षा चादर पर फूल काढ़ना ज्यादा जरूरी था. अतः वह फूल काढ़ने बैठ गयी.

हवेली में कक्षाएं लगती हैं. कक्षाएं दो शिफ्ट में चलती हैं. पहली शिफ्ट में हिंदी, अंग्रेजी, गृह-विज्ञान आदि की पढ़ाई

■ अब्दुल बिस्मिल्लाह

जन्म : 5 जुलाई, 1949

अब तक एक कहानी-संग्रह और दो कविता संग्रह प्रकाशित. —"मैं अपनी कहानियों में जीवन के उस वीभत्स रूप को चित्रित करने की चेष्टा करता हूं जो भयानक शोषण और असंतुलित समाज-व्यवस्था का परिणाम है."

होती है और दूसरी शिफ्ट में सिलाई-कढ़ाई की ट्रेनिंग दी जाती है. इसके लिए हवेली में तीन अध्यापिकाएं आया करती हैं. उन्हें क्रमशः पढ़ाई बहिनजी, सिलाई बहिनजी और कढ़ाई बहिनजी कहकर पुकारा जाता है. इनने अलावा एक और बहिनजी आती हैं यहां. उन्हें स्टोर बहिनजी कहा जाता है. इन लड़कियों का खाना पकाने के लिए जो नियुक्त है उसे कुक नाम से पुकारा जाता है. वह खाना उसी रोज पकाती है जिस रोज इंस्पेक्शन होता है. शेष दिनों में यह काम लड़कियों से लिया जाता है.

पढ़ाई बहिनजी किसी सेठानी की तरह लगती हैं और जब वे आती हैं तो लड़कियां उनके पीछे पड़ जाती हैं. सिलाई बहिनजी एक विधवा स्त्री हैं. गोरा रंग, बूढ़ा शरीर, लंबा कद, आवाज में दृढ़ता. अधीक्षिका भी इनके आगे दबी-सी रहती हैं. कढ़ाई बहिनजी मुसलमान हैं. ये हमेशा लेट आती हैं, पर लड़कियां इनसे खुश रहती हैं. क्योंकि ये उनके दुःख-दर्द में सबसे ज्यादा हिस्सा लेती हैं और उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए परेशान रहती हैं. अधीक्षिका को मिलाना पड़ता है. मिलाकर आदेश लेना होता है. स्टाफ की अन्य सदस्यायें तो लड़कियों के सामान पर ही झपट्टा मारती रहती हैं. लड़कियों को जो साबुन मिलता है उसे वे सस्ते दामों में बेच दिया करती हैं, ताकि उस पैसे से कोई बहुत जरूरी चीज मंगवायी जा सके.

लड़कियों की जरूरतों की कोई सीमा नहीं है. पर वे जरूरतें अत्यंत साधारण हैं. इनके लिए राशन गोदाम से आता है. सब्जी बाजार से आती है. कपड़े का इंतजाम भी संस्था की ओर से होता है. लेकिन फिर भी इनकी चंद जरूरतें ऐसी हैं जो हवेली के भीतर नहीं पूरी हो पातीं. जैसे कोई नयी लड़की जब कानों में नये डिजाइन का बाला पहनकर यहां आती है तो पुरानी लड़कियों के लिए उस डिजाइन का या किसी भी डिजाइन का बाला पहनना जरूरत के रूप में दिखाई पड़ने लगता है. और लड़कियां कढ़ाई बहिनजी की डायरी में अन्य चीजों की भांति एक यह चीज भी लिखवाती हैं—बाला.

एक पूरी लिस्ट बनी हुई है इन बहिनजी की डायरी में, जिसमें दालमोठ और मिर्च की जरूरत लगभग सभी लड़कियों को है. दरअसल ये लड़कियां हवेली के अंदर सिर्फ दाल-भात-रोटी-सब्जी खाते-खाते ऊब जाती हैं और कभी-कभी जब कोई नयी चीज खाने की इच्छा होती है तो दालमोठ से ज्यादा सस्ती इन्हें कोई चीज नहीं दिखाई पड़ती. और दाल या सब्जी का स्वाद कुछ इस तरह बेमजा होता है कि मिर्च-लहसुन की चटनी या प्याज के बिना उन्हें खाया ही नहीं जा सकता. कुछ लड़कियां चाहती हैं कि वे अपना खाना अलग से पका लिया करें, पर इसके लिए उनके पास कोई सुविधा नहीं है. और जो कुक नाम की स्त्री है, वह स्टोर बहिनजी से मिली हुई है. और जो स्टोर बहिनजी हैं, उन्हें संस्था के स्टोर की अपेक्षा घर के स्टोर की चिंता अधिक रहती है.

हवेली की लड़कियां इस सारे रहस्यवाद को समझती हैं. लेकिन उनके पास सिर्फ जबानें हैं, जिनसे वे सिर्फ चिल्ला सकती हैं. गालियां दे सकती हैं और लड़ सकती हैं.

अधीक्षिका कैंपस में ही रहती हैं. हवेली का जो सबसे अच्छा हिस्सा है वह अधीक्षिका के लिए है. अधीक्षिका का उसमें दफ्तर बना हुआ है. अधीक्षिका का उसमें बेडरूम है और अधीक्षिका का उसमें ड्राइंगरूम भी है. अधीक्षिका जिसे चाहती है अपनी विशेष सेवा में रख सकती है. रंडियों के जाने के बाद ही अधीक्षिका ने यह कृपा झुन्नीबाई पर की है. और झुन्नीबाई अब अधीक्षिका की विशेष सेवा में तैनात है.

उसे अब अधीक्षिका की भांति ही अच्छा खाना मिलता है. अच्छे कपड़े मिलते हैं. सोने के लिए जगह मिलती है. और कुल मिलाकर झुन्नीबाई खुश है.

अन्य लड़कियां झुन्नीबाई से नाराज हैं. उन्हें उससे ईर्ष्या होती है. वे देवबाला को उसके खिलाफ उभारना चाहती हैं. पर देवबाला खामोश है. देवबाला उदास है.

हवेली में आज शादी है. सलमा, भानमती और अनीता का ब्याह एक साथ हो रहा है. जो लड़कियां घर बसाना चाहती हैं, संस्था उनकी मदद करती है. उनके लिए वर तलाशती है. उनके लिए दहेज की व्यवस्था करती है.

सलमा बचपन में ही खो गयी थी. जवानी में उसे एक शरीफ आदमी के साथ रहना पड़ा था और वह गर्भवती हो गयी. जब वह गर्भवती हो गयी तो उसे निकाल दिया गया. लेकिन अपने गर्भ को वह नहीं निकाल सकी. वह अपने वक्त पर ही बाहर आया और अपने नवजात बच्चे के साथ वह गिरफ्तार हो गयी. गिरफ्तारी के बाद उससे पूछताछ शुरू हुई. पूछताछ में उस शरीफ आदमी का नाम भी आया. और उस शरीफ आदमी ने एक किराये की औरत को हवेली में भेज दिया, जिसने यहां आकर बच्चे की हत्या कर दी. बाद में हवेली के नियम के अनसार, किराये की वह औरत अपने

रिश्तेदारों के द्वारा छुड़ा ली गयी. हवेली में सलमा का नाम सुषमा रख दिया. लेकिन सलमा सलमा ही बनी रही.

सलमा का विवाह राधेश्याम से हो रहा है.

भानमती का विवाह जगदेव से और अनीता का विवाह रामेश्वर से हो रहा है. भानमती कुंवारी लड़की है. अनीता ने पहले एक प्रेम-विवाह किया था, जिसमें वह असफल रही और बाद में वह एक साहब के साथ भाग गयी, जिसने उसे छः महीने बाद निकाल बाहर किया.

हवेली में तीनों का विवाह सनातन रीति से हो रहा है. तीनों लड़कियां और उनके जोड़े भी बैठे हुए हैं, जो काफी उम्रदराज हैं. लड़कियां दाहिनी ओर हैं.

विवाह आरंभ होता है.

आरंभ में हवेली की संचालिका श्रीमती उर्वशी ठाकुर अपना एक जोरदार वक्तव्य देती हैं. फिर पुरोहितजी मंत्र पढ़ते हैं. आंगन में आमंत्रित नागरिकों की भीड़ बढ़ती चली जा रही है. हवेली की लड़कियां एक कोने में जमीन पर बैठी हैं और विवाह गीत गा रही हैं.

पुरोहितजी प्रतिज्ञाओं की व्याख्या भी करते चलते हैं. दूब पवित्रता का प्रतीक है, पैसा अधिकार का, अक्षत अनश्वरता का और फूल आनंद का प्रतीक है.

और फिर विवाह-पूर्व किये गये दोषों की आहुति दिलवाते हैं. वर के द्वारा भी और वधू के द्वारा भी.

देवबाला उठकर अपनी कोठरी में चली जाती है. अपने बिस्तर पर लेटकर वह रोने लगती है.

लज्जा होम. अर्थात लावा पर छना. आमंत्रित नागरिकों में से तीन सज्जन उठकर भाई की भूमिका अदा करते हैं और लड़कियां अपने-अपने भाई से लावा लेकर आहुति के लिए अपने-अपने जोड़े को देती हैं.

फिर परिक्रमा होती है. दायित्व की परिक्रमा. और फिर सप्तपदी अर्थात भांवर. तब होता है आसन-परिवर्तन. लड़कियां वामा बनती हैं, बांयी ओर बैठती हैं. और तब होता है मंगल-तिलक—अर्थात सिंदूर भरने की प्रक्रिया.

अब तक अन्य लड़कियां भी उदास हो जाती हैं और सुबकने लगती हैं. सलमा, भानमती और अनीता रात में ही विदा हो जाती हैं. हवेली में सन्नाटा छा जाता है.

सुबह-सुबह एक नयी घटना घटती है हवेली में, ईश्वरी एक कागज लेकर दौड़ती हुई आंगन में पहुंचती है और दुलारी बहिनजी के हाथ में उसे थमा देती है. ईश्वरी के साथ रहने वाली कृष्णा के नाम यह प्रेम-पत्र कहां से आ गया?

कृष्णा को अधीक्षिका के दफ्तर में पेश किया गया.

"सच-सच बताओ यह पत्र तुम्हें कैसे मिला?"

कृष्णा गूंगी बन गयी.

"दुलारी बहिनजी, जरा वह डंडा तो ले आइये."

और कृष्णा थर-थर कांपने लगी.

"नहीं बहिनजी, अब ऐसी गलती नहीं होगी. छोड़ दीजिए बहिनजी एक बार."

"तब बता सच-सच, कैसे मिला यह पत्र तुझे?"

"बाथरूम की नाली के जरिये मिला बहिनजी."

"किसने भेजा है?"

"हवेली के पीछे एक मकान है न, उसी में वो रहता है."

"हूं. तुमको उसने जाना कैसे?"

"बाथरूम में जो झरोखा है न, उसी से उसने देखा था मुझे एक बार. तभी से वह पत्र लिखने लगा."

"हूं. यहां आने से पहले भी तुमने किसी से प्रेम किया था?"

"हां बहिनजी."

"हूं. तो यहां भी प्रेम का नाटक होगा?"

"नहीं बहिनजी."

"नहीं बहिनजी की अम्मां, तुम जैसियों को मैं खूब समझती हूं. दुलारी बहिनजी, लाइए तो डंडा."

और देखते ही देखते कृष्णा की पीठ काली पड़ गयी.

हवेली में चारों ओर खुसुर-पुसुर शुरू हो गयी.

अधीक्षिका की लिखा-पढ़ी आरंभ हो गयी. बाथरूम का झरोखा बंद कर दिया गया. लेकिन नाली को बंद करना संभव नहीं था. अतः वह ज्यों की त्यों खुली रही. पत्र आते रहे और जाते रहे.

और फिर कृष्णा गायब हो गयी.

हवेली की लड़कियां उस रोज फिल्म देखने ले जायी गयी थीं. साथ में थीं सिलाई बहिनजी और दुलारी बहिनजी. हाल से बाहर निकलीं तो कृष्णा उनके साथ नहीं थी.

हवेली में महिला पुलिस बुलायी गयी. पुलिस ने सारी की सारी लड़कियों के बयान नोट किये. अधीक्षिका का स्पष्टीकरण लिया और सिलाई बहिनजी तथा दुलारी बहिन-जी को सख्त वार्निंग दी गयी.

लड़कियां कृष्णा को धीरे-धीरे भूल गयीं.

हवेली में इस बीच एक नयी लड़की आ गयी. नयी लड़की ने अपना नाम रत्ना बताया. रत्ना बेहद खूबसूरत थी.

अधीक्षिका ने उसे विशेष सेवा के लिए नामांकित कर लिया. झुन्नीबाई निकाल दी गयी.

उस रोज झुन्नीबाई बहुत गुस्से में थी. देवबाला ने चाहा कि झुन्नीबाई को सांत्वना दे, लेकिन झुन्नीबाई ने उसे लिफ्ट नहीं दी. वह सीधे गंगाबाई की कोठरी में जा घुसी.

गंगाबाई की बिटिया जन्म से ही बीमार रहती है. हालांकि अस्पताल से मुफ्त चिकित्सा की व्यवस्था है, पर व्यवस्था का लाभ मिलना सरल नहीं. कभी-कभी किसी सोर्स से उसे कोई दवा मिल जाती है तो उसे वह छिपाकर खिलाती है बिटिया को. बाहर से कोई भी पदार्थ हवेली में आना कानूनन जुर्म है. जो चीजें आ पाती हैं उनमें अधीक्षिका की मर्जी का शामिल होना जरूरी होता है. कढ़ाई बहिनजी उसकी बिटिया के लिए कभी-कभी टाफी ला देती हैं और कभी-कभी अपने बच्चों के पुराने कपड़े भी वे ले आती हैं. गंगाबाई को आर्डर की कढ़ाई से जो पैसे मिलते हैं उन्हें वह बचाकर रखना चाहती है. यहां से किसी तरह वह मुक्त होना चाहती है. मुक्त होकर वह स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है. गंगाबाई शादी रचाने से इनकार करती है.

झुन्नीबाई बिटिया को उठा लेती है और बिटिया चुप हो जाती है. गंगाबाई अपनी धोती ठीक करती है और छातियों को दबा-दबाकर दूध का अंदाजा लगाती है. झुन्नीबाई बिटिया को उसकी गोद में डाल टांगें फैलाकर बैठ जाती है.

"कोई खास बात है क्या?"

गंगाबाई पूछती है तो झुन्नीबाई का नकबांसा टेढ़ा हो जाता है. "वो रत्नाबाई आया है न, उस रंडी ने अपने खिदमत में अब उसे रख लिया है. हमको निकाल दिया है."

"काहे निकाल दिया है?"

"रंडी है और क्या? मरद को छोड़कर यहां ऐश कर रहा है और चाहता है कि उसका टहल बजानेवाली छोकरी भी उसके ऐश में शामिल हो."

"आखिर बात क्या हुई?"

"उसके यहां जो एक मरद आता है न रात में, उसके साथ एक रोज दूसरा मरद भी आया था. रंडी ने मुझसे सोने को बोला उसके साथ और मैंने मना कर दिया. बस वह नाराज हो गया और रत्ना को देखते ही अपन का छुट्टी कर दिया."

गंगाबाई की बिटिया सो गयी थी.

दरवाजे पर रत्ना खड़ी थी.

झुन्नीबाई अधीक्षिका के चैंबर में बुलायी जाती है.

चैंबर में कोई नहीं है. अधीक्षिका के हाथ में डंडा है.

झुन्नीबाई बुत की तरह चैंबर में खड़ी है. डंडा सड़ाक-सड़ाक उसके जिस्म पर बरस रहा है. हवेली कांप रही है.

कांपती हुई हवेली में आग की लपटें लाल-लाल अजगरों की भांति सरकने लगती हैं. झुन्नीबाई की कोठरी से भुनते हुए मनुष्य की चिरांध गंध निकलती है और पूरी हवेली में फैल जाती है. लड़कियां भेड़-बकरियों की मानिंद भयाक्रांत इधर-उधर भागने लगती हैं. रात का सन्नाटा टूट जाता है.

देवबाला झुन्नीबाई की लाश के पास खड़ी रो रही है.

लड़कियां विलाप कर रही हैं.

अधीक्षिका थाने को फोन कर रही हैं.

आत्महत्या.

"जी नहीं."

देवबाला सामने आ जाती है.

"झुन्नीबाई को अधीक्षिका ने जलाया है."

"शट-अप."

और रात का सन्नाटा भांय-भांय करने लगता है.

लाश अस्पताल की गाड़ी में लदकर बाहर चली जाती है.

देवबाला रात भर नहीं सोती. वह इस कोठरी से उस कोठरी में घूमती रहती है.

सुबह पढ़ाई बहिनजी के आने से पहले ही आंगन में एक भारी भीड़ जमा हो जाती है. रत्ना को छोड़कर एक भी लड़की वहां अनुपस्थित नहीं है.

"कल्लो दाई. मुर्दाबाद."

देवबाला अधीक्षिका के नये नामकरण के साथ नारा लगाती है तो सारी लड़कियां एक आवाज में 'मुर्दाबाद' का उच्चारण करती हैं और पूरी हवेली थर्रा जाती है.

प्रभावपूर्ण लेखन

■ शरत् चंद्र

बहुत से रचनाकारों के लेखन में कभी-कभी अचानक ऐसा लगने लगता है जैसे वे किसी और के दुःख की कहानी कह रहे हों. मानो इससे उनका कोई रिश्ता ही नहीं है. आप भी ठीक उसी तरह कहते हैं—घुमा-फिराकर . . . कातरोक्ति कहीं भी नहीं है पर जीवन की न जाने कितनी बड़ी ट्रेजेडी पाठकों के दिल पर चोट करती है. आपकी रचना की यह सहज, शांत, मंजी हुई लेखन-भंगिमा ही मुझे सबसे ज्यादा मुग्ध करती है. □

(प्रमथ चौधरी को लिखे गये पत्र का अंश.)

अधीक्षिका हाथ में डंडा लिये चली आ रही हैं. लड़कियां खूंखार आंखों से उन्हें देख रही हैं.

"सब लोग अपनी-अपनी कोठरी में जाओ!" अधीक्षिका आदेश देती हैं.

"नहीं जायेंगे." लड़कियां जवाब देती हैं.

"हमारी झुन्नीबाई को जिंदा करो."

"हम यहां अब नहीं रहेंगे."

"इस हवेली को हम जला देंगे."

"हम आग लगाकर मर जायेंगे."

अधीक्षिका खड़ी हो जाती हैं.

"रत्ना जरा फोन करना तो थाने में."

"रत्ना बीबी रंडी है."

"कल्लो दाई रंडी है."

देवबाला आगे आ जाती है.

सड़ाक. अधीक्षिका का डंडा देवबाला की पिंडलियों पर पड़ता है तो वह लड़खड़ा कर गिर पड़ती है. लड़कियां आगे बढ़कर डंडा छीन लेती हैं. रत्ना आगे बढ़ना चाहती है तो गंगाबाई उसे दबोच लेती है.

"रंडी."

रत्ना उसे गाली देकर परास्त करना चाहती है, पर गंगाबाई की मुट्ठियों में उसकी लंबी-लंबी चोटियां उलझ जाती हैं और रत्ना फर्श पर बिखर जाती है.

अधीक्षिका अपने चैंबर में भाग लेती हैं और भीतर से दरवाजा बंद कर लेती हैं.

लड़कियों का हुजूम रत्ना पर टूट पड़ता है.

लेकिन देवबाला की आवाज से सब सहम जाती हैं.

"छोड़ दो उसे. आओ हम फाटक को तोड़ें. हम यहां अब नहीं रहेंगे."

देवबाला लड़कियों का आह्वान करती है और पूरा हुजूम फाटक की ओर बढ़ने लगता है. जैसे झुंड की झुंड चिड़ियां पिंजरे से उड़ने के लिए बेताब हो उठी हों.

दुलारी बहिनजी फाटक छोड़कर आंगन में आ जाती हैं. हवेली एक भयंकर कोलाहल में बदल जाती है. □

● ए 24/15, कोयला बाजार, वाराणसी (उ. प्र.)

सोने का चाकू

अखिलेश

■ जिस घर के लोग एक दूसरे को शक और नफरत की निगाह से देखने लगें. . . .जजबात स्याह होते चले जाएं और दिलो-दिमाग अपाहिज. . . .तो क्या घर अपना वजूद बनाए रख सकता है ! दुनियादारी के बीच घर-संसार की गरिमा को उजागर करती मार्मिक कहानी—

उनकी चार औलादें थीं. जाहिद, ताहिर, मुजाहिद और फाकिर. फाकिर के सिवा बाकी सभी सयाने हो गये थे. इस शहर में उन्हें नवासा मिला था, क्योंकि नाना की इकलौती औलाद का इंतकाल हो गया था. वैसे कहनेवालों की जबान पर कोई ताला नहीं लगा सकता. लोग कहते हैं कि मीर साहब ने अपने मामा को जहर दिलवा दिया था.

मीर साहब ने मामा की मल्कियत संभाली तो उनके सामने सबसे बड़ी लेकिन प्रमुख समस्या थी, रोब गालिब करने की. नतीजा यह हुआ कि बेकसूर लोगों पर. . .जुल्म बढ़ चला. उनके अत्याचार की एक खास अदा थी. वे रियाया को गुंबद में बंधवाकर पीटते थे. खैर, अब तो वह बुलंद जमाना ही चला गया. जिसका उन्हें बहुत दुःख था.

उन्होंने यहां आकर एक और काम किया, तवायफों में अपना विशेष स्थान बनाया. तवायफों के बीच उनका इतना दबदबा था कि उनकी जिद पर हीरा बाई ने चांदा (अवध प्रांत का एक कस्बा, जहां की वेश्याओं के सम्मान में प्रांत की अन्य वेश्याएं उनके सामने घुंघरू तक नहीं बांधती) में घुंघरू बांध लिया था. लौटने पर उसे बिरादरी से इतनी फटकार मिली कि वह फूट-फूटकर रोने लगी. अब मीर साहब खांसते हुये सीढ़ियां उतर गये थे.

सच्चाई यह थी कि उनसे वे सभी भयंकर घृणा करती थीं. वे महफिलों में मुफ्त बुलाते जबकि दोस्तों में हजार रुपये में बुलाने का ऐलान करते. उन सबका मन करता कि मीर साहब को कोड़ों से इतना पीटें कि उनके कपड़े तार-तार हो जायें. मगर वे मजबूर थीं, क्योंकि उन्हीं की बिल्डिंग में वे सभी सस्ते किराये पर किरायेदार थीं.

मीर साहब को शिकस्त दी मदीना ने. मदीना के बूढ़े अब्बा नन्हें मियां मस्जिद की बगल में लालटेन बनाने का काम करते थे. मदीना बहुत सुंदर थी. गेहुंवन रंग वाले चेहरे पर तैरती हुई-सी गहरी-गहरी आंखें. वह बेहद भावुक लेकिन इरादे की पक्की थी. मीर साहब ने उससे प्रेम किया. बड़े-बड़े वायदे किये. फिर जिनां किया. फिर अपनी जिंदगी से भगा दिया. मगर अगले ही दिन मदीना उनके बंगले पर पहुंच गयी. मीर साहब ने गुस्सा दिखाया तो उसने उनका मुंह नोंचकर लहू-लुहान कर दिया और घर में जबरन घुस गयी. तब से वहीं रह रही है. बीवी की मौत के बाद कुछ दिनों की जद्दो-जहद से सने मीर साहब को निकाह के लिये राजी कर लिया. इतने दिनों के साथ ने उनके मन में भी लगाव पैदा कर दिया था. वे पिघल गये. शादी करने के साथ-साथ मदीना से माफी भी मांगी. मदीना को मीर साहब के रूप में जैसे कोई पैगंबर मिल गया हो. वह जन्नत में पहुंच गयी हो. मुजाहिद और फाकिर उसी से पैदा हुए.

जाहिद भट्ठा चलाते थे. ताहिर ठेकेदारी करते थे पर असल धंधा तस्करी था. मुजाहिद जनरल स्टोर्स की दूकान देखता. फाकिर हाई स्कूल में पढ़ता था. स्कूल से लौटने के बाद दूकान पर मुजाहिद की मदद करता.

जाड़े की शाम थी. चहल-पहल को ठंडक ने सोख लिया. सड़कें खाली-खाली और वातावरण वीरान लगने लगा. मुजाहिद ने बीरू चायवाले से स्पेशल चाय बोल दिया फिर अलमारी से गिरने-गिरने को हुए साबुनों को ठीक किया.

दो-एक मिनट बीता होगा, एक ग्राहक आ गया, "स्टोव की एक पिन चाहिये."

वह उठकर पिन ले आया. शुरू में उसे ऐसे ग्राहकों से बड़ी खीझ होती थी. दस-पांच पैसे के लिए उठने की जहमत कराते थे. पर मालूम नहीं कैसे अब्बा ने इस खीझ को भांप लिया था, "देखिये हजरत, इस तरह तिजारत नहीं हो पाती, उसके लिए तहजीब और मशक्कत की जरूरत होती है. समझे! और ये जो खाली वक्त में बैठ जाते हो, ऐसे काम नहीं

चलेगा. खड़े रहा करो. तभी खरीददार आयेंगे."

उसे तिजारत का तरीका आता भी कैसे, अभी उसकी उम्र ही क्या थी! अठारह वर्ष.

अब्बा और भाइयों की लापरवाही से वह बिगड़ गया था. कोई रोकने वाला था नहीं. स्कूल से भागने लगा. सिनेमा, चाय और जुआ उसके शौक बन गये.

अब्बा को दौलत इकट्ठी करने का नशा तो था ही, उस पर इंटर में मुजाहिद का दो बार फेल हो जाना. उन्होंने उसकी पढ़ाई छुड़ा दी. कस्बाई शहर के हिसाब से बेहतरीन दूकान खुलवाकर उसे बैठा दिया और कहा, "प्राइवेट इम्तहान दिया करिये."

अब तो उसका मन कुछ लगने लगा वर्ना पहले उसे दूकानदारी काल कोठरी लगती, जिसमें वह अकेला कैद कर दिया गया हो. उसका दिल सड़कों पर घूमने और दोस्तों के बीच बतियाने को मचलता.

बीरू चाय का गिलास रख गया. इस बीच चार-छः अच्छे ग्राहक आये थे. आखिर में एस. डी. ओ. का चपरासी उनके छोटे सें बच्चे के साथ आया था. मुजाहिद ने सामान अच्छी तरह पैक किया और बच्चे को मुफ्त में टाफी देकर मुस्कराया, "पापा से मेरा सलाम बोलना."

अब वह दुबारा खाली हो गया. चाय की चुस्कियां लेते हुये सड़क पर बैठे रफीक मियां को देखने लगा. वे खंभे की टेक लेकर बांसुरी बजा रहे थे.

रफीक मियां बांसुरी बेचते थे. वे मैले-फटे कपड़े पहने अधपके बाल-दाढ़ीवाले अधेड़ आदमी थे. बांसुरी बजाकर ग्राहकों को मुतअसर करते थे. बजाने में उनका आस-पास तक में कोई जवाब न था. वे बजाते तो कभी-कभी राह चलते पारखी लोग थमकर घंटों खड़े रहते.

रफीक मियां के बारे में वह अक्सर सोचता कि वे खाते-पीते कैसे हैं? पूरे दिन में मुश्किल से चार-पांच बांसुरियां बिकती होंगी. कभी-कभी वे भी नहीं. . .

उसका दिमाग वहां से हट गया. एक डिग्री कॉलिज के प्रिंसिपल साहब आये थे. वे कॉलिज में खेल-कूद का जिम्मा भी अपने पर लिये थे. वे अब्बा के दोस्त थे और प्राय: बिना खेल-कूद का सामान लिये खूब सारे सामानों का बिल बनवाते. उसने आठ सौ तैंतीस रुपये बयालीस पैसे का बिल बना दिया.

शाम रात में तब्दील होने वाली थी. मस्जिद से इशा की नमाज सुनायी दे रही थी. थोड़ी देर बाद अब्बा भी घूमते-टहलते आते होंगे.

वह चुस्त होकर काम करने लगा. वह इस कोशिश में भी था कि चेहरे पर रौनक और खुलापन आ जाये.

अब्बा को लेकर उसे बहुत शिकायत थी. वे उससे, दूसरे भाई लोगों से यहां तक कि अम्मी से भी मुहब्बत से बात नहीं करते. एक दफा उसने अम्मी से इसकी वजह पूछी थी. उन्होंने उदास होकर कहा था, "तुम्हारे अब्बा खुदा के नुमाइंदे हैं. उन्हें फुर्सत कहां है? उनकी दीन तो नमाज, कुरान पढ़ना और काफिरों के खातिरे-खातिर दौलत इकट्ठी करना है."

उसका जी घबड़ाने लगा. फाकिर अभी तक नहीं आया. अब्बा की ओर से हिदायत थी कि फाकिर स्कूल से लौटकर दूकान पर बैठा करे. पर फाकिर जी चुराता था. मुजाहिद ने अपनी तकलीफ को सोचकर उसे छूट दे रखी थी कि वह घूमे-फिरे मगर अब्बा के आने के टाइम पर पहुंच जाये. अब्बा के आने का समय. . .

फाकिर आता दिखा. उस को चैन मिला. वह गुनगुनाने लगा. तभी उसका ध्यान रफीक मियां पर चला गया, जो ठिठुरा देने वाली ठंडक में खुले आसमान के नीचे पड़े थे. उसने सोचा, उन्हें भी चाय पिला दे मगर ऐसा कर न सका, क्योंकि पहले वह रफीक मियां को चाय पिला देता था. पर एक दिन अब्बा को मालूम हुआ तो डांटा, "उन्हें मुंह नहीं लगाना चाहिए. जिसके ऊपर खुदा रहम नहीं करता उस पर रहम करना खुदा से खिलाफत करना है."

उसके मन में आया कि उनसे पूछे, फिर क्यों खैरात बांटने के लिये जलसा करते हो. भीख देने के लिए डिब्बा भर दो-दो पैसे के सिक्के दूकान में रखने को कहते हो.

उसने रफीक मियां को उनकी हालत पर छोड़ दिया. अपने और फाकिर के लिए चाय मंगायी. दोनों चाय पीने लगे.

सुबह का निकला मुजाहिद रात को दूकान बढ़ाकर घर पहुंचा. अब्बा मौजूद थे. तकिये के सहारे अधलेटे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे. उसने पूरे दिन की बिक्री की रकम सामने रख दी. उन्होंने चश्मे के भीतर से आंखें उठाकर रुपयों को देखा. थोड़ी देर बाद उठकर आलमारी में रखा फिर लौटकर पैर पटक चारपाई पर बैठ गये और हुक्का गुड़गुड़ाने लगे. मुजाहिद के लिए

अधूरा छोड़ने से बेहतर है फाड़ना

▣ टी. एस. इलियट

मेरे पास कोई कविता अधूरी लिखी हुई नहीं है. सिद्धांततः मेरे तईं किसी भी रचना के अधूरे रह जाने से बेहतर है उसे फाड़ दिया जाना. अगर उसमें कुछ अच्छी बात है तो उसका प्रयोग किसी अन्य रचना में करना अच्छा है पर उसे किसी कागज पर लिखकर दराज में रखने के बजाय उसे दिमाग के किसी पिछले कोने में रखना मैं बेहतर समझता हूं. यदि वह दराज में पड़ी रहती है तो वह रूपातंरित होकर कुछ और भी बन सकती है. □

नौकर नाश्ता रख गया. वह अब्बा की मौजूदगी झेलते हुए नाश्ता करने लगा. उसे भूख लग आयी थी.

मीर साहब ने फटकारा, "आहिस्ता-आहिस्ता खाइये. भागा नहीं जा रहा है. बद्तमीज कहीं के." वे ऐनक पोंछकर अखबार पढ़ने लगे.

भीतर से कुकर की सीटी की आवाज आ रही थी.

वह भीतर जाने लगा तो अब्बा ने चश्मे के अंदर से घूर कर उसे टोक दिया, "इंटीमेट के लिये कितने का आर्डर दिया गया?"

"डेढ़ हजार का."

"और आज मुझे कितना रुपया दिया आपने?"

उसने मन ही मन कहा, "गिना तो था आपने," लेकिन बोला, "चौबीस सौ ग्यारह."

अब्बा ने चश्मा उतार कर उसे घूरा. फिर 'हुम' कहकर धीरे से चश्मा पहना और अखबार सामने कर लिया.

अंदर आकर उसने हाथ-पैर वगैरह धोये. तौलिये से मुंह पोंछते हुये अम्मी के कमरे में आया और उनकी चारपाई के पायताने बैठ गया.

अम्मी ने उसे प्यार से झिड़का कि वह आराम से क्यों नहीं बैठता. वे उदास दिख रही थीं. उनकी गऊ-सी आंखें फूली थीं. आंखों के नीचे चमड़ी खुश्क हो गयी थी.

हर दिन की तरह आज भी घर में एक मनहूसियत-सी छाई हुई थी. अजीब लगता था, जैसे कोई बिना आवाज के सिसक रहा हो.

उसने अम्मी को पान थमा दिया. वह उनके लिये रोज बाजार से लजीज पान लगवाकर लाता था. अम्मी पान की गिलोरी मुंह में डालकर कहीं खो गयी. उनकी आंखें कमरे की छत पर टिकी थीं.

इस बीच बड़ी भाभी दो बार कमरे में झांक चुकी थीं. मुजाहिद को यह चीज बहुत चुभती थी. इस मकान को जाने किसकी बद्दुआ लगी थी. किसी को चैन नहीं था. सब एक-दूसरे को शक और नफरत की निगाहों से देखते थे. दीवारें पुतती थीं. दरवाजे मजबूत किये जाते थे. पर जज्बात स्याह हो रहे थे. दिल और दिमाग अपाहिज हो रहे थे.

अम्मी ने भांप लिया कि दुल्हन का इस तरह झांकना उसे नागवार लगा. उन्होंने समझाया, "बेटे, इसमें इसकी गलती नहीं है. दरअसल इस घर की बुनियाद ही ऐसी है जिस पर शक, नफरत, बेचैनी, बदनीयति का ही फूल खिल सकता है." वह थोड़ी देर चुप रही फिर सांस छोड़ती हुई बोली, "हां उस पर कभी खूबसूरत फूल नहीं खिल सकता. कभी नहीं."

माहौल काफी गंभीर हो गया. उसे लगा, अम्मी की तसल्ली के लिए कुछ कहना चाहिए. मगर उसे एक भी हरफ नहीं सूझ रहा था. वह असफलता को छिपाने के लिए चादर का कोना मरोड़ने लगा.

उन दोनों के सिर पर मच्छरों का एक जत्था आकर मंडराने लगा. कुकर ने सीटी बजायी. छोटी भाभी ने वहीं से बताया कि खाना पक गया है. वह अब्बा को इत्तिला देने के लिए उठा. अम्मी ने कहा, "अभी लौटकर जरा सुनना बेटे."

वह लौटकर आया और सवालिया नजरों से अम्मी को ताकने लगा. वे कुछ देर खामोश रहीं, फिर फुसफुसाकर बोलीं, "जरा बाहर देख, कोई खड़ा तो नहीं है." उसने बाहर झांककर बताया, "नहीं." वे पास खिसक आयीं, "मुजाहिद कल अपने नाना को दूकान से कुछ रुपये दे आना. हैं! और देखो, अब्बा से बचाकर जाना. वर्ना तेरे नाना और हम दोनों में से कोई जिंदा न बचेगा." वाक्य पूरा करते-करते उनके चेहरे पर खौफ की पर्त जम गयी.

बाहर से नौकर ने आकर मुजाहिद से कहा, "साहेब तुमको बुलाय रहे हैं."

वह पहुंचा तो अब्बा हीटर से हाथ-पांव सेंक रहे थे. "कल की मजलिस की याद है?"

"जी."

"जाइये," वे पुन: एकाग्र होकर हीटर तापने लगे.

वह खा-पीकर सोने चला तो करीब बारह बजने वाले थे. पांच कमरे एक कतार में बने थे. पहला बड़ी भाभी का. दूसरा अम्मी का. तीसरा छोटी भाभी का. चौथा मुजाहिद का और पांचवां फाकिर का.

वह चारपाई पर लेटा तब उसे दिन भर की थकान का अहसास हुआ. गोया उसकी नसें अब तक सो रहीं थीं.

अम्मी, फाकिर, बड़ी भाभी के कमरों की बत्ती बुझी थी. उसने भी बुझा दी. लेटने को हुआ कि छोटी भाभी का रोना और चीखना सुनायी पड़ा. ताहिर भाई हर दिन की तरह आज भी शराब के नशे में धुत्त आये थे. भाभी को लात-घूंसे भयानक रूप से पड़ रहे थे. वे जितनी तेज आवाज में रोतीं, ताहिर भाई की गालियां उतनी ही तेज हो जातीं. नशे के सरूर में वे तस्करी की गोपनीय बातें भी बक देते थे.

वह इस सबसे अन्यमनस्क सोने की कोशिश करने लगा.

भाभी का रुदन धीरे-धीरे सिसकियों में बदल गया और उसकी भी पलकें भारी होती गयीं.

वह एक-डेढ़ घंटे ही सो सका होगा कि कालबेल की

घनघनाहट ने नींद तोड़ दी. उसने खिड़की से देखा, बड़ी भाभी चप्पल घिसटाती हुई दरवाजा खोलने जा रही थीं.

छोटी भाभी के कमरे से अभी भी सिसकियां सुनायी पड़ रही थीं.

सुबह फजर की नमाज ने मुजाहिद की आंखें खोल दीं. रजाई से बाहर निकलने को मन न हो रहा था पर भीतर रहना मुमकिन न था. वह बाहर निकला. अम्मी के कमरे में अब्बा आदमकद शीशे के सामने स्टूल पर बैठकर दाढ़ी में चमचमाहट और मुलायमियत लाने के लिए कोई क्रीम लगा रहे थे. वह कुछ आलस, कुछ मौज में आकर ठहर गया. उन्होंने तेल की शीशी खोली. उसके नथुनों में तेज खुशबू समा गयी. तेल लगाने के बाद वे दाढ़ी व सिर के बालों में कंघी करने लगे. बाद में कंघा उल्टाकर के कई बार बालों को दबाया. कपड़े पहनकर अपने ऊपर सेंट छिड़का. फिर सिर पर टोपी और पैरों में चप्पल डाल खड़े होकर आइने में खुद को निहारने लगे. देर होने लगी तो मुजाहिद आगे बढ़ गया.

दिशा-मैदान से फारिग होकर वह बाहर लान में आया और एक किनारे कुर्सी डालकर धूप खाने लगा. पास ही माली कैंची से घास को बराबर कर रहा था.

दूर पर दीवार से सटाकर कुछ बेंचें रखी थीं जिन पर खस्ताहाल लोग बैठे थे. मुजाहिद से थोड़े फासले पर अब्बा दो लोगों के साथ धूप खा रहे थे. नाश्ता कर रहे थे और बतिया रहे थे. वह दोनों को पहचानता था. एक एम. पी. रामजियावन पांडे थे. धोती-कुर्ता-सदरी पहने थे. सदरी की जेबें पेनों से ठसीं थीं और उंगलियां अंगूठियों से. कभी अब्बा उनके सामने झुककर घिघियाने लगते और कभी वह अब्बा के सामने झुककर दांत चियारता. दूसरा आदमी सेल्सटैक्स अफसर था.

नौकर चाय, नाश्ता और तिपाई एक साथ ले आया. मुजाहिद नाश्ता करने लगा. अंडे का हलुवा और शाही टुकड़ा पसंद आ रहा था.

पांडेजी अब्बा को सुना-सुनाकर अफसर को लताड़ रहे थे. अफसर की घिघ्घी बंध गयी थी. अब्बा अकड़कर आंखें स्थिर किये हुए निर्विकार भाव से दाढ़ी पर हाथ फेरे जा रहे थे.

अंडे का हलुवा और शाही टुकड़ा समाप्त करने के बाद वह आमलेट पर जुट गया. साथ ही चाय भी सुड़क रहा था.

कुछ बकरियां लान में घुसने लगी थीं. अब्बा के चहेते कुत्ते टोनी ने भूंक-भूंककर भगा दिया.

उसने खस्ताहाल लोगों को देखा तो उसे अब्बा का दबदबा याद आने लगा. उसने घड़ी देखी, पौने नौ बज रहे थे. वह उठ खड़ा हुआ. दूकान की चाभी लेने भीतर चला गया.

लौटने लगा तो अम्मी ने फुसफुसाकर कहा, "वो नाना वाली बात याद रखना."

इतवार बंदी का दिन होता. मुजाहिद लखनऊ सामान लाने उसी दिन जाता. वहां माल खरीदकर बुक करा देता. पिछली बार का माल आया था. उन्हीं सामानों पर दाम

सफलता का कारण

▣ सुखबीर

किसी ने सॉमरसेट माम का इंटरव्यू लेते हुए पूछा, "आपकी सफलता का सबसे बड़ा कारण क्या है?"

माम ने बड़े सहज भाव से कहा, "मेरा हकलाना. इसने मेरे जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है. अगर मुझे हकलाने की आदत न होती, तो मैं संभवतः अपने भाइयों की तरह कैंब्रेज में शिक्षा पाने के लिए जाता, और पढ़-लिखकर विद्वान बन जाता, और कभी-कभार फ्रांसीसी साहित्य के बारे में कोई नीरस-सी अलोचनात्मक पुस्तक लिख देता." □

चढ़ा रहा था. जब उसने पहली बार यह काम किया तो आंखें फैल गयीं थीं, इतना मुनाफा. फिर अब्बा का व्यापार का तरीका ही दूसरा था. वेदाम ज्यादा रखवाते और यह मशहूर कर रखा था कि सारे शहर के दूकानदार नकली माल बेचते हैं. उनके यहां पैसा जरूर ज्यादा लगता है, मगर सामान सही मिलता है. जबकि मुजाहिद भी सामान और लोगों की तरह नकली ही लाता था.

दाम लिखते-लिखते उसकी उंगलियां दर्द करने लगीं. ...महीने का आखिरी हफ्ता था. 'मद्दी' का समय. 'चटकी' तो पहले हफ्ते में या लगन में. लगन शुरू होने वाली थी. इसलिए उसे तकरीबन हर इतवार को लखनऊ सामान लाने जाना पड़ रहा था. अब्बा की सख्त हिदायत थी कि जितना सामान जमा कर सको कर लो. लगन में मनमाना बिकेगा.

वह उंगलियां चटकाने लगा. कुछ मन भी उचाट हो गया. आजकल वह अक्सर घबड़ा उठता था. बात यह थी कि गांव में जायदाद खतरे में थी. वहां दो-ढाई सौ बीघे खेत थे. सब ठीक चल रहा था मगर मजदूर इन दिनों बागी हो गये थे. उसी में कुछ झगड़ा-फसाद भी एकाध बार हो गया था.

यों भी अब्बा करीब दो दर्जन मुकद्दमे लड़ रहे थे. वे रोज ही कचहरी पहुंचते रहते. घर में भी फाइलों से मगज-पच्ची करते रहते. मुकद्दमेबाजी के कारण कई बार फौजदारी भी हुई. उसका भी मुकद्दमा बना.

वह अटैची पर दाम चढ़ा ही रहा था कि रफीक मियां भी अपना अटखर-बटखर लेकर पहुंचे और सड़क की पटरी पर जम गये. लगे बांसुरी बजाने.

वह चिढ़ गया. उसे रफीक मियां से नफरत-सी होने लगी. इस बात को वह समझ नहीं पाता कि क्यों उसे नफरत हो रही है.

तभी रफीक मियां उसकी घृणा से बेखबर एक आदमी लेकर उसके पास आये और बोले, "अरे शाहजादे, इसका भी

▣ अखिलेश
जन्म : सन 1960.
पहली कहानी : आदमी नहीं टूटता.
संप्रति : शोधकार्य

काम करा दो." वह छोटे कद का काला-काला मरियल-सा आदमी था. उसकी तीन बीघे जमीन पर अब्बा ने अपना दावा ठोक दिया था. मुकद्दमा चल रहा था.

रफीक मियां को लगा, मुजाहिद ने उनकी बात सुनी नहीं, उन्होंने दुबारा सिफारिश की.

वह अब्बा के मामलों में अपनी औकात जानता था फिर भी उसने रफीक मियां पर रौब झाड़ लेना बुरा नहीं समझा, "चल हट यहां से. अभी 'गल्ला' भी न खुला और आ गया मनहूस चेहरा लेकर." वह भुनभुनाने लगा, "एक से एक फटीचर चले आते हैं साले."

रफीक मियां बड़ी उम्मीद लेकर पैरवी करने आये थे किंतु दोस्त के सामने ही बेइज्जती ने उन्हें हिलाकर रख दिया. वे बदहवास से कुछ डरे दिल से अपनी 'दूकान' की तरफ बढ़ गये.

उसने दाम चढ़ाना खत्म किया. अगरबत्तियां सुलगायीं और तीन-चार शीशों में मढ़ी कुरान की आयतों में खोंस दीं. बीरू चाय वाले को स्पेशल का आर्डर दिया और ग्राहकों में रम गया. ग्राहक आने शुरू हो गये थे.

वह तेज-तेज घर की ओर चलने लगा. घर पर आज मजलिस थी. यह साधारण मजलिस न थी. इसकी अहमियत थी. तकरीर करने के लिए जोगीपुरा से इमाम आये थे. और यहां शहर के सभी नामो-गिरामी लोग इकट्ठा होने वाले थे.

घर अभी दो फर्लांग था. अंधेरा शुरू हो गया. एक अजीब बात थी कि उसके शानदार मकान के इर्द-गिर्द टूटे-फूटे खपरैल या झोंपड़े थे. जैसे बरगद के विशाल दरख्त के नीचे कोई पौधा नहीं पनपता. जहां उसका मकान चमचमाता रहता था वहीं आस-पास के घर कोढ़ी जैसे लगते थे.

वह पत्थरों पर पैर रखकर चलने लगा. नालियों का पानी बहकर रास्ते में आ जाता था. अब्बा ने इस जहमत से बचने के लिए थोड़ी-थोड़ी दूरी पर चौड़े-चौड़े पत्थर रखवा दिये थे.

मकान को देखकर उसकी तबियत खुश हो गयी. छत से लेकर फर्श तक सभी दीवारों को लाल-पीली-नीली झालरों से सजाया गया था. इमामबाड़ा खोल दिया गया था. भीनी-भीनी महक आ रही थी. अंदर सेहरा पहने पंजों से खूबसूरती में चार चांद लग गये थे. मिंबर ऐसा था कि देखने वाले की नजरें अनायास उस पर पड़ जातीं. वह अंदर जाने वाला था कि नाना की दूकान के बगलवाली मस्जिद के मौलवी साहब लपककर आये. वे जुबान में शहद घोलकर बोले, "जरा अपनी बड़ी भाभी को मेरे आने की खबर कर देना." कहने के बाद उनके हाथों में पड़ी पुड़िया कस उठी. वह घुट कर रह गया. वह जानता था कि बड़ी भाभी ने यह पुड़िया क्यों मंगायी. उनका कोई माशूक होगा जो उनके मुरझाये चेहरे से मुतअसर न होता होगा. उसी को फुंकाकर वश में करने के लिए उन्होंने मौलवी साहब से नजर की हुई चीनी मंगायी होगी.

मुजाहिद उफन रहा था. कुछ तो दूकानदारी तेज न होने की कचोट थी और कुछ अम्मी की तकलीफ का दुःख. अम्मी नामालूम क्यों हमेशा बुझी-बुझी रहतीं. उनमें जैसे दर्द का कोई समंदर उमड़ता रहता हो. वे बाज वक्त आंखों पर बांहें डाले घंटों पड़ी रहतीं.

रफीक मियां बांसुरी बजाने में तल्लीन थे. आंखें झपकाते हुए बजाये चले जा रहे थे. उनके आस-पास काफी मजमा इकट्ठा हो गया था.

मजमे को देख-देख वह और उफनता. हालांकि वह भली-भांति जानता था कि इनमें से एक भी बांसुरी खरीदेगा नहीं. फिर भी उसे रफीक मियां से डाह हो रही थी.

रफीक मियां का लड़का खाना लेकर आया. उन्होंने बांसुरी बजाना बंद कर दिया. लोग छंटने लगे. रफीक मियां ने हाथ-मुंह धोया. फिर खंभे की ओट करके खाना खाने लगे. वे धीरे-धीरे खा रहे थे. लड़का प्याज छीले जा रहा था...

मुजाहिद ने राहत की सांस ली. जैसे दुश्मन ने कनपटी से पिस्तौल हटा ली हो. उसने फाकिर से कहा कि वह घूमना चाहे तो घूम आये. फाकिर खुश होकर बाहर निकल गया. वह उसे ओझल होने तक देखता रहा.

लड़का प्याज धोकर देने लगा तो मुस्कराते हुए जाने क्या भुनभुनाया कि रफीक मियां 'हरामी अब बता रहा है' चिल्लाते हुए फुर्ती से उठे. हड़बड़ाहट में खाने की थाली उनके पैरों से लगी. जोरों की झनझनाहट हुई, भात और बैंगन का चोखा छितरा गया. वे बेहोश से भागे-भागे मुजाहिद के पास आये. उनका चेहरा फक और होंठ सफेद पड़ गये थे. वे खौफजदा थे. उन्होंने पल भर में सब कह डाला. यह भी बताया कि उसके अब्बा को मार डालने के बाद वे लोग अब उसके पास आ रहे हैं.

उसने बिजली-सी रफ्तार से सामान भीतर कर डाला. एक तौलिया लेने के बाद लपककर शटर गिराया और ताले

बंद किये. तौलिया से आनन-फानन में सिर, मुंह लपेटा. कोट का कालर खड़ा किया. लुकते-छिपते गलियां पार करने लगा.

मारने वालों ने तो अपनी तरफ से मार ही डाला था लेकिन वे बच गये थे. बाहर लान में ही वे चारपाई पर लिटाये गये थे. पहली बार घर की जनाना लोगों ने पर्दा तोड़ा था.

ऐसा लगता था कि लोगों ने पहले लात-घूंसों और जूतों से मारा था फिर चाकू से वार किया था. पांच बार चाकू से वार किया गया था. खून से भीगे हुए थे मीर साहब. बीच-बीच में हिला देने वाली आवाज में चिल्ला उठते थे.

वे गांव गये थे. वहीं अपने खेत में काम करने वाले मजदूरों को किसी बात पर पीटना शुरू कर दिया था. मजदूरों ने भी रोष में कुछ गाली-गलौज किया. इसी बात पर उनका गुस्सा बेकाबू हो गया. उन्होंने एक बूढ़े मजदूर के पेट में अपनी चमकती गुप्ती भोंक दी. बस यहीं से कयामत शुरू हो गयी. शायद मीर साहब को यह इलहाम न था कि मजदूर इस कदर हमलावर हो गये होंगे.

पके बाल वाले डाक्टर ने अन्य दो डाक्टरों से मशविरा कर के कोई दवा मीर साहब को पिलायी. उनका कराहना धीमा होने लगा.

शहर की हस्तियों का आना-जाना शुरू हो गया था. क्या शिया, क्या सुन्नी और क्या हिंदू—सभी इज्जतदार और ओहदेदार लोग भागते चले आ रहे थे. लम्हा भर में कारों, स्कूटरों की लंबी कतार लग गयी.

मीर साहब ने धीरे से गरदन हिलायी. उन्होंने इशारा किया, जनाना लोग भीतर चली जायें.

लान खचाखच भरा था. हरी-हरी घास बड़ी बेरहमी से कुचली जा रही थी. लोग अलग-अलग टुकड़ों में बंट गये थे. धीरे-धीरे बातचीत भी शुरू होने लगी थी. मीर साहब के लड़कों में भयावह बेचैनी घुमड़ रही थी.

मीर साहब जोर से चिंघाड़े फिर दर्द से छटपटाने लगे. उनकी आंखों में मौत की दहशत और तकलीफ का बियावान दिख रहा था.

डाक्टरों ने मीर साहब का दुबारा मुआइना किया. वे हताश दिखाई पड़े. हिचकते हुए उन्होंने लड़कों से कहा, "इन्हें लखनऊ ले जाना पड़ेगा."

जाहिद के मुंह से बेसाख्ता निकला, "पर पुलिस की कारवायी तो अभी. . ."

एम. पी. राम जियावन बीच में ही तपाक से बोले, "वो मैं देख लूंगा."

फाकिर अभी छोटा था. उसका अब्बा को ले जाने का सवाल नहीं उठता था. बाकी तीनों भाई मुंह चुराने लगे सभी के मन में था, जाना खतरे से खाली नहीं. अब्बा रास्ते में ही मर जायें और इधर घर में कीमती सामान दूसरे भाई, अम्मी लोग हड़प लें. मुजाहिद के मन में एक बार आया कि वही अब्बा को लेकर लखनऊ चले. वह उनकी औलाद है. मगर हकीकत ने उसके इस इरादे को मंसूख कर दिया. उसने दूसरे भाइयों के बारे में सोचा तो पाया कि उसका अब्बा के साथ जाना ठीक नहीं. उसने मन ही मन कहा, 'इन लोगों की कम-अज-कम बीवी लोग यहां रहेंगी. मेरे लिए कौन होगा?'

उसने दृढ़ता के साथ तय किया, वह नहीं जायेगा. किसी भी सूरत में नहीं जायेगा.

यह निश्चय करने के बाद वह बचने के लिए अंदर चला गया.

भीतर आंगन में बैठी हुई अम्मी एकटक आसमान ताक रही थीं. दोनों भाभी किसी चीज के इंतजार में मुस्तैदी से व्यग्र थीं. □

● 663, दारागंज, इलाहाबाद. उ. प्र.

कविताएं केवल पत्नी के लिए

▣ सुखबीर

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि, रोसेटी की शादी हुए अभी दो ही साल हुए थे कि उसकी पत्नी का देहांत हो गया. पत्नी को वह इतना ज्यादा चाहता था कि उसके प्यार में उसने बहुत-सी कविताएं अलग से एक कापी में लिखकर रखी हुई थीं.

पत्नी को जब ताबूत में लिटाया गया, तो रोसेटी ने वह कापी उसके चेहरे के पास रख दी, ताकि वह हमेशा उसी के साथ रहे.

कुछ अर्सा बीतने पर जब दोस्तों ने रोसेटी को वे कविताएं पुस्तक रूप में छपवाने की सलाह दी, तो उसने कहा, "उनकी न तो कोई मेरे पास नकल है न ही मुझे जबानी याद हैं."

तो फिर वह कापी कब्र से क्यों न निकाल ली जाये. एक दोस्त ने राय दी.

"नहीं, ऐसी बात तो मैं सोच भी नहीं सकता!" रोसेटी ने कहा.

इस घटना को सात साल बीत चुके थे. आखिर एक बार फिर दोस्तों के आग्रह करने पर रोसेटी कब्र में से कापी निकालने के लिए मान गया.

कापी निकाली जाने पर उसके सीलन भरे पन्नों को बड़ी सावधानी से सुखाया गया. तब वह रोसेटी को दी गयी, जो उस समय एक दोस्त के यहां गम में डूबा बैठा था. रोसेटी ने कविताएं नकल करने के बाद वह कापी नष्ट कर दी.

वे कविताएं जब पुस्तक रूप में छपीं, तो रोसेटी एका एक प्रसिद्धि के शिखर पर पहुंच गया. □

▣ सांत्वना पुरस्कार
विजेता कहानी : आठ

चंद्रकांता

देहलीज पर न्याय

गांव-घर के लोग, महंत, थाने की पुलिस और उस भले मानुस मुंहबोले चाचा के बावजूद उस औरत की इज्जत और उसके बच्चे की जान खतरे में क्यों हैं? सामाजिक कारणों की खुर्दबीनी जांच करती कहानी...

धूप बहुत तेज थी. सीधी, नुकीली बर्छियों-सी कपाल के ऊपर गिरती. लगता था अभी यह साबुत सिर कई हिस्सों में बंटकर टुकड़ा-टुकड़ा हो जायेगा. रुक्की ने माथे पर हथेली की ओट दे मिचमिचाती आंखों से दूर तक नजर डाली. क्षितिज तक फैला रेतीला मैदान. बीच-बीच में रेत के ढूह और इक्का-दुक्का करील बबूल के ठिगने झाड़ जिनके पत्ते बकरियां चर गयी थीं और टहनियों के कंटीले ठूंठ बाकी रह गये थे. वहां तक हांफती-गिरती रुक्की पहुंच भी जाये तो भी कोई फायदा नहीं. झाड़ न उसे छांह दे सकता था और न सुरक्षा.

छाती से चिपकी गठरी का मुंह उसने थोड़ा-सा खोलकर देखा. बच्चा पसीने से सराबोर बेहद गर्मी और प्यास के मारे अधमरा-सा सुन्न पड़ा था. लिजलिजे मांसपिंड की बेरक्त गठरी, ज्यों किसी ने नन्हें जिस्म से सांस खींच ली हो. रुक्की ने घबराकर ओढ़नी के पल्लू से बच्चे को हवा दी. नहीं, बच्चा जिंदा था. उसकी बारीक-बारीक सांसें उठ-गिर रही थीं. उसके डूबते जी में आस जगी. बच्चे के आंख खोलते ही उसने अपनी छातियां उसके मुंह में दीं. बच्चे ने एक बार अभ्यासवश स्तनों पर मुंह मारा, पर तुरंत ही बिदककर एक झटके से हटा दिया. रुक्की ने सोचा दूध की धार उसके जंफर को भिगो रही होगी, लेकिन ऐसा कुछ भी न था. तीन दिन की भूख-प्यास ने उसकी रगों को खुश्क कर दिया था. दूसरी बार कोशिश करने पर भी बच्चा दूध खींच न सका और ऊब और प्यास के मारे इयां-यां करके चीखने लगा. चीख से घबराकर दायें-बायें देखती वह बच्चे को बांहों में झुलाने लगी. बच्चा थोड़ा चुप हुआ पर इस बार उसकी अपनी चीख निकल गयी. धरती पर रेंगते जाने किस जीव ने उसके पैर में जोर का डंक मारा था. घबराहट और दर्द से रुआंसी उसने ओढ़नी का किनारा फाड़ टखनों के पास कसकर बांध दिया. क्या जाने कौन जहरीला कीड़ा था. आसपास रेंगता कुछ नजर तो न आया. पीड़ा से उसकी आंखों में आंसू आ गये लेकिन दूर-दूर तक रेत के लहरिये सागर के सिवा कोई उसके आंसू देखनेवाला नहीं था. हवा भी ज्यों दम साधे, चोरनी-सी कहीं छिपी बैठी थी.

कहने को तीन खास दिन, पर लगता था महीनों हो गये उसे भागते हुए, भेड़ियों, भालुओं और मैला खाते सुअरों से बचते हुए. आदमी की शक्ल में आदमखोर हैवानों से उसका पाला पड़ा था. घर-द्वार की सुरक्षा छोड़कर जो नंगे आसमान के नीचे आ गयी थी. यह सब हुआ था उस पापी महंत के कारण. उसकी भी तो मत मारी गयी थी. कैसे भागी-भागी गयी थी छोरे को लेकर महंत की असीस लेने, सत्यानाशी महंत ने कैसे सख्त आवाज में उसे सरापा था. सरापा ही तो, आशीष थोड़े दी. बच्चे को घूरते हुए ठस-बेलोस आवाज में रुक्की से कहा था, "देवी मां को तेरे इस छोरे की जरूरत है." उसकी ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी थी. महंत उसके सिर-कंधों पर हाथ फेरता उसे वरदान-सा देता बोला था, "इसकी बलि देगी तो दस गबरू जनेगी. अभी तो तू जवान है." देवी मां उसके सपने में आयी थी, ऐसा ही कुछ उसने आगे कहा था. लेकिन रुक्की ने आगे की बात नहीं सुनी. उसकी आत्मा तक कांप उठी.

काकी मां का आग्रह था, "पूरे पांच साल बाद कोख हरी हुई है राधे की बहू. छोरे को महंत के पास ले जा. माथे पर हाथ फेर देगा." घर आकर वह चुप्प गूंगी हो गयी थी. पर गांव भर में दबी-दबी आवाजें उभरने लगी थीं. महंत की बात. रुक्की के छोरे को देवी की बलि चढ़ायेंगे. राधे बैलों को सानी खिलाते पत्थर हो गया था. महीना भर के छोरे की बलि? क्यों भला? नहीं, उसे नहीं चाहिये दस-दस गबरू. उसका एक ही छोरा भतेरा. रुक्की के पेट में चीरा लगाकर छोरा जन्मा है. डाक्टरनी कह गयी थी दूसरा बच्चा नहीं होगा. उसने महंतजी के पास जाकर डाक्टरनी की बात कही भी. महंत की आंखें सुर्ख अंगार हो गयी थीं. यह उसकी सत्ता को चुनौती थी. वह दांत पीसकर बोला था, "डाक्टरनी देवी से ज्यादा जानती है? बच्चे की उम्र एक माह एक दिन लिखी गयी है धर्मराज के बहीखाते में. इसे पत्थर की लकीर समझो. इस छोरे की बलि देगी तो दस बेटे जनेगी, सात पुरखे तरेंगे, नहीं तो यह छोरा जनकर भी उम्र भर बांझ की बांझ रहेगी."

धन्नो, लक्ष्मी, बघुआ, हरि काका आगत की आशंका सूंघ उस गुस्से की लपट में भस्म होते-होते रह गये थे. ऐसा आतंक था महंत का गांव में. राधे समझाते, पांव पकड़ते हार गया. लेकिन महंत का दिल न पसीजा, गांव के बड़े-बूढ़े भी प्रकारांतर से महंत की बात का समर्थन करने लगे थे.

महंत की बात कभी झूठी निकली? अनारो की ब्याह के दस साल बाद कोख हरी नहीं हुई? महंत का प्रताप नहीं था वह? कुल आठ दिन ही तो जाप करवाया था उससे? सूरज उगने से पहले? बिल्लो की नानी मरी नहीं थी देवी का अमृत पीने से? पापिन जो थी जन्म-जन्म की. महंतजी ने क्या झूठ कहा था? रुक्की किसी को न समझा सकी. राधे जान गया कि महंत अपनी जिद पूरी करवा के रहेगा. कितने तो गुंडे-बदमाश पाल रखे हैं! देवी के नाम पर उसका बच्चा बलि चढ़ेगा और वह अपनी आंखों से यह अत्याचार देख न पायेगा. राधे उसी दिन गांव छोड़कर भाग गया.

रुक्की अकेली पड़ गयी. लेकिन रुक्की जबर औरत है. उसने जिद पकड़ ली. वह इस नन्हीं जान को जिंदगी देगी. वह न्याय के दरवाजे खटखटायेगी. रुक्की कमजोर नहीं पड़ेगी. वह इस महंत के बच्चे से निबट लेगी. सारा कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देगी पुलिस-दरोगा के सामने.

कांपते हुए घुटनों पर हाथ का भार डाल रुक्की ने उठने की कोशिश की. आसपास कहीं कोई कूल-किनारा नहीं. धरती अकड़े हुए चमड़े-सी सख्त और बेदर्द. आंखों के कोये बेअंत जलन से लहकते से. गले का थूक भी सूख गया था. ताल अनावृष्टि के शिकार किसी तालाब के सूखे दरार के तल की तरह फूटने को आ रहा था.

नहीं, इस तरह धूप में बैठकर झुलसने से नहीं चलेगा. शरीर में आखिरी सांस रहते उसे चलना होगा. रीढ़ की हड्डी तक सनसनाती, पैर की पीर को झटक वह सीत्कार दबाती उठ खड़ी हुई. एक पांव को लिथड़ती, गिरती-पड़ती रुक्की धूप ढलने तक पेड़ों के झुरमुट तक पहुंच गयी. जिनकी छांह तले पक्के कुएं की जगत नजर आ रही थी. पास ही कहीं गांव होगा. इक्का-दुक्का झुग्गी भी नजर आने लगी थी.

रुक्की पांव घसीटते झुग्गी के पास पहुंच गयी. दरवाजे पर हल्की थाप दी. लकड़ी के भारी फट्टे खोल चारखाने वाली लुंगी पहने अधेड़ उम्र का पहलवाननुमा व्यक्ति उसके सामने खड़ा हो गया और प्रश्नात्मक मुद्रा बनाकर उसे घूरने लगा.

"थोड़ा पानी मिलेगा?" रुक्की ने भेदक दृष्टि को नजरअंदाज कर याचना भरे स्वर में पूछा.

"कौन हो तुम? कहां से आयी हो? इस गांव की तो नहीं लगती? यह कपड़े में क्या लिपटा रखा है?"

रुक्की प्रश्नों की बौछार से घायल-सी दरवाजे के पास लिपी हुई बरामदेनुमा जगह पर धम्म से बैठ गयी.

"दूर से आयी हूं. प्यास से गला सूख रहा है. बच्चा भी प्यास से बेहोश है. . ."

"कौन है. . . किससे बतिया रहे हो?" भीतर से मर्दाना स्वर में किसी स्त्री ने जवाबतलबी की.

"कोई औरत है. लगता है कहीं से बच्चा उठाकर भाग आयी है."

लुंगीधारी ने उसकी तरफ घूरकर अंदर की ओर बात

उगल दी. तब तक भीतर वाली औरत पांव के भारी कड़े खनकाती, आटे सने हाथ लिए दरवाजे तक आ गयी. रुक्की को ऊपर से नीचे तक परखते उसने भी प्रश्न ही किया, "क्या है? इस तरह यहां क्यों बैठी हो? कौन हो?"

"दूर से आयी हूं. थोड़ा पानी मिले तो चल दूंगी." रुक्की की आवाज भर्रा गयी.

"पर जा कहां रही हो और आयी कहां से हो?" लुंगीधारी बार-बार खोद-खोदकर प्रश्न पूछे जा रहा था. इस बार उसकी औरत ने इशारे से बात करने से बरज दिया.

"आओ, भीतर चली आओ. अंदर बैठकर बात करो."

पानी की घड़वी लाकर उसने रुक्की के हाथ में दे दी. उसने लोटे से धार बनाकर पानी हलक में डाल लिया. मुंह में धूल और रेत का किरकिरा स्वाद महसूस करते भी उसने गटागट पानी पी लिया. पानी की धार उसकी चोली भिगोती बच्चे के ऊपर पड़ी तो बच्चा कुनमुनाया. रुक्की ने हथेली की ओक बनाकर बच्चे को पानी पिलाया. वह जल्दी-जल्दी अपने नन्हें लाल कोंपलों से होंठ-जीभ चलाता पानी गुटकने लगा. जल्दी में उसे धसका उठा, तो रुक्की ने उसे थोड़ा झुकाकर पीठ पर थपकियां दीं. बच्चे की नाक-आंख से पानी निकल आया और वह बिटर-बिटर आसपास देखने लगा.

▣

स्त्री उसे पानी पर टूटते देख समझ गयी कि यह औरत प्यासी ही नहीं भूखी भी है. भीतर जाकर उसने एक अधमैले-से कपड़े में लिपटी बाजरे की रोटी निकाली और उस पर थोड़ा-सा बथुए का साग रखकर सामने धर दिया. "इसे खा लो, फिर अपनी बात बोलो."

रुक्की जब रोटी खा रही थी तो दो-तीन नाक सुड़कते कमर तक नंगे लड़के दरवाजे के पास खड़े होकर कौतुक से उसे देख रहे थे जो शायद उस औरत के बच्चे थे. रुक्की जल्दी-जल्दी रोटी गले में ठूंस रही थी और उसे धसके पर धसका उठ रहा था. स्त्री घुटनों पर ठोड़ी टिकाये कुछ सोचती-सी उसे देख रही थी. रोटी खाते ही रुक्की ने चोली ऊपर उठाकर बच्चे को दूध पिलाना शुरू कर दिया था, पर बच्चा किसी भी तरह दूध खींचने को राजी नहीं हो पा रहा था.

"इसे लू लग गयी है शायद." स्त्री ने पास आकर बच्चे को देखा फिर रुक्की की छातियां देखीं और अनुभवी लहजे में बोली, "दूध की रगें सूख गयी हैं जभी बच्चे का तालू लटक गया है सूखे स्तन खींचते. मैं दाल का पानी देती हूं, उसे पीकर थोड़ी बुहारी करो झुककर, दूध उतर आयेगा. घबराने की कोई बात नहीं."

स्त्री ने बच्चे की ओर हाथ बढ़ाकर उसे अपने पास लेना चाहा, "लाओ, इसे दो, थोड़ा दूध पिलाऊंगी इसे."

रुक्की ने एकदम बच्चे को अपने से भींच लिया, "नहीं, नहीं, वह बाहर का दूध नहीं पीता. वह. . . थोड़ा घबरा गया है गर्मी से. पानी पीने से ठीक हो जायेगा." रुक्की ने दुबारा ओढ़नी का सिरा गीला किया और बच्चे के सिर-मुंह पर फेरा. बच्चे को वह अपने से अलग नहीं करना चाहती थी.

स्त्री ने तब थोड़ा गुड़ मिला पानी लाकर दिया जिसे बच्चा चटक-चटक आवाज निकालकर पीने लगा. रुक्की के पैर में बंधी पट्टी देख स्त्री ने उसका पैर देखा. दर्द से नीला पड़ गया था. भीतर जाकर उसने कोई तेल जैसी दवाई निकाली. चाकू से खुरचकर डंक निकाला और डंक की जगह हथेली से तेल रगड़ दिया.

"ठीक हो जायेगा, कोई बिच्छू-इच्छू काट गया लग रहा है. यों ज्यादा जहरीला नहीं दिखता."

स्त्री की सहानुभूति से रुक्की भावोद्रेक से फफककर रोने लगी. 'कौन है यह अनजान स्त्री? क्या लगती है उसकी? उसकी मां तो नहीं आयी इस स्त्री का रूप धरकर?'

▣

लुंगीधारी खटिया पर बैठा रुक्की को बुरी तरह से घूरे जा रहा था. उसे रुक्की पर तरह-तरह के शको-सुबह हो रहे थे. कई रंगों की कढ़ाईदार चोली पहनी है रांड़ ने. खूब से चुन्नटवाला चटख रंग का घाघरा. किसी खाते-पीते घर की लगती है. क्या पता कहीं चोरी-चकारी की हो, या किसी यार के साथ चोरी-छिपे घर से निकल आयी हो, और वो इसे गच्चा देकर भाग गया हो. अब यह पुलिस के डर से भाग रही हो. . .

उसने पत्नी से कहा, "इसे जल्दी से रफा-दफा कर दो. कहीं हम भी पुलिस की लपेट में न आ जायें."

पुलिस के नाम से स्त्री को थोड़ा डर जरूर लगा पर रुक्की को रफा-दफा करने से पहले उसने उसकी कहानी सुनी. रुक्की पर अविश्वास करने का कोई कारण उसे नजर न आया. कनपटी के पीछे, बालों को खुजलाते उसने पूछा, "गांव छोड़कर आयी सो ठीक किया पर अब जाओगी कहां?"

रुक्की अब सस्वर रुदन करने लगी.

"क्या कोई नहीं है तुम्हारी मां के घर?"

रुक्की ने सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया.

स्त्री ने लंबी उसांस भरकर झुग्गी के एक कोने की तरफ इशारा किया, "उधर पड़ी रहो रात भर, सुथरी जगह है. अभी खाट लेने जाऊंगी तो चार जने पूछने लगेंगे. सो जा, थक गयी है, बाकी कल देखेंगे."

रुक्की कोने में जाकर अंधेरे में धंस गयी. यहां उसे बड़ा सुकून मिला. लुंगीधारी की नजरें वह यहां से देख नहीं पा रही थी, हालांकि वह उन्हें अपने समूचे जिस्म पर रेंगते हुए महसूस करती भीतर ही भीतर घिन्नाने लगी थी.

बच्चा थक-चुककर निढाल सो गया था, उसने भी आंखें बंद कर लीं. लेकिन बंद आंखों के आगे हौलनाक दृश्य चमकने लगे. जलती मशालों-सी लाल आंखें, उसका मांस नोचने को आतुर लंबे धारदार बघनखे झुग्गी के कोने-कोने से चमकाने लगे. वह सोई थी या जागी थी, उसे कुछ पता नहीं चला. एक बेअंत दौड़ में वह हांफ रही थी. कभी हरि काका का द्वार खटकाती, कभी धन्नो बुआ की देहरी लांघती, बदहवास, रोती-गिड़गिड़ाती बंदरिया के मरे हुए बच्चे की तरह बच्चे को सीने से चिपकाये. लेकिन यह क्या? हरि काका

▣ चंद्रकांता
जन्म : सितंबर, 1938
"लेखन मेरे लिए बेहतर ज़िंदगी की एक कामना है और है सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था के दंश सहते व्यक्ति की पीड़ा का आकलन एवं उससे मुक्ति की तलाश."
संप्रति : स्वतंत्र लेखन

पत्थर के बेजान बुत बन गये थे. काकी की आंखों से धार बनकर आंसू बह रहे थे. सदियों से बहे ये औरत के आंसू. लेकिन उसकी जुबान बंद थी, होंठ सिले हुए.

वह बावली-सी पूरे गांव में चीखती रही. परंतु गांव एकदम सुनसान जंगल बन गया था जहां उसकी चीखें हवा में गूंजती उस तक वापस लौट आयी थीं.

महंत की बात. हां महंत की बात टाली नहीं जा सकती थी. कुछ अंधविश्वास, कुछ वहम, कुछ लाचारी. देखा नहीं था तुमने बनवारी को बरगद की डाल पर लटकते? तब से किसी ने हिम्मत की महंत की बात टालने की? लाजो की लाश नहीं मिली थी कुएं में? महंत को दुराचारी कहा था उसने. रुक्की की कोख से जरूर किसी नाग ने जन्म लिया है नहीं तो महंत को क्यों ऐसा सपना आता? महंत देवी का भक्त है, देवी जो आदेश देगी, वह करके ही रहेगा. रुक्की-राधे की मर्जी होने न होने से क्या फर्क पड़ता है?

विरोध की शक्ति उनमें भी नहीं थी जो इस खेत से उस खेत में पानी की धार कटने-बहने पर सिर फटौवल करते थे, और जरा-जरा-सी बातों पर मरने-मारने पर उतारू हुआ करते थे.

लेकिन रुक्की अड़ गयी. यह रुक्की का अपना मामला है. उसे नहीं चाहिए दस संतानें. वह अपने छोरे को नहीं देगी. महंत तो क्या आप देवी भी आकर मांग ले तो भी नहीं. रुक्की फरियाद करेगी. पुलिस चौकी पर रपट लिखायेगी. कोर्ट-कचहरी जायेगी. कोई कायदा-कानून नहीं बचा क्या?

रुक्की आधी रात को चुपचाप निकल आयी अंधेरे रास्ते पर. ढिबरियां, लालटेन, और इक्का-दुक्का गैस के हंडे बुझाकर लोग सो गये थे. दूर से सियारों की हुंआ-हुंआ आवाज सुनसान रात को भयावह बना रही थी, हर आहट पर ज्यों मौत पंजे खोले खड़ी हो.

सुबह सूर्य उगने से पहले सोया गांव मंदिर में इकट्ठा हो जायेगा. और रुक्की के बेटे की तलाश शुरू होगी....

सूर्य उगने से पहले ही वह पुलिस चौकी पर पहुंच गयी थी. लाल छत वाली पक्की ईंटों का लंबोतरा-सा मकान. उसने पहले देखा कहां था? पूछ-पूछ कर आ गयी. मकान के सामने खुले बरामदे में दो खाटें बिछी थीं जिन पर दो व्यक्ति सोये खर्रा-खर्रा खर्राटे भर रहे थे. रुक्की दालान के बाहर दीवार से पीठ टिकाकर सुस्ताने बैठ गयी. ये आदमी जग जायें तो रुक्की अपनी फरियाद सुनायेगी.

सुबह की ठंडी हवा ने तन को मुलायम थपकियां दीं और इंतजार में बैठी रुक्की की आंख लग गयी. नींद में उसे कमर में डंडे की कोंच महसूस हुई तभी वह हड़बड़ाकर जाग गयी.

"ऐ... कौन है तू? इधर क्यों सोई पड़ी है?"

आंखें मलते रुक्की ने ओढ़नी संभाली, बच्चे को बांहों में उठाया और खड़ी हो गयी, "आप हवलदार साहब हो न?"

"तेरी आंखों में क्या चर्बी चढ़ी है जो पहचानती नहीं?"

"हुजूर, फरियाद करने आयी हूं."

"किससे? कैसी फरियाद? कोई मर-मुर गया? कहीं कत्ल-वत्ल हो गया?"

"नहीं हुजूर, वो रपट लिखानी है."

हवलदार शायद और बातें पूछता पर तभी भीतर से पुलिस की वर्दी पहने दूसरा व्यक्ति बाहर आ गया.

"रपट लिखाने आयी है, इसे अंदर ले चलो. मैं बावड़ी पर स्नान करके आता हूं."

भीतर एक उम्र की मार खाई रंग उड़ी मेज पर कुछ बहीखाते जैसे रखे हुए थे. पुलिसवाला कुर्सी पर बैठ गया और उसे चरमराती-सी बेंच पर बैठने का इशारा किया.

"आप ही लिखोगे रपट?" रुक्की ने नीम अंधेरे सूने कमरे में खुद को अकेली पाकर थोड़ा घबराकर पूछा.

"नहीं तो क्या आपका बाप लिखेगा?" पुलिसवाला उसकी चोली पर नजर गड़ाये मजाक के मूड में आ गया. रुक्की ने बच्चे को कंधे से लगाकर आड़ कर दी और जल्दी-जल्दी रिपोर्ट लिखानी शुरू की, "हुजूर, मैं राधेश्याम की जोरू रुकमिनी हूं. ब्याह के पांच साल बाद मेरा यह छोरा हुआ. मैं इसे महंत की असीस दिलाने मंदिर ले गयी तो महंत ने कहा..."

"आहिस्ता बोल, क्या चपर-चपर जबान चला रही है..." पुलिसवाला उसे बीच-बीच में टोकता कुछ-कुछ लिखता गया और हर वाक्य के बाद सवाल पूछता रहा... "महंत नहीं. महंतजी कहो. क्या कहा महंतजी ने? ओ हो हो हो!" अचानक उसे हंसी का दौरा-सा पड़ गया और वह उठकर रुक्की के पास आ गया, "दस बेटे जनेगी कहा? ओ हो हो हो हो. गलत नहीं कहा. मैं तो कहूं बीस छोरे जनेगी तू... ऐसी कसी-तनी देह है तेरी." बात करते वह रुक्की से छेड़छाड़ करने लगा. रुक्की सहमी-सी कमरे के बाहर देखने लगी, वह दूसरा पुलसिया जाने कहां मर गया.

"हुजूर! उस महंत को जेहल में डाल दो, हथकड़ी लगा

...ता पाठक है

▣ विष्णु प्रभाकर

(रमाकांत से हुई बातचीत के दौरान एक सवाल का जवाब देते हुए)

लेखक स्वयं अपने कृतित्व का निर्णायक हो सकता है यह मैं नहीं मानता. वह इसका अधिकारी भी नहीं है. यह निर्णय करना पाठकों का काम है. लेकिन लेखक को सिर्फ एक बात का अधिकार है कि वह जो भी लिखे अपनी संपूर्ण मेधा और शक्ति से लिखे. यही मैंने करने का प्रयत्न किया है. □

दो. छटा बदमाश है वह..."

"तेरे साथ कुछ बदसलूकी की?"

"हुजूर, वह लाजो थी न, उसने..."

"उसकी बात छोड़, तू अपनी बात कह... तेरे पास क्या सबूत है उसकी बदमाशी का? यह छोरा...?"

पुलसिया इतना पास आ गया था कि उसकी हांपती बदबूदार सांसें वह चेहरे पर महसूस करने लगी थी. वह छटपटा कर दरवाजे की ओर बढ़ी और छीना-झपटी में दहलीज पर ठोकर खाते-खाते संभली. तभी उसने देखा बाहर से पहले वाला हवलदार कंधे पर गमछा डाले भीतर आ रहा है. "हुजूर, आप इसे बरज दीजिए, मेरे साथ बदसलूकी कर रहा है." रुक्की ने शिकायत करनी चाही. हवलदार ने आंखें तरेरकर पुलसिये को देखा, "क्यों बे, बदतमीजी कर रहा है..." रुक्की ने हैरानी से देखा हवलदार पुलिस वाले की ओर एक आंख दबाकर होंठों में मुस्कराया था.

"रिपोर्ट लिखवा दी?" वह रुक्की की तरफ मुड़ा.

"हां हुजूर," रुक्की सहमी-सी खड़ी रही. उसे सारा कमरा जेल की काल कोठरी-सा लग रहा था. उसका दम घुटने लगा था और वह जल्दी भाग जाना चाहती थी.

"बैठ जाओ... क्या नाम बताया... रुकमिनी. अभी दरोगा साहब आयेंगे, वे तफ़तीश करेंगे..."

"बच्चे को जरा बाहर ले जाऊं. कपड़ा गीला कर दिया है." बच्चे का बहाना बनाकर वह बाहर बैठ गयी. बाहर दालान में हथकड़ी पहने दो आदमी आपस में बतिया रहे थे. उनके चेहरे पर भय या सहम जैसी कोई छाप नहीं थी. ज्यों सैर करते-करते पुलिस चौकी तक निकल आये हों. बल्कि रुक्की को देखकर वे भी कुछ ऊटपटांग बोल मारने लगे.

"चांदी है साले पुलसियों की यहां..."

"हां यार, एक तरफ थैलियां, साबुत की साबुत भेड़-बकरियां, और दूसरी तरफ ये तर माल..." रुक्की का मन हुआ मुंह नोच ले इन चोर-उचक्कों का. पता नहीं किसका गला काटकर आये हैं, ऊपर से हिम्मत देखो, पुलसियों से भी दो कदम आगे. एक बार उसने उन्हें झिड़क भी दिया, "क्यों भइया, तुम्हारे कोई मां-बहन नहीं घर में?" उनका जवाब भी हाजिर था, "मां-बहन तो है पर तेरी जैसी छम्मक छल्लो लुगाई नहीं..."

रुक्की धूप में बैठी रही, उचक्कों की तरफ पीठ करके.

घंटे भर में दरोगा साहब आ गया. वर्दी में चुस्त, हाथ में छोटा-सा चमकदार डंडा, मुंह पर नुकीली मूंछें. पान चुभलाते उसने इशारे से पुलसियों से पूछा, "यह कौन है?" दोनों पुलसिये सलाम ठोंककर खड़े हो गये, ताड़ के झाड़ की तरह सीधे. रुक्की सामने आयी, "हुजूर, फरियाद लेकर आयी हूं."

थानेदार साहब ने लिखी रिपोर्ट पढ़ी.

"कोई गवाह है तुम्हारा?"

"हजूर सारे गांव को मालूम है."

"वो तो ठीक है, पर महंत की बड़ी ताकत है, बिना सबूत उस पर इल्जाम लगाने का मतलब समझती हो?"

रुक्की ने दो-चार नाम गिनाये, हरि काका, बुधिया, काकी, जमुना... इनसे पूछा जाये.

थानेदार ने गांव में आदमी दौड़ाये. हरि काका, बुधिया काकी को बुलाने के लिए.

रुक्की इंतजार करते ऊब गयी, पर एक आस बराबर जगी रही. हरि काका, बुधिया, जमुना! मर्द भले ही उसे बेसहारा छोड़कर भाग निकला. वे लोग तो उसके साथ हैं.

लेकिन हरि काका, बुधिया, जमुना यहां तक कि काकी ने भी थानेदार साहब से कहा कि उन्हें कुछ भी नहीं मालूम. उनके सामने तो महंतजी ने कुछ नहीं कहा.

"मगर काका, तुम सब लोग तो जानते हो, महंत ने तो खुद ही गांव भर में बच्चे की बलि की बात कही है..."

"हमें कुछ नहीं मालूम साब!" जमुनासिंह तो यहां तक बोला कि राधे के घर से चले जाने की वजह से रुक्की का माथा खराब हो गया है. महंतजी तो योगी-महात्मा हैं...

▣

रुक्की खून का घूंट पीकर रह गयी. उसके भीतर से जोरदार रुलाई फूटी. पर रुक्की ने कमजोर पड़ता मन पक्का कर लिया. वह अकेली लड़ेगी, बिल्कुल अकेली. हां, वह न्याय के लिए लड़ेगी. मरना होगा तो इंसाफ की देहरी पर सिर फोड़ कर मरेगी.

दरोगा ने उसे रात भर रोके रखने की हिदायत दी. "महंत का नाम ले रही है यह लुगाई. बात की पूरी तहकीकात करनी होगी. इसे कुछ खिलाओ-पिलाओ रामदीन..."

रुक्की का जी बैठ गया. हाथ-पैर सुन्न. रात भर वहां अकेली? शेर की मांद में बकरी क्या खैर मनायेगी?

बच्चू नन्हीं टांगें हिला-हिलाकर नींद में किलक रहा था. रुक्की का कलेजा बुक्का फाड़कर बाहर आने को हो रहा था. राधे इस नन्हीं जान को देखकर निहाल हो गया था. रातों को इसे जग कर देखता. बच्चा नींद में होंठ हिलाता तो कहता, "परियां सुपने में आयी हैं मेरे राजकुमार के." अब इसे भिखारी बनाकर कहां चला गया बेदर्द? वह साथ रहता तो रुक्की इस तरह इन कुत्तों के मुंह की हड्डी बन पाती?

रामदीन और लच्छू, यही उन दो पुलसियों के नाम थे, उसके लिए खाना ले आये. रामदीन अलग से दौने में चार लड्डू लेकर आया. लच्छू की तो जैसे मां लगती थी रुक्की,

मच्छर तो नहीं लग रहा रुकमिनी?"

वह खाना क्या खाती, भय के मारे प्राण हलक में आ रहे थे. रात घिरते ही ये शैतान उसे निगल जायेंगे और इस छोरे को लेकर वो क्या करेगी? दरोगा तो इनका भी बाप लगता है. उससे क्या कहेगी?

नहीं, इन कसाइयों से वह पार न पायेगी. रुक्की को याद आया—चाची उसकी सेहत देखकर बोल मारती मां से कहती, "तेरी बेटी तो पहलवान है काकी. चार मर्दों को पटकने का दम है." मां गर्व से हंस कर कहती, "हां, वह, खावा-लजावा नहीं है, खाया-पिया दिखता है." पर रुक्की की पहलवानी यहां किस काम की, इन दो-दो मुस्टंडों के सामने? उसने सोचा, जोर-जब्बर नहीं चलेगा इधर.

▣

रुक्की को दिमाग से ही काम लेना पड़ेगा. रुक्की रामदीन से हंसकर बतियाने लगी. रामदीन के फूहड़ मजाकों को दांत भींचकर सहती भी रही. जब उसने कंधेपर हाथ रखकर पूछा कि छोरे का असली बाप कौन है तो वह नखरा दिखाकर थोड़ा पीछे हटकर हंसी भी. तभी तो उसे गच्चा देकर वह दिशा मैदान के बहाने, बाहर आ सकी. लच्छू ने "दूर मत जाना" कहकर जरूर टोका. पर वह "नहीं, पास ही हूं. तुम जरा खयाल रखना," कहकर पीपल के झाड़ के पीछे छिप गयी. दो-एक मिनट बाद तने की ओट होकर उसने जब दोनों को चिलम का सुट्टा लगाते देखा तो वह दबे पांव कटे हुए धान की ढेरियों और झाड़-झरबेरियों से होती हुई भाग निकली, और रात भर थकान से चिथड़ा-चिथड़ा हुआ जिस्म लिए भागती रही. अचानक रुक्की को महसूस हुआ कि झोंपड़ी की छत उस पर गिर रही है. हजारों हाथ ज्यों उसे नोचने को बढ़ आये हों, दबाव और घुटन से उसकी चीख निकल गयी.

"क्या हुआ?" शोर सुनकर दूसरे कोने में कोई स्त्री जाग पड़ी.

"कोई आदमी..." वह हकलायी.

"फिटे मुंह मरदुए..." कमरे में डोलती छाया देखकर वह बड़बड़ाती पास आयी, "तू डर गयी है शायद सपने में." रुक्की से उसने नरम आवाज में कहा, "सो जा. मैं दिया बालकर सिरहाने धर दूंगी." स्त्री अपना बिछौना सरकाकर पास लेट गयी.

सुबह धुंधलका छटते ही उसने रुक्की को जगाया, "उठो, हाथ-मुंह धोकर मुंह में कुछ डाल लो. दो रोटी पोकर देती हूं, इन्हें साथ लो और यहां से चली जाओ."

रुक्की खामोश उसे देखती रही.

कपड़े में लपेटकर रोटियां उसने बांध दीं. बाटी में थोड़ा-सा दूध लाकर बच्चे को पिलाया.

"अब जाओ, शाम तक नेडे के गांव पहुंच जाओगी. वहां सरदार अतरसिंह की कोठी है. उधर जाओ, कुछ काम-धाम देगा. खाता-पीता आदमी है, धर्म-कर्म में विश्वास है. सुना है सुच्चा आदमी है." कंधे पर हाथ रखकर वह स्नेह

की है. तू घर से निकल पड़ी है, अकेली औरत की हर तरफ से मार है. मैं नहीं जानती तुझे न्याय मिलेगा या नहीं, पर गिद्ध चीलें तुझे नोचेंगे जरूर. हो सकता है, इस छोरे की किस्मत से तुझे कोई भगवान मिल जाये."

▣

सरदार का घर पक्की ईंटों की हवेलीनुमा कोठी थी. बड़ी हिम्मत बांधकर रुक्की ने दरवाजे का भारी-सा गोल कुंडा खटखटाया. दस बारह वर्ष के लड़के ने दरवाजा खोला.

रुक्की लड़के के इशारे पर भीतर चली गयी. साफ धुले आंगन में मेजे पर दरी बिछाकर बैठी सरदारनी सरोते से सुपारी काट रही थी. सरदार आरामकुर्सी पर टेक लगाकर बैठा अखबार पढ़ रहा था. रुक्की बच्चे को लेकर पैरों के पास धरती पर बैठ गयी.

सरदार पक्की उम्र का रौबदार आदमी था, उसकी दाढ़ी आधे से ज्यादा सफेद थी जो करीने से मोड़कर चेहरे पर जमा दी गयी थी. सरदारनी ने उसे एक-दो बार देखा, एकाध बात की और विशेष रुचि न दिखाकर तन्मयता से सरौता चलाने लगी. सरदार ने परीक्षक की दृष्टि डाली और पूछा, "किसलिए आयी है?"

रुक्की ने बताया कि वह काम मांगने के लिए आयी है.

"कौन-सा काम करोगी?"

"रोटी-पानी करूंगी. झाड़-बुहार करूंगी, कपड़े-लत्ते धोऊंगी. और हां..." रुक्की ने कुछ रुककर धरती ताकते हुए कहा, "कोई गलत काम नहीं करूंगी."

सरदार ने एक्सरे मशीन जारी रखी, "गलत काम से मतलब?"

रुक्की बेलाग लहजे में बोली, "आपकी बड़ी तारीफ सुनी है. इसी से साफ कहती हूं. मैं वह काम नहीं करूंगी जो मर्द लोग औरत को मजबूर समझकर कराते हैं."

सरदार स्तंभित, अचंभित उसकी तरफ देखने लगा. मुंह में सुपारी चुभलाता हल्का-सा मुस्कराया भी शायद.

"मैं घर से भाग आयी हूं, यह भी सुन लो सरदारजी, यों घर में नाज-पानी की कमी नहीं थी, पर वहां गांव वाले मेरा बच्चा ले रहे थे, इसी से!"

"तुम्हारा बच्चा क्यों?" सरदारनी की रुचि जाग उठी.

"वह दूसरी बात है. आप कहो काम मिलेगा कि नहीं? जान लगाकर काम करूंगी." सरदारनी प्रभावित हुई. रुक्की जब्बर औरत मालूम पड़ती है. सेहत अच्छी है, खेत-मजूरी भी कर सकती है.

आगे की कहानी यों है कि रुक्की को काम मिल गया. महीना भर उसने काम किया, जी जान से, खाना बनाया, झाड़-बुहार की, खेतों पर गोड़ाई-निराई भी की और सरदारनी के पैरों में मालिश भी करती रही. कभी उसके सिर में कुबंल-कुबंल होती तो दो टटोले भी देती सिर में. सरदार ने उसकी दुःखगाथा सुनी और कहा वह उसे किसी बड़े वकील से मिलायेगा, महंत को सजा दिलायेगा और रुक्की के

न्याय दिलायेगा. सरदारनी आश्वस्त हो गयी. रुक्की सचमुच हीरा है. रुक्की सरदार, सरदारनी को चाचा-चाची कहकर बुलाने लगी और ऐसा महसूस हुआ कि रुक्की के दिन फिर गये, उसे फगलान मिल गया.

तभी एक दिन अचानक शहर से तार आया— सरदारनी के पिता बीमार हैं, जल्दी चली आओ. सरदारनी घर-बार रुक्की को सौंप शहर चली गयी.

रुक्की खाना बनाती रही, चाचा को खिलाती रही, खाते वक्त पंखा झलती रही. आखिर वह उसका चाचा बन गया था.

▣

एक दिन सरदार को सर्दी हो गयी, बुखार और जबरदस्त कंपकंपी छूटने लगी. रुक्की ने पैर में मालिश की, छोकरे को डाक्टर के पास भेज दिया, बल्कि एक आदमी शहर दौड़ाया, चाची घर लौटो, चाचा बीमार हो गये हैं. दुपहर में चाचे का माथा दबा रही थी कि वह आंय-बांय बकने लगे. रुक्की की बांह पकड़ ली. रुक्की को लगा हो न हो चाचे को सरसाम हो गया है. वह थर-थर कांपने लगा था.

"बहुत दर्द हो रहा है चाचा?" कहते-कहते रुक्की रुआंसी हो गयी.

सरदार की जुबान भी हकलाने लगी थी..."न... न... तुम... इधर आओ..."

"पानी दूं?" रुक्की पानी लाने गयी कि सरदार ने मतलब की बात कही, "... बच्चे को इधर लिटा दो और मेरे पास आओ."

रुक्की आसमान से धरती पर गिर पड़ी. यह देवता पुरुष, यह धर्मी-कर्मी सत्संगी जिसे वह चाचा कहती है, औरत को अकेली देखकर अचानक राक्षस बन गया?

"देखो सरदार साहब, तुम अपना ईमान खराब मत करो. मैंने तुम्हें पहले दिन ही कहा था..."

सरदार ने बच्चे को यँदा हाथ से उठाया और बायें हाथ से रुक्की को अपनी तरफ खींच लिया.

"ज्यादा चूं-चपड़ की तो बच्चे को धरती पर पटक दूंगा, ऐसे ही मरियल पिल्ला-सा है..."

"एक मिनट रुक जाओ सरदारजी, अभी आयी." रुक्की ने पल भर में चेहरा मुलायम बनाकर अपनी बांह छुड़ा ली और सधे कदमों से चौके में गयी. वहां से मीट काटनेवाला छुरा लाकर सरदार के पीछे खड़ी हो गयी.

"छोड़ दो बच्चे को नहीं तो..."

"नहीं तो क्या करेगी तू?" सरदार हंसा लेकिन रुक्की पर भूतनी सवार हो गयी. पीपल वाली भूतनी. उसने सरदार की बांह में बत्तीसों दांत गड़ा दिये और बच्चे को उसके हाथ से खींचकर परे लुड़का दिया. सरदार की चीख जब तक संभले वह फुर्ती से उसकी छाती पर चढ़ बैठी.

"मेरा बच्चा मरियल पिल्ला है, तुम इसे धरती पर पटक

... एक तूने ही अपनी मां का दूध पिया है मरदुये?"

बुखार में भी हट्टे-कट्टे सरदार में इतना दम था कि एक ही बार में रुक्की को दिन में तारे दिखा सकता था. पर छुरी की नोक उसके गले पर थी और जरा भी हिलने से वह उसकी सांस की नली काट सकती थी. वह कें-कें करता छटपटाने लगा. सहसा रुक्की ने हाथ पीछे खींच लिया. सरदार का सिर पलंग की पाटी पर मारकर अलग हट गयी, "जा छोड़ दिया तुझे पापी. तेरी बीवी ने मुझ पर एतबार किया है. तुझ जैसा पाखंडी औरत को देखकर लार ही टपका सकता है, उसे बहन-बेटी नहीं मान सकता. इसका मुझे गुस्सा नहीं है, पर तुने मेरे बच्चे को हाथ लगाना चाहा."

▣

रुक्की ने छुरी फेंक दी थी और वह लपककर बच्चे को उठाने ही जा रही थी कि उसकी बात अधूरी रह गयी. अब वह सरदार की कड़ी गिरफ्त में थी और छटपटा रही थी. सरदार वहशी हो गया था— "तू मुझे मार डालती साली, सात घाट का पानी पीकर सती-सावित्री बनती है चुड़ैल? जाने किस का पाप ढो रही है बदचलन. तूने कहानी गढ़ी और समझा मुझे बुद्धू बना दिया? तुझ में दम है मारने का? जेल, फांसी न होती तेरी, और यह भरी जवानी सड़ती नहीं तेरी उम्र भर जेलखाने में?"

चिथड़ा हुई देह को उठाती, बदहवास रुक्की ने रोकर बेदम हुए बच्चे को नंगी छातियों से चिपका लिया. ओढ़नी समेटते उसने अजहद नफरत से धरती पर थूका, "वो ऊपर वाला कहीं है तो जानता है कि अब तक तेरी यह कीड़े पड़ी देह ठंडी पड़ गयी होती. मैं सती-सावित्री नहीं हूं रे पाखंडी, पर तुझ पापी कंस की आज इस मरियल पिल्ले ने ही जान बख्श दी. रुक्की आज अपने इस कोखजने के कारण ही मार खा गयी."

रुक्की की आंखों में उबलते पानी का सोता फूट पड़ा. भर्राती आवाज घर के सूने कोने अंतरों को हिलाने लगी, "जेहल फांसी से तुझ जैसे धर्मी-कर्मी ही डरते हैं शरीफजादे, मैं तो तुम्हारे कानून से डर गयी. कत्ल के जुर्म में मुझे फांसी मिल जाती तो शायद मेरा इंसाफ हो जाता रे पापी, पर मेरे इस कलजुगी कन्हैया के साथ कौन इंसाफ करता???" ☐

● ई-257, ग्रेटर कैलाश I, नयी दिल्ली-110048.

चलते-चलते

एक बार अंग्रेजी के नाटककार आस्करवाइल्ड का एक नाटक बुरी तरह असफल रहा. उनके एक मित्र ने उनसे पूछा, कि आपका नाटक कैसा रहा, तो आस्कर वाइल्ड ने झल्लाकर जवाब दिया, "नाटक बेहद सफल रहा मगर देखने वाले फेल हो गये." ☐

—मैंकलाल गर्ग

कल्लू का कल्लू

अरुणा सीतेश

विदेश्वर बाबू खुद चलकर डंगर टोले में आये थे. पुराना वक्त रहा होता तो इसी दरियादिली पर लोग उनके पांवों तले बिछ जाते और उनकी पुतली फिरने से पहले अपना हांड़मांस हथेली पर लेकर उनके आगे कर देते.

पर यह ठहरा कलजुग... और कलजुग जो न कराये सो थोड़ा...

बालू और परकासी अलग से शायद मान भी गये होते पर ये जो रामलखन है न, चार अक्षर क्या पढ़ गया अपने को तीसमारखां समझने लगा है. दो टूक जवाब दे दिया, "पूरी मजूरी लिये बिना तो काम करेंगे नहीं, मालिक."

मन तो हुआ दो चार-हाथ खींचकर रसीद करें, "ले साले, ले पूरी मजूरी. बहुत जबान लड़ाना सीख गया है." पर यही करना था तब तो तेजा ही काफी रहता. लड़का कह भी रहा था, "तुम उन कमीनों के मुंह लगकर क्या करोगे, बापू? मैं जाता हूं एक-एक को छठी का दूध याद न दिला दिया तो मेरा नाम भी तेजनारायण नहीं."

उन्होंने ही रोक दिया. जवानी का गर्मजोश... उबल पड़ा तो वे जानते हैं दो-चार जानें लेकर ही थमेगा. आखिर राजपूती खून है.

तेजा वक्त की धार नहीं पहचान रहा. वे पहचानते हैं. एक तो जमाना ही बदल गया है, ऊपर से घुमड़-घुमड़कर

मजदूरों को उनका हक मिले—इस मुहिम में कंधे से कंधा मिलाकर तो सब चले थे, पर फैसले के बाद कल्लू सोच रहा था कि ... उस लडाई में फायदा क्या हुआ? वह तो वहीं का वहीं रहा? कल्लू का कल्लू! सरमायेदारी के शिकंजे में फंसे ग्रामीण मजूर की बेचारगी को व्यक्त करती मार्मिक कहानी

आते बेमौसमी बादल. कब तक बिना बरसे लौटते रहेंगे? समय रहते धान की कटाई नहीं हुई तो सारी मेहनत बेकार. रेडियो वाले अलग तूफान-तूफान चिल्ला रहे हैं.

मुसीबत के मारे बिदेश्वर सिंह पैदल चलकर यहां तक आये. न चिलचिलाती धूप की परवाह की, न माथे पर चुहचुहाते पसीने की. पर अड़ियल टट्टुओं की एक ही रट—"रेट के हिसाब से मजूरी लेंगे, मालिक."

"हां भई, जरूर ले लेना. कोई पहली बार तो चल नहीं रहे हो."

"सो तो ठीक है मालिक. पर बात तय हो जाये तो चलें. मजूरी नहीं करेंगे तो खायेंगे क्या? मजूरी करने के लिए तो बैठे ही हैं."

"जैसी तुम्हारी मर्जी. हमने तो अपनी तरफ से कभी तेजा और तुम सबमें फरक माना नहीं. जिसमें तुम्हारी खुशी हो, वही ठीक है..." स्वर को मुलायम बनाये रखना बिदेश्वर सिंह के लिए मुश्किल हो रहा था.

"दिहाड़ी का तीन किलो अनाज होगा मालिक."

"इतना? एकदम से दुगना?" बिदेश्वर सिंह वैसे अच्छी तरह जानते थे कि यही सरकार ने निर्धारित किया है.

"क्या करें मालिक? बच्चों का पेट जो पालना ठहरा."

"ठीक है, ठीक है. अब तो चलो."

रामलखन के इशारे पर बालू और परकासी भी उठ खड़े हुए. दिन भर धान को काट-काटकर ढेर लगाते रहे.

बिदेश्वर सिंह हुक्का गुड़गुड़ाते हुए गंभीर सोच में डूबे थे. मुसीबतों से डरने वाले वे नहीं. कितनी ही मुश्किलों

▣ सांत्वना पुरस्कार विजेता
कहानी : नौ

का सामना उन्होंने हंसते-हंसते किया था, पर आज जैसी परेशानी में वे पहले कभी नहीं फंसे.

लगभग चार महीने पुरानी बात है...

एक छोटा-सा गांव नाम राजपुर. परगना सुहानाबाद. गांव के दक्षिण में मुट्ठी भर हरिजन मजदूरों की एक छोटी-सी बस्ती—डंगर टोला. कच्चे घर, झींगला चारपाइयां, टूटे-फूटे बर्तन, पैबंद लगे चीथड़े, गीली लकड़ियों में आंखें फोड़ती औरतें, रोते-मिनकते बच्चे कीचड़...

नहीं, बस नहीं. एक राजलखन भी था. दसवीं पास. मजदूर किसान संग्राम समिति का सक्रिय सदस्य. अजीब सिरफिरा. ना बीवी की फिकर, ना चार बरस के बच्चे की. जाने कहां से पढ़ आया कि एक और एक ग्यारह होते हैं. फिर क्या था? पसर गया कि जब तक भाई लोग एक जुट होकर काम करने की सौगंध नहीं लेंगे, अन्न-जल को हाथ नहीं लगायेगा. बात हंसी-मजाक में आयी-गयी हो गयी. पर सुबह से रात हुई, रात से सुबह, फिर सुबह से रात... पर मजाल है जो पानी की बूंद भी बंदे के हलक से उतरी हो. अब तो भाई लोग घबराये—ये क्या पागलपन है? ऐसा भी कोई करता है? समझाया-बुझाया. बाप-महतारी का वास्ता दिया, बीवी-बच्चे की याद दिलायी. गुड़ घुले पानी का गिलास लिये बहन कह-कहकर हार गयी—"मान जा भैया, मान जा," पर वो तो बहरा बना बैठा रहा.

"लौंडा तो जान देए पे उतारू है...क्या किया जावे?" रात के साथ-साथ मंत्रणा गहराती गयी.

"तू चाहे क्या है?" आखिर एक सयाने को पूछने के लिए भेजा गया.

"सरकारी रेट से कम पर मजूरी बंद." होंठ खुले और पहली शर्त सुनाकर फिर बंद हो गये.

"काम ना मिला तो...भूखों ना मर जावेंगे?" सबके मनों में पहली आशंका.

"अभी कौन-सा जी रहे हैं काका? मर जावेंगे तो छूट जावेंगे...पर कोई दगा नहीं करेगा...जीवेंगे तो साथ-साथ, मरेंगे तो साथ-साथ." होठों ने पटापट दूसरी शर्त उगल दी.

"और जो मालिक लोग काम पर कोने बुलावें..." एक और आशंका.

"पूरा पैसा देवेंगे तो जावेंगे, नहीं तो भगवान बुलाये तब भी नहीं. बोलो मंजूर है?" तीसरी शर्त.

फिर मंत्रणा चली. बड़ी देर चलती रही.

एक दीवाने की जान बचाने के लिए टोले के सब लोगों को सिर पर कफन बांधने को तैयार होना पड़ा. होना ही था.

सूरज की नन्हीं-नन्हीं किरणें गांव के दूसरे छोर पर बनी हवेलियों को जगाने पहुंचीं तो यह खबर भी सुना आयीं.

"स्साले..." निंदासी आंखें बुदबुदायीं.

"पेट में पड़ी रोटियां कुलबुला रही हैं...इतनी जल्दी भूल गये वे दिन जब बस्ती भर का मैला सिर पर ढोते फिरते थे...?" नींद से बोझिल आंखें थीं जो खुलने से इंकार कर रही थीं और अंधेरे का डर था जो उन्हें आंखें मूंदने नहीं दे रहा था...अंधेरे भविष्य का डर. कैसी आग लगी है जमाने को? जो पहले आंख झुका कर सामने आने में भी डरते थे, अब गर्दन ताने आंखों ही आंखों खा जाने को तैयार दीखते हैं. हे भगवान, रसातल को जा रही दुनिया को बचाने का क्या कोई रास्ता नहीं!

बिदेश्वरी सिंह दो बार विलायत हो आये थे. नये जमाने की नयी रोशनी पहचानते थे. दिल के नेक थे, सो यह भी महसूस करते कि आठ-दस घंटे की कड़ी मेहनत के बदले तीन किलो अनाज वाजिब ही था. किलो-डेढ़ किलो में क्या तो खा लो, क्या बिछा लो?

इन लोगों की हेकड़ी जरूर उन्हें नागवार गुजरी थी. हर काम को करने का एक कायदा होता है. इसी बात को मुलामियत से इस तरह भी तो कह सकते थे-"मालिक. किलो-दो किलो अनाज में गुजारा नहीं होता, आप माई-बाप हैं, जो ठीक समझें, दे दें." फिर भी वे बढ़ाकर न देते तो बात थी. आज तक इनके सुख-दुख में काम आये ही हैं. तेजा की शादी में बिरादरी का खाना किया तो इन सबको बुलाया था कि नहीं? बल्कि तेजा की मां की मर्जी और किसी दिन अलग से आटा-दाल दे देने की थी पर वे नहीं माने, सुहागी की बेटी के ब्याह में तेजा की दुल्हन का नया का नया जोड़ा उन्होंने भिजवा दिया था. साल भर पुराना था तो क्या, पहना तो मुश्किल से चार-छह बार होगा. शायद इतना भी नहीं. हरखू की जवान बहू की लाश तालाब में तैरती मिली थी तब उन्होंने ही पुलिस से कह-सुनकर मामला रफा-दफा करवाया था. पर आजकल के लौंडे बड़ों से सीधी नजरें मिलाकर बोलने में ही अपनी शान समझते हैं. खैर, वे जानते हैं कौन इनको सिर चढ़ा रहा है. मौका आने दो—सब सालों का दिमाग दुरुस्त कर देंगे. पर तब तक तो रेट के हिसाब से मजूरी देनी ही पड़ेगी...चलो, कोई बात नहीं. कौन उनके गोदामों में कमी आ जायेगी?

पर मुसीबत एक और भी थी. पड़ोस के नानपुरा के जमींदार भाइयों ने बाकायदा मीटिंग करके तय किया था कि किसी भी हालत में मजूरी बढ़ायी नहीं जायेगी.

"पर सरकारी रेट...?" एक आपत्ति उठी.

"सरकारी रेट सरकार देगी. हम नहीं..."

इतना ही नहीं, राजपुर में भी एक हरकारे को भेजकर कहला दिया गया कि कुछेक सिरफिरे लौंडों की गड़बड़ पर मजूरी बढ़ाने की जरूरत नहीं..."वे एक हैं तो हम भी हैं."

और सचमुच कुछ दिन के लिए तो सबने एक-दूसरे की जड़ें काटना बंद कर ही दिया. पुश्तैनी मुर्दे अर्से बाद शांति से अपनी-अपनी कब्र में सोये—भाईचारे का अद्भुत साम्राज्य.

पर बिदेश्वर सिंह मजदूरों के आगे झुक गये थे. उनकी बगावत की खबर आग की-सी तेजी से फैली—"ऐसे ही एक विभीषण के कारण लंका ढही थी."

पर कलजुगी रावण धोखा खाने वाले नहीं. तुरंत गुपचुप मंत्रणा हुई. बिदेश्वर सिंह को कहलाया गया कि रेट बिगाड़ा तो उनसे बुरा कोई न होगा.

▣ अरुणा सीतेश
जन्म : 30 अक्तूबर, 1945
—"जब-जब जिस अनुभूति ने कचोटा और उसकी तल्खी मेरी अपनी वेदना बन गयी तब-तब एक रचना कागज पर उतरी."
संप्रति : प्राध्यापिका (अंग्रेजी).

"हमारी तैयार फसल का क्या होगा? तीन किलो देने का शौक तो हमें है नहीं. कम पर आदमी नहीं मिल रहे हैं तो मजबूरन ही देना पड़ रहा है."

इस समस्या का हल भी बतला दिया गया—भैरों ठाकुर की कटाई मशीन उन्हें किराये पर मिल जायेगी. खर्चा कुल मिलाकर किराये के मजदूरों से शायद कुछ कम ही पड़ेगा. चार पैसे ज्यादा लग भी जायें तो रेट नहीं बिगड़ेगा.

सवाल इस समय एक बुवाई या कटाई का नहीं था. सवाल सिद्धांत का था. एक बार झुक गये तो ये साले तो गर्दन पर ही सवार हो जायेंगे. पड़ा रहने दो खेतों को पर्ती. एक साल खेती नहीं होगी ना सही. गोदाम और किस दिन के लिए भरे जाते हैं? पर इन सालों को दिन में तारे ना दिखा दिये तो लानत है हम सब पर, हमारे राजपूती खून पर.

सवाल मान-मर्यादा का भी था. हमारे ही टुकड़ों पर पलने वाले हमें ही आंख दिखायेंगे? जिस थाली में खाना उसी में छेद करना? चार जमात क्या पढ़ गये आसमान में ही उड़ने लगे? पानी में रहकर मगर से बैर? इतना गुमान आखिर किस बूते पर? ठाकुरों से टक्कर? सरकारी रेट की दुहाई तो देते हैं पर सरकार क्या है यह भी मालूम है? अब हो जायेगा.

बिंदेश्वर सिंह करें तो क्या करें?

दिन भर धान कटता रहा.

काम निपटाकर तीनों चलने लगे तो वही ढेढ़ किलो अनाज उन्हें पकड़ा दिया गया.

"यह क्या?" रामलखन भड़क उठा.

"लेना है तो लो नहीं तो रास्ता नापो."

"हराम का मांग रहे हैं क्या? दिन भर खून-पसीना एक किया है. ठाकुर को बुलाओ. जो मजूरी तय हुई है वही ले के जावेंगे."

ठाकुर को मिलाने के बहाने तीनों को ले जाकर एक कोठरी में बंद कर दिया गया.

रामलखन का बाप धीसू सुनते ही भागा. पीछे-पीछे भागे और सब.

नानपुरा के राजपूत भी बंदूक लेकर राजपुर पहुंच गये—मुसीबत में पड़े एक भाई का साथ देने का सवाल था. सबके दिलों में एक ही अरमान मचल रहा था कि किसी तरह जल्दी से जल्दी इन हरिजनों को ऐसा सबक सिखाया जाये जो उन्हें इस जनम में तो कम से कम जरूर याद रहे.

दूर से ही भीड़ को आते देखा तो आव देखा ना ताव, दाग दी गोली—"धांय-धांय."

धीसू की किस्मत, बच गया. भागा उल्टे पांव पांच कोस दूर संग्राम समिति के दफ्तर, बाकी वहीं रुक गये.

बंदूक वाले राजपूत छत पर चढ़ गये. उस कोठरी की छत पर जहां इस मुसीबत की तीनों जड़ें कैद थीं. बाहर जमा भीड़ न बंदूकें देखकर डरी, न धांय-धांय सुनकर. अब क्या करें? उन्होंने रोशनदान में नालियां लगा दीं, "आगे बढ़े तो भून-कर रख देंगे तुम्हारे तीनों साथियों को."

मजदूर किसान संग्राम की समिति की शाखाएं गांव-गांव में फैली थीं. जैसे-जैसे खबर मिलती मजदूरों के जत्थे राजपुर की तरफ मुड़ लेते—"निहत्थों पर गोली की धमकी . . .गांधी के देश में? राम. . .राम. . ."

रास्ते में जो जिसको मिला उठा लिया, रोड़ा, कंकड़, पत्थर, ईंट, खपच्ची, बांस. इनसे क्या कर पायेंगे यह सोचने का समय नहीं था. . .सामर्थ्य भी नहीं. पीठ पर रेत लेकर समुद्र पाटने की कोशिश में लगी गिलहरी सोच-विचार में लग जाती तो सीता को शायद रावण की नगरी में ही सारा जीवन बिताना पड़ता.

सब तरफ से उमड़ी पड़ रही भीड़ को देखा तो छत पर चढ़े वीरों के हाथों के तोते उड़ गये. बंदूकें अपने आप जमीन से आ लगीं. इंसान के हठीले मनोबल के आगे ताकत हमेशा झुकी है, देर-सबेर. कुछ ही देर पहले तीन निरीह लोगों को मृत्युदंड सुनाने वाले शेर बहादुर नानपुरा भागकर अपनी-अपनी मांद में जा छुपे.

पर दो जमींदारों को भीड़ ने घर दबोचा. जो जिसके पास था दे मारा. जानलेवा बंदूकें तो उनके पास थी नहीं. कंकड़-पत्थर की मार से मांस यहां-वहां से फटा. दस-पांच कतरे खून के बहे.

रात गये गांव में पुलिस भी आ गयी. अब रात भगवान ने बनाई है आराम करने के लिए. ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर जीप का सफर. . .जोड़-जोड़ दर्द कर रहा था. तय हुआ कि जो भी करना है अब तो सुबह ही होगा.

अगले दिन काफी गिरफ्तारियां हुईं—चार ठाकुर लोग पकड़े गये, पंद्रह हरिजन. कानून को अपने हाथ में लेने का हक किसी का भी नहीं बनता. तीनों कैदी आजाद किये गये तो भीड़ ने उन्हें कंधों पर बिठाकर गांव भर में जुलूस निकाला

—"रामलखन जिंदाबाद ! परकासी जिंदाबाद! बालू जिंदाबाद! संग्राम समिति जिंदाबाद."

रामलीला मैदान में इकट्ठी हुई भीड़ को दारोगाजी ने बताया कि गरीब हरिजनों पर सदियों से हो रहे अत्याचार को सरकार अब किसी भी हालत में एक दिन भी बर्दाश्त नहीं करेगी. स्वतंत्र भारत में सब एक हैं, सब बराबर हैं. लेकिन मुट्ठी भर लोग देश में अभी भी ऐसे हैं जो विदेशी ताकत के बहकावे में आकर अपने स्वार्थों के लिए छोटे-बड़े, ऊंच-नीच का भेदभाव बनाये रखना चाहते हैं. सरकार ऐसे लोगों का सफाया करने के लिए जल्दी ही कड़ा कानून बनाने वाली है. फिलहाल राजपुर में ही एक पुलिस चौकी तथा एक खंड विकास केंद्र खोलने का फैसला किया गया है जिससे हरिजन भाइयों की परेशानियां का तुरंत निपटारा किया जा सके.

तालियों की गड़गड़ाहट के साथ "प्रधानमंत्री जिंदाबाद, मुख्यमंत्री जिंदाबाद, दारोगाजी जिंदाबाद!" के नारे बड़ी देर तक हवा में तैरते रहे.

खंड विकास अधिकारी कल्याण बाबू कर्मठ भी थे, जोशीले भी. अगले ही दिन से गांव वालों को कार्यालय में आकर अपनी-अपनी मुश्किलें सुनाने के लिए आमंत्रित करना शुरू कर दिया. अब गांव वाले ठहरे मेहनत-मजदूरी करने वाले. काम पर जायें या बाबू साहेब के आगे अपना दुखड़ा रोयें. तिस पर ठहरे ठेठ अनपढ़ गंवार कि पूरी रामायण सुनाये बिना ये भी ना बता पायें कि राम जी कौन थे और सीता मैया उनकी क्या लगती थीं. सयाने सिर फिर जुड़े. तय हुआ कि रामलखन को ही बाबू साहेब से बातचीत करने की जिम्मेदारी सौंपी जाये. उससे ज्यादा अच्छी तरह कौन उनकी बात कह पायेगा?

रामलखन तो पैदा ही जैसे अपने लोगों के दु:ख-दर्द बांटने को हुआ हो. बाबू साहेब तक गरीबों की कहानी ही नहीं पहुंचाई, संग्राम समिति का एक दफ्तर भी अपने गांव में खुलवा लिया. फिर रात-दिन एक कर के दफ्तर की इमारत बनने लगी. दुमंजिली इमारत. नीचे दफ्तर, ऊपर रामलखन के रहने का इंतजाम. रात-दिन तो भाग-दौड़ करनी पड़ती है—कभी किसी के लिए, कभी किसी के लिए. डंगर टोले से तो आने-जाने में ही आधा दिन बर्बाद हो जाता है.

संग्राम समिति का पक्का इंतजाम अपने यहां हो गया तो गांव के दु:ख दलिद्दर हमेशा के लिए कटे ही समझो. सामने से आकर टक्कर लेने का दम ठाकुरों में भी नहीं होगा. अभी तो खैर पिछली मार ही काफी दिन याद रहेगी.

काम की तो हद नहीं थी. कहां से शुरू करें यही तय करना आसान था क्या? अकेला रामलखन क्या-क्या करे? बालू और परकासी 'सिकरिटरी' बनाये गये.

यह तो निश्चित था कि सरकारी रेट से कम पर काम नहीं होगा. पर अगर कोई जोर-जबर्दस्ती करने लगे—धोखा-फरेब करने लगे? बिंदेश्वर ठाकुर की तरह? तब तो फिर वही मुसीबतें! वही गोली-कारतूस. . .उस बार तो कहो टोले वालों को बखत रहते भनक पड़ गयी और वे हवेली की तरफ दौड़ लिए, नहीं तो उस दिन क्या इन तीनों की मिट्टी भी हाथ आनी थी. जिंदगी भर रोते-कलपते रह जाते और यह भी न पता चलता कि औलाद मरों में है कि जिंदों में.

बाबू साहेब ने सुझाया कि समिति की मार्फत ही लोग काम पर जायें. जिसको काम करना हो वह समिति से कहे. इससे पता रहेगा कि कौन किस दिन किसके खेत पर गया. बात पते की थी. एक-दो छोटी-मोटी मुश्किलें जरूर थीं—जैसे इस काम के लिए समिति के दफ्तर में एक रजिस्टर रखना पड़ेगा. जिसमें एक जने को हर सुबह उन सबके नाम चढ़ाने होंगे जो काम पर जायेंगे. सरजू ने खुशी-खुशी हामी भर दी कि वह ये काम कर लेगा. छठी जमात पास था. अड़ोस-पड़ोस की चिट्ठी-पत्री बांचता ही था. उसकी भलमनसाहत कि वह राजी हो गया. लेकिन जाहिर है कि वहां बैठकर नाम दर्ज करेगा तो मजदूरी नहीं कर पायेगा. तो क्या उसके बच्चे भूखों मरेंगे? टोले वालों की भी तो कोई जिम्मेदारी थी.

तय हुआ कि मजूरी में से दस परसेंट सब जने समिति के दफ्तर में जमा करायेंगे. कागज, रजिस्टर, कलम, दवात का ही कितना खर्च बैठ जायेगा. पर लोग ठहरे अंगूठा छाप. यही ना जानें जोड़-बाकी क्या होता है, परसेंट तो दरकिनार रहा. परकासी और बालू को ही खजांची का काम भी संभालना पड़ा. आखिर किसी को तो करना ही था. सैकड़ों बरसों की दलदल से निकलना हंसी-खेल तो नहीं था. वो भी तब, जब किनारे खड़े लोग हाथ बढ़ाकर बाहर खींचने की जगह उलटे वापस धक्का दे देने पर आमादा हों.

रामलखन मजदूर भाइयों में जोत जलाता घूम रहा था. अंधेरे जहां रहने के सदियों से आदी हो गये हों वहां से आसानी से जायें कैसे? वे घर भी तो अंधेरों को नहीं छोड़ते थे. रोशनी की चकाचौंध में मिचमिचाती आंखों को अपनी ही चीजें पहचाननी मुश्किल हो जातीं. पर रामलखन डरने वाला जीव नहीं था, हार मानने वाला भी नहीं. महीनों-महीनों घर से बाहर रहता—मानो घर की परिभाषा ही बदल गयी हो उसके लिए. हर गली में उसे अपने ही बच्चे खेलते दीखते, हर खटिया पर अपने ही भाई-बापू बिराजते. जहां भी जाता भीड़ की भीड़ यों उमड़ पड़ती जैसे किसी बड़े नेता के दरशन को जा रही हो. गेंदे के फूल नहीं, पर गद्गद् मन के आशीष और जुड़ा गयी आंखों के विह्वल भावों से लदा-फंदा रामलखन विदा लेता तो लगता उन्हीं का एक प्यारा बेटा, एक प्यारा भाई उन्हें छोड़कर जा रहा है. उसकी एक एक बात को वे गांठ में बांध लेते. . .खूब कसकर.

अब मुट्ठी भर सत्तू और पाव-डेढ़ पाव खेसड़ी दाल के बदले वे धनी काश्तकारों के लिए न तो कुएं से पानी भरेंगे, न ही द्वार-देहरी झाड़ें-बुहारेंगे. काम जी तोड़ करेंगे तो मजूरी भी पूरी लेंगे. आखिर हराम का तो खाते नहीं. प्राणों का जो मोह उन्हें आज तक भद्दी से भद्दी गाली और बुरे से बुरा सलूक भी चुपचाप बर्दाश्त करने पर मजबूर करता रहा—वही मोह रामलखन सरीखे नौजवान बेरहमी से तोड़ रहे थे—"यह भी कोई जिंदगी है? ढोर डंगर से भी बदतर. मानुस

योनि में पैदा हुए हैं. . .या तो मानुसों की तरह इज्जत-आबरू से जीयेंगे नहीं तो मर जायेंगे."

धीरे-धीरे लगने लगा कि सूरज अपना पक्षपाती रवैया छोड़ रहा है. हवेलियों की तरफ जाते हुए थोड़ा-सा उजाला वह खपरैल की झोंपड़ियों में भी छोड़ जाता. सूरज की देखा-देखी बयार का भी रुख बदल गया. गालों की चिपकन कुछ कम हुई तो चीथड़ों से झांकते शरीरों को भी लाज लगने लगी. सांझ ढले चूल्हों से निकलता धुआं, बर्तनों की खनखनाहट, सिकती रोटी की गंध, एक और ले लेने की मनुहार. . .सब कितना भला-भला लगता.

रामलखन भी शाम को टोले की तरफ आता. बातों का सिलसिला चालू होने पर समय का भी खयाल नहीं रहता. रामलखन की महतारी ने नये घर में जाने से साफ इंकार कर दिया था—"हम तो लला यहीं भले." गोबर से लिपी-पुती माटी के बिना उसे नींद ही नहीं आती थी. धीसू फिर भला कैसे जाता! शर्मा-शर्मी बहू को भी वहीं ठहरना पड़ा. वैसे भी रामलखन का क्या ठिकाना?

कुछ दिनों में गांव वालों के सिर पर काली घटा फिर मंडराती दिखाई दी. यकायक काम में मंदी आने लगी. कहां तो पहले सौ लोग भी कम पड़ते थे, पर अब मुश्किल से तीस-चालीस मजदूरों को काम मिल पाता था. जमींदार ठाकुर खेतों में धड़ाधड़ मोटरें लगवा रहे थे. कई ट्रैक्टर और कटाई की मशीनें भी आ गयी थीं, जिनसे वे लोग अपना काम तो करते ही करते, दूसरे के खेत में भी किराये पर चला देते. खर्चा एक मुश्त जरूर हुआ पर दुहरा लाभ—काम जल्दी भी होगा और सिर चढ़े लोगों की अकल भी ठिकाने आयेगी. कुछेक ठाकुरों ने खेत यों ही छोड़ दिये थे—साल-दो साल फसल न हुई तो कौन अकाल पड़ जायेगा. जमीन पड़ी पड़ी उपजाऊ ही होगी, पर धमकियों में आने वाले तो वे हर्गिज नहीं.

लेकिन इतने भर से ही ठाकुरों के मन की आग ठंडी नहीं हो रही थी. रामलखन अब भी उनके कलेजे में कांटे की तरह गड़ रहा था.

मौत का खौफ ही मन से निकल जाये तो इंसान क्या कुछ न कर गुजरे, जोश के इस सर्वथा नवीन बलवले से समाज का तथाकथित ऊंचा तबका घबरा उठा. आज आग बाहर लगी है, कल उनके घरों में भी लग सकती है. रोटी पकाने वाला न आया तो वे खायेंगे क्या, धोबी घाट पर न गया तो पहनेंगे क्या, माई चूल्हा-चौका न करेगी तो बर्तनों का क्या होगा? सबको अपना विनाश सामने नजर आने लगा. बांध एक बार टूटा तो हरहराती नदी के वेग को कौन रोक सकेगा? बुद्धिमानी इसी में है कि बांध को रोके रहो, नदी को यहां-वहां से काटकर बहाव ही रोक दो.

यों कदम-कदम पर बराबरी की बात करना, भोले-भाले लोगों को उल्टी-सीधी पट्टी पढ़ाना, किसलिए? दंगा-फसाद भड़काने के लिए ही तो? सरकार ने न्यूनतम मजूरी निर्धारित की तो क्या इसलिए कि कुछ नेता किस्म के लोग जनता को भड़कायें, अपना उल्लू सीधा करें?

सदियों से शासन करते आये लोगों ने कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं. शासन किया था तो किसी बूते पर ही. उनकी ढिलाई और नेकमिजाजी का नाजायज फायदा उठाकर गली-गली में मेंढक टर्राने लगे, बिल्लियों की देखा-देखी चूहे भी गुर्राने लगें, तब तो कुछ करना ही पड़ेगा. कानून अभी अंधा नहीं हुआ है—सब देखता है, समझता है. बेजुबानों को जुबान देना परमपिता परमेश्वर की कार्यवाही में दखलअंदाजी है. देनी ही होती तो वह खुद ही न दे देता. हम अदने इंसान क्या उससे भी बढ़कर समझदार हो गये? लोगों में न्यूनतम मजूरी मांगने का साहस जुटाने लगे? क्या भगवान नहीं जानता ठीक क्या है, गलत क्या ? यही बात थी तो पृथ्वी पर भेजने से पहले चुटकी भर हिम्मत और बुलंदगी इनके कलेजों में वह खुद ही नहीं डाल देता?

पर रामलखन को तो कुछ सूझता ही नहीं था—ना भगवान का डर, ना भगवान के भेजे ठेकेदारों का. रात-दिन बस एक ही रट—बहुत दिन जी लिए मर-मर कर. अब तो फैसला होकर ही रहेगा.

फैसला जरूर हुआ. दरवाजे पर दारोगाजी को आया देखकर धीसू के हाथ से चाय का गिलास गिरते-गिरते बचा. उनके पीछे ही कई सिपाही जीप में से सफेद कपड़े में लिपटा एक शव उतार रहे थे. टोले के करीब-करीब सब लोग जमा हो गये—"आपने क्यूं सुबा-सुबा तकलीफ की सरकार. हुकुम करते हम खुदै हाजिर हो जाते." पता चला इलाके के डाकुओं से मुठभेड़ में रामलखन जाता रहा. जंगल में उसकी लाश बरामद हुई है. "उस बहादुर ने मरते-मरते अपने खाली हाथों से ही दो डाकुओं को जख्मी कर दिया, मगर डाकुओं के पास तो बंदूकें थीं. . ." सरकार ने उसकी बहादुरी पर खुश होकर पांच सौ रुपया उसके परिवार को देने की तत्काल घोषणा कर दी. दारोगाजी ने कई-एक कागजों पर धीसू का

प्रकाशक का प्रतिशोध

चित्रकार हर्शफेल्ड के पास उसके मित्र एच. जे. पेरेलमैन की पहली पुस्तक के पहले संस्करण की एक प्रति है, जो वह हर किसी को बड़े शौक से दिखाया करता है.

पुस्तक का नाम है–'डान गिसबर्ग का प्रतिशोध.' वह सन् 1926 में छपी थी. और उसकी विशेषता यह है कि प्रकाशक की गलती से उसमें लेखक का नाम नहीं छपा है. □

—प्र. : सुखबीर

अंगूठा लगवाया था. जिससे पैसा जल्दी ही मिल सके.

डंगर टोले में कोहराम मचा हुआ था. कोई अपने सगे-संबंधी की मौत पर भी इतना न रोया होगा. लोगों के आंसू थमने में ही नहीं आ रहे थे. दारोगाजी सबको हिम्मत बंधाते हुए चले गये.

असली हिम्मत बंधाने वाला तो हमेशा के लिए ही चला गया था. "पूत हो तो ऐसा. . ." मिट्टी उठाने का इंतजाम करते-करते भी लोग कह उठे. टोले भर के चूल्हे ठंडे पड़े रहे.

भारी मन से लोग उठे. हाथ पर हाथ धर कर बैठेंगे तो उसकी आत्मा को कष्ट ही होगा–वो तो जाते-जाते भी बहादुरी दिखा गया.

देखते ही देखते चौक में रामलखन की एक मूर्ति बन गयी जिसको खुद दारोगाजी ने सबके सामने माला पहनायी. धीसू राम का परिवार समझ नहीं पाया कि सबके साथ तालियां बजाये या उमड़ते आंसुओं को बहने दे.

बातचीत करने के लिए काफी मसाला लोगों को मिल गया. कहीं लोग रामलखन की हिम्मत की तारीफ करते मिलते तो दो-एक यह भी कहते पाये गये कि डाकुओं से मुठभेड़ की तो कहानी बनायी है, असल में तो पुलिस से मिलकर ठाकुरों ने उसे मरवा दिया. जितने मुंह उतनी बातें. पर बातों से पेट तो नहीं भरता. इधर कई-कई दिन तक काम की तलाश में घूमने के बाद भी निराशा हाथ लगती. गरीबी में जन्मे-पले शरीर भी कुछ दिन भरपेट खाना पाकर अंधेरों से डरने लगे.

धुला-पुछा मन दलदल में लौटने के खयाल मात्र से घबराने लगा. दलदल अब गंधाने भी तो ज्यादा लगी थी.

धीसू हिम्मत करके एक दिन चौकी पर गया था . "वो. . . वो. . .सरकार!" हाथ जोड़कर अटकते-अटकते उसने कहा.

"क्या है?" दारोगाजी कुछ जरूरी कागज देख रहे थे.

"वो. . .वो. . .वो.लखनवा वाला पैसा सरकार. . ."

"ओ. . .तो पैसा मांगने आया है. . .कुछ भेजे में अकल भी है बुड्ढे कि मामला एकदम साफ है?" दारोगाजी बोले.

"सरकार हुकुम दें तो दो-चार डंडा दे दें साले को? सब अकल अपने आप आ जायेगी. पइसा मांगने आये हैं बुड्ढ!" बाहर चारपाई पर बैठे एक सिपाही ने ताश बांटते हुए पूछा.

"तेरी उमर का खयाल कर के छोड़े दे रहे हैं. बुड्ढे जा, भाग जा. . . बेवकूफ की औलाद. . . फिर कभी इधर दिखाई दिया तो देखना. . ."

धीसू बिना पीछे देखे एक सांस में भागता चला आया था . . .एक वहशी-सा ठहाका बड़ी देर तक उसके कानों में बजता रहा. डर के मारे उसने किसी से इस बात का जिक्र भी नहीं किया. बस रामलखन की मूर्ति के पास बड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहा, "देख रहे हो बचवा?" आंखें पोंछते हुए वह एक-दो बार बुदबुदाया. जवाब देता भी तो कौन?

फिर वही अंधेरे, वही निराशा, वही भूख. . .

हल किस मुश्किल का नहीं होता? तय हुआ बारी-बारी लोग काम पर जायेंगे जिससे सब पेट एक बराबर भरें. मोर्चा छोड़ देने का तो सवाल ही नहीं था.

सरजू, परकासी और बालू बारी-बारी से लोगों को काम पर भेजने की ड्यूटी देने लगे. पूरी चौकसी करनी पड़ती थी. कौन किस दिन गया, किस दिन नहीं—लेखा-जोखा रखना आसान था क्या? काम में मंदी दिन-ब-दिन आती चली जा रही थी.

हमेशा की तरह एक शाम मजदूर जब अपना दस.परसेंट कटाने के लिए समिति के दफ्तर आये तो सरजू ने सबसे करीब-करीब आधा झोला ही टोकरियों में उलटवा लिया. कुछ अविश्वास और कुछ नासमझी में मजदूरों की निगाहें ऊपर उठीं तो झिड़की भरा जवाब पहले से ही तैयार था, "हमारे बाल-बच्चों के पेट नहीं हैं? हम क्या तुम्हारे नौकर लगे हैं जो दिन भर मुफ्त में खिदमतगारी करेंगे?"

विरोध में जबान खुलती इससे पहले ही दूसरी झिड़की कानों में पड़ी–"चलो, अपना रास्ता नापो. यों टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो? काम करनेवालों की कमी नहीं है. . ."

परकासी और बालू तक बात को पहुंचाना जरूरी था. रामलखन उन्हीं पर तो सारी जिम्मेदारी छोड़कर गया था. उनके घर गये तो पता चला आजकल वे दफ्तर में ही रहते-सोते हैं. आखिर वहां दस तरह के कागज-पत्तर रखे हैं. उनकी चौकसी करनी पड़ती है. किसी का आजकल क्या भरोसा?

दफ्तर के गेट पर ही चौकीदार ने रोक दिया, "अब क्या काम है? दफ्तर बंद हो चुका."

"परकासी और बालू से मिलना है. बाहर बुलाओ." लोग उत्तेजित हो रहे थे.

"ये बखत साहेब लोगों की रोटी-पानी का है. . .कल आना." स्टूल पर से उठते हुए चौकीदार ने बताया.

"साहेब लोग?" साहब तो पहले खंड विकास के कल्याण बाबू ही कहलाते थे, पर वह यहां कहां? वह तो विकास के दफ्तर में रहते हैं और वैसे भी आजकल छुट्टी लेकर शहर गये हुए हैं. ये दूसरे साहेब लोग कौन हैं भला? कहां से आ गये? कब आ गये? परकासी और बालू कहां चले गये? लोग

पृष्ठ 90 पर जारी

मुखौटोंवाली दुकान

रामलाल

क्या एक पुरुष एक ही वक्त में दो स्त्रियों से प्यार कर सकता है !....एक-दूसरे के करीबतर होने के लिए क्या महज फूलों के उपहार या आंखों में जलते हुए मुहब्बत के दीये ही काफी होते हैं ? उन मूल्यवान क्षणों और चीजों को रेखांकित करती कहानी जिन्हें प्रायः हम देखकर भी अनदेखा कर देते हैं—

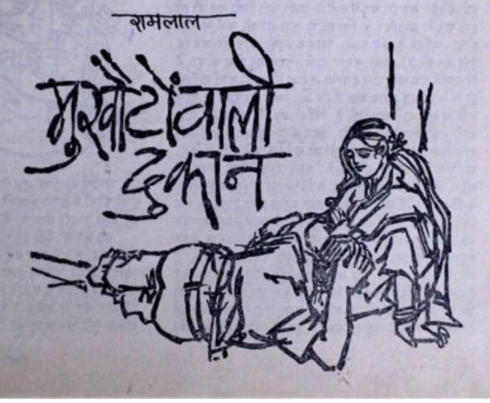

अधिकतर घाव समय के साथ-साथ भर जाते हैं, अपने पीछे कोई निशान भी नहीं छोड़ जाते.

यह बात सरिता के पति ने कई बार हंसते-हंसते कही है. पता नहीं उसके मन में क्या है, यह वह आज तक नहीं जान पायी. उसके साथ रहते हुए पांच वर्ष बीत चुके हैं. उसे इस बात का भी विश्वास नहीं कि महिंद्र नारंग ने कभी किसी से वाकई प्रेम किया है. पुष्पा उसकी जिंदगी में बीस साल पहले आ चुकी थी. उससे भी वह कभी प्रेम नहीं जताता. सरिता तो बाद में आयी है. उसके साथ भी उसका विवाह लवअफेयर का नतीजा नहीं है. बेशतर लोग शादी के बाद ही मुहब्बत हो जाने का दावा करते हैं. नारंग ने तो यह दावा भी अभी तक नहीं किया है. वह दोनों पत्नियों की मौजूदगी को घर के बहुत जरूरी सामान जैसा समझता है. फर्नीचर, फ्रिज, टी. वी. कालीन, मोटर आदि और जिस तरह वह इन सारी चीजों की देख-रेख करता है उसी प्रकार पुष्पा और सरिता का भी खयाल रखता है. दोनों की सेहत ठीक रहनी चाहिए. दोनों को आला से आला कपड़े और गहने आदि मिलते रहने चाहिए. वे अपनी मनपसंद गिजायें भी पूरी आजादी से खा सकें और अपने अपने सगं-संबंधियों से भी बिना रोक-टोक मिल सकें. वह दोनों के साथ इस कदर नम्रता से पेश आता है कि उन्हें एक क्षण के लिए भी यह महसूस नहीं होता कि वह उन पर दिल व जान से फिदा नहीं है.

सरिता नारंग ने अपने पति के जीवन में आने से पहले उसकी सारी विशेषताओं का अंदाज कर लिया था. यही सोचा था कि वह उसके साथ पूरी तरह संतुष्ट रहेगी. जब उसे यहां तक विश्वास दिलाया गया कि उसकी पहली पत्नी पुष्पा नारंग उसे अपनी सौत समझकर ईर्ष्या नहीं करेगी तो वह उस समझौते को क्यों न स्वीकार कर लेती! उसे भी एक पति की सख्त जरूरत थी. ऐसे ही एक पति की जिसके पास सब कुछ हो और वह सब उसे मिल चुका था. लेकिन वह हर खूबसूरत और जवान गृहणी की तरह यह भी घात लगाये रही कि धीरे-धीरे कब वह अपने मर्द पर पूरा कब्जा कर लेने में कामयाब हो जाती है जो उम्र में उससे तीस वर्ष बड़ा है. बड़ी उम्र के पति ज्यादा भूखे होते हैं. वे अपनी जवान बीवियों पर सब कुछ लुटा देते हैं और वह उसकी पहली पत्नी को भी किसी रोज एक अलग कोने में डाल देने में सफल हो जायेगी. पर ऐसा काफी अर्से तक न हो पाया. पांच साल बीत गये. सरिता को यह देख-देखकर बड़ी हैरत होती थी और बड़ी तकलीफ भी कि उसके आने के बाद वह पहली पत्नी के ज्यादा करीब हो गया है. अब इस घर में उसकी हैसियत एक जूनियर वाइफ की ही जैसी है. इस वास्तविकता को बौद्धिक रूप से स्वीकार करने के लिए वह कभी तैयार नहीं हो सकती. दरकिनार यह उसके लिए एक शिकस्त ही होगी. उसकी ईगो के लिए एक चुनौती, इसी कशमकश से बचने के लिए उसने फिर से यूनिवर्सिटी में लेक्चररशिप कबूल कर ली थी जिसे त्याग देने का निर्णय लेकर वह इस घर में आयी थी. अब वह इसी बहाने कुछ घंटों के लिए इस वातावरण से दूर हो जाती है, युनिवर्सिटी ही की मसरूफियत ने धीरे-धीरे उसे एक और राह पर डाल दिया है, जिसमें धैर्य और ठहराव भी है और सारी बातों पर गौर करने के लिए एक विवेकशील दृष्टि से प्रेरणा भी मिल जाती है. जब कभी वहां कोई ऑफिशियल फंक्शन होता है तो महिंद्र नारंग उस के साथ जरूर जाता है. कभी-कभी वह उसे महज ड्रॉप करने या पिकअप ही करने के लिए चला आता है तो उसे अपना अस्तित्व बहुत ही महत्वपूर्ण लगने लगता है और वह अपने साथी टीचर्स और स्टुडेंट्स के सामने किसी की संपत्ति होने के अहसास में मुब्तिला हो जाती है. उन क्षणों में वह यह बात अक्सर भुला बैठती है कि अपने घर के भीतर वह क्या है.

घर लौटकर वह एक तकलीफदेह रूटीन में फंस जाती है. एक उसका अपना कमरा है जहां उसकी शिक्षा संबंधी पुस्तकों से भरी हुई अल्मारियां हैं, एक आरामदेह सोफा है, राइटिंग टेबुल है जिस पर एक टाइपराइटर और एक बड़े आकर्षक शेड वाला लैंप पड़ा रहता है और उसी मेज के पास उसका एक चौड़ा पलंग पड़ा रहता है जिस पर वह अक्सर बेशतर अकेली ही सोती है. महिंद्र कभी-कभी अचानक आ भी जाता है तो अधिक समय तक नहीं रुकता. अपना काम करके चला जाता है. और उस कमरे के बाहर लंबा गोल बरामदा है और वहीं कई कमरों के बीच एक डाइनिंग रूम, जहां घर के सारे लोग निर्धारित समय पर गांग की आवाज सुनते ही नाश्ते और खाने के लिए जमा हो जाते हैं और उसके बाद फिर अपने अपने कमरों में लौट जाते हैं. इतने बड़े घर के सारे नौकर-चाकर भी घर के उसूलों और कायदों के साथ सख्ती से बंधे रहते हैं. प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष नियुक्त वेतन पाता है और एक विशेष नियुक्त ड्यूटी बजा लाता है. वे सब भी इस सर्व-पारिवारिक प्रशासन से पूरी तरह संतुष्ट नजर आते हैं. इस घर के दोनों एल्सेशियन तक बड़ी खामोशी से घूमते रहते हैं या जंजीरों से बंध जाने के बाद पड़कर सो जाते हैं. सरिता ने यहां कभी किसी की ऊंची आवाज नहीं सुनी है. किसी को किसी बात पर प्रोटेस्ट करते हुए नहीं देखा है. प्रोटेस्ट तो खुद उसने भी कभी नहीं किया लेकिन उसके भीतर एक विरोध यकीनन मौजूद है जिसे भले ही वह दबाकर रखे रहती है. किसी से कभी कुछ नहीं कहती.

कभी-कभी वह सोचती है, महिंद्र ने उसके साथ शादी क्यों की है? वह इस घर में नहीं ले आयी गयी होती तब भी तो इस घर के प्रतिदिन के नियमों में जरा-सा भी फर्क न पड़ा होता. महिंद्र ने उसे पत्नी बनाकर अपनी कौन-सी जरूरत पूरी कर ली है? उसके घर में इतने ज्यादा शो पीस मौजूद हैं कि उनमें एक और कम इजाफा न हुआ होता तो कोई नोटिस ही न लेता. यह अलग बात है कि वह उसके मेहमानों के साथ बड़ी अच्छी बातें कर लेती है. पॉलिटिक्स, समाजशास्त्र और कभी-कभी लिट्रेचर पर भी. अगर कोई मेहमान वाकई ऐसी रुचि दिखाता है तो. मेहमानों में भी कई प्रकार के लोग होते हैं. खालिस व्यापारिक प्रवृत्ति के, ऊंची राजनीतिक सतह के और प्रोविंशियल-ब्यूरोक्रेसी से निकटतम संबंध रखनेवाले. कभी-कभी कोई मंत्री या राज्यपाल महोदय भी निमंत्रित कर लिये जाते हैं. उस समय अपने मेहमानों के साथ वार्ता में मगन या उनके बीच उठते-बैठते देखकर नारंग बहुत प्रसन्न नजर आता है. लेकिन वह उसे बार-बार इस प्रकार हर्षित करके भी उस पर अपना पूरा अधिकार नहीं जमा पायी है. वह मेहमानों के विदा होते ही फिर वही कुछ बन जाता है. जैसा कि वह है. एक प्रतिष्ठित गंभीर, सभ्य तथा संपन्न लैंड-लॉर्ड जिसकी जायदाद बहुत बिखरी हुई है. दो बड़े-बड़े लॉन उसने आवास या व्यापारिक बिल्डिंग्स में परिवर्तित कर दिये हैं. बहुत कुछ बेच भी चुका है. सीलिंग के डर से. शायद सीलिंग ही के डर से महिंद्र ने उसके साथ शादी की थी कि जायदाद का एक और पार्टनर भी हो.

उसे याद है एक दिन महिंद्र ने उसे सुबह-सवेरे अपने कमरे में बुला लिया था. उस वक्त वह एक मेज के सामने बैठा नियमानुसार शेव बना रहा था. शेव बनाते-बनाते वह उसके साथ जायदाद के बारे में भी गुफ्तगू करता रहा था. जिस बिल्डिंग को उसने एक कमर्शियल बैंक के हवाले कर रखा था, उसी को वह उसके नाम कर देना चाहता था. वह जायदाद की इतनी भूखी नहीं थी इसलिए वह उसकी सारी बातचीत भी नहीं सुन सकी थी. उसकी नजरें शेविंग क्रीम की ट्यूब पर टिकी रही थीं जिसे उसने अनजाने में ही उठा लिया था. ट्यूब में आधी से कुछ कम ही क्रीम रह गयी होगी. लेकिन उसकी बाहरी सतह पर कोई शिकन नहीं आयी थी. जिस तरह वह जिंदगी के दूसरे मामलात में बहुत ज्यादा सावधानी बरतने का आदी था वैसी ही सावधानी वह ट्यूब जैसी छोटी-छोटी चीजों को इस्तेमाल करने में भी बरतता था. ऐसी ही शेविंग-क्रीम की एक ट्यूब उसने वर्षों पहले आदर्श के पास भी देखी थी जो बिल्कुल मुड़ी-तुड़ी हुई थी. और उसके पास जो पेस्ट की ट्यूब थी उसकी भी वैसी ही गत बनी बनी हुई थी. उसने बनावटी गुस्से से आदर्श से पूछा था, "ओफ्फो, तुम कितने वहशी हो. इतनी नाजुक चीजों के साथ भी ऐसा बेरहमी का बरताव करते हो !"

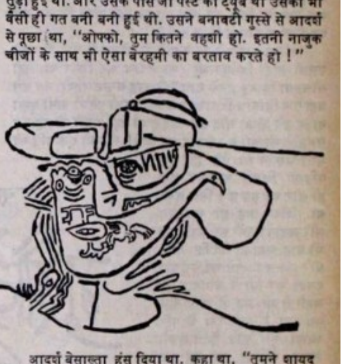

आदर्श बेसाख्ता हंस दिया था. कहा था, "तुमने शायद इन्हीं चीजों में अपने-आपको देख लिया है. सच कहना डर गयी न! कहीं तुम्हारे साथ भी मैं ऐसा ही सुलूक न करूं!"

यह चुप-सी बैठी रह गयी थी. आदर्श ने जो कुछ कहा था, गलत नहीं था. लेकिन यह भी तो एक सच था कि वह बहुत ज्यादा वहशी वाकया हुआ था. वहशी और मतलबपरस्त. जब उसने आदर्श के सामने शादी का प्रस्ताव रखा तो वह अपने परिवार भर के बखेड़े ले बैठा, "मेरा फलां-फलां भाई बेहद दकियानूसी खयालात का है. मेरी फलां मौसी मेरे खिलाफ

कभी माफ नहीं करेंगे. हो सकता है मेरा बेटा जो बेहद अबनॉर्मल स्वभाव का है मेरी जान ही ले ले. क्या तुम चाहती हो मैं मार डाला जाऊं? मेरे बगैर तुम मेरे घर में किसके भरोसे रहोगी? सोच लो."

यह सोच लेने में सरिता को ज्यादा देर नहीं लगी थी कि वह एक बहुत बड़ा सामाजिक कायर था. डैम सोसायटी कॉवर्ड. मिडल क्लास में बहादुर आशिक बहुत कम ही मिलते हैं. इस वर्ग का आदमी सिर्फ तमाशा देखता है. बड़ी-बड़ी इंटलेक्चुअल किस्म की बहसें कर लेता है और खुश भी रहता है. मुहब्बत करता है तो महज शगल के तौर पर. जिसमें किसी प्रकार की आशंका न हो. हो भी तो वह उसकी महबूबा ही उठाये. वह एक अर्सा तक उसे एक रखैल समझकर उससे मिलता रहा था. जब भी चाहता उसके पास पहुंच जाता था. दो-चार रोज उसके साथ रहने के लिए टूरिस्ट लॉज में कमरा बुक करा लेता था. मासूम और भोली-भाली लड़कियों के लिए वह खेल बहुत बहुत दिलचस्प होता है. उसे वे एक एडवेंचर समझकर स्वीकार कर लेती हैं. क्योंकि उनकी प्रकृति में ही एडवेंचर करना होता है. बचपन से ही उन्हें यह अनुभूति हो जाती है कि वे अपने माता-पिता के साथ हमेशा नहीं रह पायेंगी. माता-पिता भी यही एहसास उन्हें हर वक्त दिलाते रहते हैं. उनसे बहुत ज्यादा स्नेह दिखाते हैं. बहुत अच्छा प्रशिक्षण भी कि दूसरे घर में जाकर हमेशा खुश रह सकें. अजनबी माहौल में एडजस्ट कर सकें. और उनका नाम भी रोशन अवश्य करें कि वे फलां घर की बेटी है. जो माता-पिता खुद उनके लिए रिश्ता नहीं ढूंढ़ पाते उन्हीं से यह आशा रख लेते हैं कि वे स्वयं अपना जीवन साथी तलाश कर लेंगी. इतने उदार होने के इशारे वे मौके-मौके पर देते रहते हैं. सरिता अपनी सोचों का एक समुंदर पार करके आदर्श तक पहुंची थी लेकिन उसका रवैया एक मछली के कांटे में फंसानेवाला हरगिज नहीं था. आदर्श भी एक मछली जैसा नहीं था. उच्चशिक्षा प्राप्त अधेड़ प्राध्यापक था.

उनकी भेंट यूनिवर्सिटी के एक सेमिनार में हो गयी थी और वे बहुत जल्द एक-दूसरे के फ्रेंड बन गये थे. आदर्श उसे लंबे-लंबे मुहब्बतनामे भिजवाने लगा था. उसके शहर में आ जाता तो उसके साथ घूमने-फिरने में कोई संकोच नहीं दिखाता था. उसकी बातों से ऐसा लगता जैसे वह अपने अतीत को बहुत पीछे छोड़ आया हो. उसके पीछे जो कुछ भी था—पत्नी, बच्चे, पूरी दुनिया, जिनसे दूर हो जाने के लिए सरिता के पास आ जाता है. सरिता ने उसे इसी हैसियत से स्वीकार कर लिया था. उससे मिलने के बाद उसने किसी नवयुवक के स्वप्न देखना त्याग दिया था. उसने समझ लिया था अब उसकी मंजिल यही मर्द होगा जो किसी रोज अचानक अपनी बीवी और बच्चों से अलग होने की समस्याओं पर उसके साथ सलाह-मशविरा करेगा. वह इस विषय पर उसके साथ बात करने के लिए जहनी तौर पर पूरी तरह तैयार थी. लेकिन आदर्श ने इस किस्म की वार्ता कभी न छेड़ी जिसके

उसे दुख भी होता था कि आदर्श उसी जैसी एक स्त्री को त्यागकर उसके पास आने के लिए तैयार नजर आता है जो उसके साथ पत्नी के रूप में कई वर्ष बिता चुकी है. वह उससे भी बड़ा स्नेह रखता है क्योंकि उसने कभी भूलकर भी अपनी ब्याहता स्त्री की बुराई नहीं की है. उसके बुने हुए स्वेटर, उसकी पसंद के खरीदे हुए वस्त्र आदि हर चीज वह उसे बड़े गर्व से दिखाया करता है और फिर सहसा ही चुप भी हो जाता है. जैसे वह इस कशमकश में फंसा हो कि वह इस दूसरी स्त्री की भी बहुत सी बातें पसंद करने लगा है. रहन-सहन तथा वस्त्र आदि की पसंदगी भी एक प्रकार का स्नेह ही होता है. स्नेह की एक प्राकृतिक और भावनात्मक अभिव्यक्ति. एक-दूसरे के दिल तक पहुंचने के कई रास्ते हैं, कई पगडंडियां और कई सीढ़ियां हैं. मर्द और औरत एक-दूसरे के लिए सिर्फ फूलों ही के उपहार नहीं लेकर आते, अपनी अपनी आंखों में प्यार के दिये भी जलाये हुए एक-दूसरे से नहीं मिलते, न हीं उनके लिए एक-दूसरे के करीबतर होने के लिए जिस्मों का आकर्षण, गर्मी तथा खुशबू ही काफी होती है. उसके लिए इनके अलावा और भी बहुत कुछ होता है. वही कुछ जो हर आदमी की जिंदगी के आस-पास होता है. आदर्श के आस-पास जितना कुछ था उसे सरिता समय-समय पर देखती तथा परखती रही थी. एक बार वह सब गहरी नींद में अपनी पत्नी का नाम लेकर पुकार उठा तो उसने चौंककर पूछा था, "तुमने अभी-अभी अपनी पत्नी को पुकारा न?"

आदर्श सहसा जागकर कितने क्षणों तक उसकी ओर देखता-सा रह गया था. अर्धचेतन की स्थिति में जैसे उसकी समझ में कुछ न आ रहा हो कि क्या उत्तर दे. फिर वह उसे वक्ष से लगाकर फिर से सो गया था. लेकिन वह सोचती रही कि आदर्श कितने बड़े असमंजस में फंसा हुआ है. वह उससे भी उतना ही प्यार करता है जितना अपनी पत्नी से. एक पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियों से भी प्यार कर सकता है और एक ही-सी तीव्रता से. जिस तरह वह अपने पुरुष साथियों से स्नेह रखता है. कई-कई पुरुष साथियों से स्नेह रखना उसके लिए सामाजिक समस्या नहीं बनती. . .लेकिन एक से अधिक स्त्रियों से मुहब्बत निःसंदेह एक समस्या बन जाती है. इस विषय में औरत भी स्वतंत्र नहीं है. यह बंधन बहुत पुराने हैं और स्वयं इंसान ही के अपने बनाये हुए हैं जिन्हें तोड़ने के लिए वह तरसता रहता है. लेकिन ऐसा कर नहीं पाता. आदर्श ने उसके साथ संबंध स्थापित करने के लिए एक ही रास्ते का प्रस्ताव रखा था—वे इसी तरह मिलते-जुलते रहें. लेकिन सरिता ने उस प्रस्ताव को रिजेक्ट कर दिया था.

एक दिन सरिता नारंग को अपनी पुरानी यूनिवर्सिटी से एक पत्र मिला जहां से उसने एम. ए. तथा पी. एच.-डी. की डिग्रियां ली थीं. वहीं लेक्चरर के तौर पर पढ़ाया भी था. वहां अब उसे वायवा के लिए जाना था. उसने सोचा यह एक अच्छा मौका है. माहौल थोड़ा-सा बदल जाएगा. उसने अपने हस्बैंड को बताया तो उसने फौरन इजाजत दे दी. उसके

जनता का साहित्य

▣ अज्ञेय

हमें लेखकों को नहीं, समालोचकों को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करना चाहिए. लेखक बंधन से परे है, और रहेगा. यह हम व्यक्तिवाद के नाम पर नहीं कहते; लेखक चाहे भी तो स्वयं बंध सकता है, पर अपनी रचनाशक्ति को नहीं बांध सकता, बांधने से वह मर जायेगी. समालोचक को ही शिक्षित किया जा सकता है कि वह संसार के प्रति अपना दायित्व समझे, और जनता के सामने वह लाये जिसकी उसे आवश्यकता है, वह रोके जो व्यर्थ है, हानिकारक है. जितना ही दबाव व्यक्ति पर बढ़ता जाता है, उतना ही समालोचक का उत्तरदायित्व भी बढ़ता जाता है—क्योंकि उतना ही शिक्षा का, परखने की शक्ति का महत्त्व जनसाधारण के लिए अधिक होता जाता है. और समालोचकों को शिक्षित करने के साथ-साथ उस वर्ग को भी शिक्षित करने की आवश्यकता है जिसके लिए साहित्य मांगा जा रहा है—जनता को. . . जनता को शिक्षित होना होगा कि वह प्रबुद्ध वर्ग से साहित्य न मांगकर स्वयं अपना साहित्य बनाये—ऐसा साहित्य जो उसके जीवन का प्रतिबिंब हो. □

—प्र: सैन्नी अशेष

लिए उसने हवाई जहाज में सीट भी बुक करा दी. जिस दिन उसकी फ्लाइट थी महिंद्र नारंग स्वयं उसे एयरपोर्ट पर पहुंचा गया.

अपने पति से कुछ दिनों के लिए दूर होकर उसे बड़ा सुकून महसूस हुआ. जैसे एक लंबी कैद के दौरान उसे पैरोल पर मुक्ति मिल गयी हो. उसे उसी माहौल में फिर लौट जाना होगा जिसमें अत्यंत घुटन थी.

युनिवर्सिटी के गेस्ट हाउस में जाकर उसे याद आया कि आज इक्कीस सितंबर है. कई वर्ष पहले इसी रोज वह आदर्श से एक टूरिस्ट लॉज में मिली थी. इस घटना को आठ वर्ष हो चुके हैं, उसके बाद भी वह उसे मिलती रही है. कभी-कभी उन्हें वही कमरा मिल जाता था जिसकी याद उसके मन से कभी नहीं निकल पायी. शायद इसलिए कि वह पहली बार एक लड़की से औरत बनी थी.

उसका जी चाहा उसे वही कमरा मिल जाये तो वह यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस में नहीं ठहरेगी.

इस रास्ते पर वह आदर्श के साथ कितनी बार आ चुकी है. दोनों ओर यूनिवर्सिटी के टीचरों के बंगले हैं. छोटे-छोटे लॉन और खुशबू बिखेरते हुए युक्लिप्टिस तथा रात की रानी के पेड़ ऊंचे-ऊंचे 'पाम' अपने पंख फैलाये और फूलों की क्यारियां और दीवारों से लिपटी हुई बेलें. कहीं चीचरों की साधारण वस्त्रोंवाली बीवियां. कोई जवान, कोई अधेड़

और इधर-उधर उनके खेलते हुए बच्चे. बीच-बीच में कहीं कहीं खेत और उनमें धान लगाते हुए किसान.

सड़क पर जो भी रिक्शा निकलकर गयी उसके चालक की ओर उसने चौंककर देखा था. शायद कोई उसे पहचानता हो अभी तक, जो उसे हॉस्टल से डिपार्टमेंट तक ले जाते थे. उसे कई रिक्शा चालकों के नाम याद हैं—सुदामा, रामबिलास, जहांगीर, निताई. वह पहाड़ी था. दारजिलिंग के इलाके का. उसे बहुत से बंगाली गीत याद थे. होस्टल की लड़कियां उसे विजिटर्स रूम में बुलाकर उससे गीत सुना करती थीं. वह गीत गाते-गाते रो उठता था, तो वे एक-दूसरे की ओर कनखियों से देख-देखकर मुस्कराने लगती थीं. कोई पूछ उठती, "अच्छा निताई दा, बोलो तो तुमार की कादो शोंगे भालो बाशा छालो? निश्चय ही छोलो न!"

(निताई तेरी पहाड़नें तुझे पसंद नहीं करती होंगी उसका पता बता तो हम तेरी सिफारिश कर सकती हैं.)

निताई अपनी आंखें पोंछते-पोंछते कह उठता था कि तुम क्या जानो प्रेम क्या होता है. एटा न कारूर सिफारिश चोले न! अच्छा तुम लोग एक गीत और शोनो. . .

जोबी तारे नाई चीनोगी
शेखो अमाई नेबे चीने
एई नोलो फालगनेर देने
जानी ने
जानी ने

(अगर हम उसे न पहचान पायें, क्या वह मुझे पहचान जायेगा? नये फागुन में, मालूम नहीं, मालूम नहीं. . .)

कभी-कभी उसके गीत सुनाने के बीच में ही अचानक सुपर दीदी पहुंच जाती. उनकी डांट-डपट पड़ते ही सारी लड़कियां अपने कमरों में भाग जातीं. फिर शामत बेचारे निताई की आ जाती. लेकिन वह किसी की शिकायत करने के बजाय सिर झुकाकर धीरे-धीरे गेट से बाहर निकल जाता.

सरिता को निताई दा पर बहुत तरस आता था. पता नहीं यह बात कैसे उसके मन में बैठ चुकी थी कि वह किसी पहाड़न-वहाड़न से इश्क नहीं करता है बल्कि उसे यूनिवर्सिटी ही की लड़कियां पसंद हैं. जो हर साल वहां आती हैं. कुछ वापस चली जाती हैं कुछ आइंदा चंद वर्षों के लिए रह जाती हैं. वह उन्हें कई-कई साल तक अपनी रिक्शा पर बिठाकर सड़कों पर भागता रहता है. उनमें से किसी के साथ भी उसका संबंध जुड़ जाने की संभावना नहीं होती. फिर भी वह उन सबको मन ही मन चाहता है. वे सब मिलकर एक पूरे अस्तित्व की भांति उसके मन में बसी रहती हैं. वह उस अस्तित्व का कोई एक नाम नहीं रख पाता. उसकी कोई एक मूरत भी नहीं बना पाता. बस एक कल्पना के ही सहारे वह जी रहा है और उसे गीत सुना-सुनाकर रिझाने की कोशिश करता रहता है.

सड़क के किनारे-किनारे चलते हुए सरिता ने छोटी-छोटी दुकानों की ओर देखा जहां वह अक्सर आया करती थी. नालंदा प्रोवीजन स्टोर, रवींद्र कला केंद्र, बसु वस्तु भंडार और बारी साल कैंप शाप, जिसके बूढ़े मालिक से लड़कियां

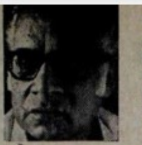

▣ रामलाल. जन्म : 3 मार्च, 1923.
—"कहानी की विधा मेरी यात्रा का एक दूसरा रूप है. अब तक मैं जितना कुछ लिख चुका हूं वह दूसरों के अलावा खुद अपनी तलाश करते रहने का भी एक रचनात्मक प्रयास है. मैं समझता हूं मैं आसपास की घटनाओं तथा आदमियों के अनेक रवैयों की पेशकश के जरिये आखिरी दम तक इस यात्रा को जारी रख सकता हूं."

निरोध और सेनेटरी टावल निसंकोच खरीद लाती थीं. वहीं पर एक छोटा-सा एयर कूल्ड टी-हाऊस और चमड़े से मढ़े बांस की मजबूत तीलियों के मूढ़ों की दूकान थी और उसे सहसा याद आता है, यहीं एक मास्क हाऊस भी होता था. जिसके अंदर विभिन्न जानवरों के अलावा दुर्गा मां, रावण, तथा अन्य शो-केसों में देवी-देवताओं के प्लास्टिक के बने रंग-बिरंगे मुखौटे सजे रहते थे.

सरिता उसी शॉप के भीतर घुसती-चली जाती है. मास्क हाऊस की मालकिन एक संथाली औरत है. एक कोने में शो-केस पर झुकी एक पत्रिका में छपे विदेशी जिप्सियों के चित्र देखने में विलीन हैं. वह ग्राहकों की ओर उसी समय नजर उठाकर देखती हैं जब वे उससे अपनी पसंद का कोई मास्क खरीदकर दाम पूछते हैं. इस मास्क हाऊस से आदर्श और उसने भी एक-एक मास्क खरीदा था और अपने-अपने चेहरे पर लगाकर खूब हंसे थे. मास्क के पीछे उनके व्यक्तित्व बिलकुल छुप गये थे. आज सरिता ने एक आसातीरी देवी का मास्क फिर पसंद किया है और उसके दाम देकर बाहर निकल आयी है.

वह टूरिस्ट लॉज को जानेवाली सड़क पर मुड़ती है. काउंटर पर एक बंगाली दादा नाक के नथुनों में जोशी चढ़ाकर अब छींकने के लिए तैयार नजर आता है.

दादा सिर घुमाकर अपने पीछे दीवार पर लगे 'की बोर्ड' की ओर देखता है. कई नंबरों पर चाबियां लटक रही हैं. कोई-कोई नंबर खाली है.

एक बेयरा बीच में बोल उठता है, "उन्नीस नंबरवाला पिसेंजर अभी नहीं आया. पर आयेगा जरूर."

सरिता कुछ बंगला कुछ हिंदुस्तानी और कुछ अंग्रेजी में उसे समझाती है, "आमी यूनिवर्सिटी के गेस्ट हाऊस को छोड़कर यहां आना चाहती हूं. समझे?. . .अगर टुवेंटी नाईन मिल जाये तो. . ."

"ठीक हाई, ठीक हाई. आज नहीं मिल सकता टुवेंटी नाईन. एक पिसेंजर हर साल आज का दिन ठहरता. आपके वास्ते कल बुक हो सकता. भालो!"

"अच्छा खोलो तो उसे जरा. मैं एक नजर देख लूं."

वह बेयरे के पीछे-पीछे चुपचाप-सी कोरीडोर में चल रही है. जिसके हाथ में चाबी है. न चाहते हुए भी भी वह हर एक तरफ कमरे की चौखट पर लिखे नंबर देखती जा रही है.

वह गर्दन घुमाकर धूप में नहाये हुए लॉन की ओर देखने लगती है. कोई विदेशी शरीर पर सिर्फ जींस पहने पेट के बल लेटा गहरी नींद सो रहा है.

कमरे के अंदर जाते ही उसे ऐसा लगता है कि जैसे वह कमरा एक पूरा मर्द हो जिसकी मजबूत बाहों के घेरे में आ पहुंची हो. वह उसे मना करने के बावजूद बार-बार चूम रहा हो. . . उसके होंठो पर, आंखों पर, आकर्षक नाक के बांसें पर. वह बार-बार गर्दन घुमाकर इधर-उधर देखती है. वह उसकी शाहरग पर ही अपने दांत गड़ा देता है. उसे बिल्कुल विवश कर देता है. वह अर्ध उन्मीलित आंखों से देखती जा रही है, एक ही ओर जिधर खुले हुए वार्डरोब में उसे हेंगर पर लटकी हुई पैंटें और शर्टें दिखाई दे जाती हैं.

वह अचानक दोनों हाथों से मुंह छिपाकर सिसकने लगती है . . . मैं ममी को क्या जवाब दूंगी!

सरिता को अचानक हाथ में उठाया हुआ मुखौटा याद आ जाता है. वह उलट-पलटकर बड़ी हैरत से देखने लगती है. उसकी समझ में नहीं आता इसका क्या करे. दोनों ने अपने अपने मास्क चेहरे पर चढ़ाकर एक केसेट की धुन पर डांस किया था. उसने उसके सीने तक सिर रखकर लेटे-लेटे एक गीत भी सुनाया था—

पुरानुशेयी रेश्नीर कोथा
भूलेबे केरे हाय ओ शेयी
चोखेरे देखा पुराने कोथा
शेकी भूला जाये

अर्थ भी कह सुनाया था, "उस पुराने दिन का सुख, भूल पाओगे क्या?. . . हाय वह आंख का मिलना, दिल की बात हुई. वह क्या भुलाया जा सकता है?"

सरिता ने अपने उमड़ते हुए आंसू छिपाने के लिए मुख पर मास्क चढ़ा लिया और कमरे का एक बार फिर निरीक्षण किया. इधर-उधर घूमकर वह अपना मास्क फर्श पर गिराकर पलंग पर निढाल-सा पड़ा गहरी नींद सो रहा था. उसकी स्थिति से बिल्कुल बेखबर. उसे गुस्सा आ गया था उसने पांव से जोर से ठोकर मार दी थी. उसका पुरातन पौरुष वैभवशाली मुखौटा दूर जा पड़ा था. मेज के नीचे उल्टा होकर कांपने लगा था. लाल चींवटे की भांति आकाश की ओर हाथ-पांव मारता हुआ-सा. उसने आगे बढ़कर उसे एक और ठोकर मारी थी. फिर उसे पांव के नीचे कुचल दिया था.

"मेम साहब, कमरा खाली करना होगा."

वह जानती है बेयरे ने खिड़की में झांककर ऐसा क्यों कह दिया है. वह कितनी देर से उसकी हरकतें देख रहा था. उसे कोई उत्तर दिये बिना वह बाहर आ जाती है. ◻

● शांतिनिकेतन, डी-2290, इंदिरा नगर, लखनऊ

सन् बयासी की कहानियों का संसार

▣ प्रेम जनमेजय

पिछला वर्ष राजनीतिक दृष्टि से स्थिरता का वर्ष रहा है, परंतु इस वर्ष मध्यम, निम्नमध्यम और सर्वहारा वर्ग को आर्थिक दबाव विशेष रूप से झेलने पड़े हैं. आर्थिक विपन्नता ने हमारे पारिवारिक और सामाजिक संबंधों को बुरी तरह से प्रभावित किया है. मानवीय मूल्यों के ह्रास का मूल कारण यह आर्थिक दबाव ही है. भारतीय-सामाजिक जीवन इतना उलझावपूर्ण हो गया है कि कोई भी सजग, चेतना संपन्न व्यक्ति वर्तमान परिस्थितियों से अलग नहीं रह सकता है. समाज और उसकी समस्याओं के प्रति आंख मूंदकर चलने वाला लेखक पाठक की उपेक्षा का शिकार बनता है. कहानी की सामाजिक-प्रतिबद्धता आज के लेखक की पहली शर्त बन गयी है. पिछले वर्ष कहानी चाहे किसी राजनीतिक विचारधारा के तहत आयी हो, उसने समाज से मुंह नहीं मोड़ा है. 1982 की कहानी में अपने समय के समाज को जानने, समझने और चित्रित करने की एक ईमानदार कोशिश मुझे दिखाई दी है.

किसी भी रचना-वर्ष, दशक या युग की उपलब्धि यह होती है कि उसने युवा रचनाकारों को कैसी जमीन दी. मेरे विचार में किसी भी समय की साहित्यिक-सार्थकता सशक्त युवा-रचनाकारों को सामने लाने में है. इन्हीं के माध्यम से उस समय की जरूरत को पहचाना जा सकता है, उस समय की नब्ज को पकड़ा जा सकता है. वर्ष बयासी में युवा रचनाकारों ने सशक्त कहानियां दीं. इनकी कहानियों ने उन आर्थिक दबावों को स्पष्ट किया है, जिनमें हमारा समाज जी रहा है. इनकी कहानियां अधिकांशतः मध्यम, निम्न मध्यम और सर्वहारा वर्ग की समस्याओं और परिस्थितियों के बीच से गुजरती हैं. इस दृष्टि से मैं छत्रपाल के कहानी संग्रह 'रोशनी से दूर', नरेंद्र मौर्य के 'कोलंबस जिंदा है', धीरेंद्र अस्थाना के 'आदमीखोर', अवधेश श्रीवास्तव के 'आवाज' की संक्षिप्त चर्चा करना चाहूंगा.

छत्रपाल की कहानियों में बाहर और अंदर के दोहरेपन को उजागर करने की कोशिश है. 'रोशनी से दूर' का 'मैं' और 'गांठधार धागे' की अमिता इसी दोहरेपन की शिकार हैं. 'मैं' स्वयं विकलांग है और विकलांग बच्चे के सामने अपाहिज होने का दर्द प्रकट करते हुए घबराता है. छत्रपाल ने विकलांगों की मानसिकता और समाज में उनकी स्थिति को लेकर अच्छे सवाल उठाये हैं.

नरेंद्र मौर्य की कहानियां मानवीय संवेदना को झकझोरने वाली कहानियां हैं. पहली कहानी 'कमीज' प्रेमचंद की कहानी 'कफन' की याद दिला देती है. आदमी की मौत कई बार कितनी सस्ती हो जाती है. कहानी के अंत में बच्चे का प्रश्न जागरूक व्यक्ति की चेतना को झकझोर देता है. 'बिखरे-बिखरे संदर्भ' की कथा भी मन को कारुणिक एवं अव्यवस्था के विरोध में आक्रोशपूर्ण कर जाती है. 'कोलंबस जिंदा है' का ज्ञान इन्हीं आर्थिक दबावों के कारण आज भी अपनी अनवरत यात्रा में संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ रहा है.

धीरेंद्र अस्थाना की कहानियों का मुख्य पात्र अक्सर संघर्षशील, आर्थिक विपन्नता का शिकार साहित्यकार-पत्रकार होता है. वह निरंतर संघर्ष की स्थिति में ही दिखाई देता है. अपने को तथा अपने परिवार को जिंदा रखने के लिए वह मरता-खपता रहता है. 'आदमीखोर' धीरेंद्र की लंबी कहानी है और यह ऐसे ही पात्र की कहानी है. अपने को और परिवार को जिंदा रखने के लिए वह आर्थिक दबावों में दबा निरंतर लड़ता रहता है. बीच-बीच में वह खीझता भी है और पस्त भी होता है. धीरेंद्र ने अपनी कहानियों में यह कोशिश निरंतर की है कि जीवन में आने वाली छोटी-छोटी मुश्किलों को भी, जिन्हें समाज के लोग अमहत्वपूर्ण मानकर छोड़ देते हैं, पाठकों के सामने अभिव्यक्त किया जाये. वस्तुतः यह छोटी-छोटी मुश्किलें ही आदमी के ऊपर एक बड़े दबाव और उसके बाद उसके आक्रोश को उभारने का कारण बनती हैं. धीरेंद्र के उपन्यास और कहानियों के पात्र मुझे एक से लगे—निम्न मध्यम वर्ग के पात्र, परंतु उनकी कहानियों में सामाजिक परिस्थितियां अपने बदलते रूप में आती हैं. मुझे धीरेंद्र के उपन्यास 'समय एक शब्द भर नहीं है', 'आदमीखोर' और 'सजाएं सख्त' आदि के मुख्य पात्र में कोई अंतर नहीं दिखाई देता है, परंतु तीनों में समस्याओं और परिस्थितियों को प्रकट करने का कोण अलग है.

अवधेश श्रीवास्तव की रचनाओं का संसार भी मध्यमवर्ग का यथार्थ है. इस वर्ग के बारे में व्यक्त अनुभव उनके अपने हैं और वह रचनात्मक ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किये गये हैं. इनमें मध्यम वर्ग का बेरोजगार युवक सामने आ जाता है. 'अपने हिस्से का दुःख', 'जख्म' और 'दरार' मध्यम वर्ग की आर्थिक दबाव में पिसती जिंदगी का यथार्थ ही प्रस्तुत करती हैं. इन युवा रचनाकारों के पास जिंदगी को जीते हुए दिखाई देते हैं, न कि यांत्रिकता की डोर में कठपुतलियों से नाचते हुए. इन कहानियों का मुख्य स्वर आर्थिक दबावों को अभिव्यक्त करता रहा है.

सन 82 में महिला-लेखकों में मुझे चित्रा मुद्गल की कहानियों ने विशेष रूप से प्रभावित किया है. 'लाक्षागृह' की कहानियां कोरी स्त्री-संवेदन, रुदन या करुणा की कहानियां नहीं हैं, उनमें मध्यम और निम्न मध्यमवर्ग का यथार्थ है. इसके अतिरिक्त डॉ. इंदुबाली के संग्रह 'बिना छत का मकान', मालती जोशी की 'विश्वासगाथा' में

संकलित तीन लंबी कहानियों एवं गुरबचन कौर नंदा के पहले कहानी संग्रह 'रिश्ते-नाते' की चर्चा की जा सकती है. 'लाक्षागृह' की कहानियां एक ओर मध्यवर्ग की विसंगतियों को सामने लाती हैं तो दूसरी ओर निम्न वर्ग का यथार्थ भी प्रत्यक्ष करती हैं. चित्रा मुद्‌गल की कहानियों के कुछ पात्र लगभग विद्रोह की मुद्रा में दिखाई देते हैं. 'मामला आगे बढ़ेगा' का मोट्या, तथा 'त्रिशंकु' के बंडू और कमला, ऐसे ही पात्र हैं–इन कहानियों के संदर्भ में एक और बात उभरकर आती है—चित्रा मुद्‌गल जिस वातावरण का चित्रण करती हैं, उसे भाषा से सजीव कर देती हैं. भाषा इनकी कहानियों की एक खास फोर्स है. झोपड़पट्टी में रहने वाले पात्र अपनी भाषा के कारण कहानी में जीवंत हो उठते हैं. इन कहानियों में आदमी की संवेदना को सही स्थल पर छूने और उसे अभिव्यक्त करने की शक्ति है. 'लाक्षागृह' की सुश्री के माध्यम से आर्थिक दबाव में जी रहे आदमी की पीड़ा यथार्थ होकर आती है. चित्रा मुद्‌गल के पास नारी मन को समझने और उसे चित्रित करने की ताकत है. चित्रा मुद्‌गल ने अधिकांशतः यथार्थ का चित्रण किया है, परंतु 'पाली का आदमी' जैसी कहानियों में वह अतिरिक्त रूप से भावुक भी हो उठी हैं.

डॉ. इंदुबाली ने अपने कहानी संग्रह में मुख्यतः नारी-मन की संवेदना को ही पकड़ने का प्रयत्न किया है. नारी की पीड़ा, चाहे वह कामकाजी महिला की हो अथवा पुरुष के अहम् के कारण पीड़ित नारी की अथवा अपनत्व के अभाव में पिसती औरत की, वह सशक्त रूप में उभरी है. डॉ. बाली की भाषा कथ्य से जुड़ी रहती है. लगता है कि लेखिका ईमानदारी से अपनी बात कह रही है, परंतु अत्यधिक संवेदनशीलता एवं ईमानदारी के कारण लेखिका का चित्रण 'अलबम', 'केवल अपने लिए', 'किसी तीसरे अस्वीकार' जैसी कहानियों में एक पक्षीय लगने लगता है. फिर भी 'मैं कायर मैं' और 'बिना छत का मकान' जैसी कहानियां अच्छी कहानियों का सुख देती हैं. गुरबचन कौर नंदा का पहला कहानी संग्रह अपनी नवीनता की कमजोरियों के साथ है. इनकी भाषा और इन कहानियों का कथ्य भावुक मन की संवेदनाओं में बंधने के कारण आदर्श के घेरे में बंध जाता है, पर यह देखकर अच्छा लगता है कि वह अपने आसपास की जिंदगी के यथार्थ को अपनी ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करती हैं. 'खुदा न करे' और 'अंजन' जैसी कहानियां पाठक को आश्वस्त कर देती हैं कि भविष्य में लेखिका की दृष्टि और अधिक परिपक्व होगी.

नरेंद्र कोहली के कहानी संग्रह 'शटल' की कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर विशेष चर्चित हुई थीं. नरेंद्र कोहली का रचना संसार मध्यम वर्ग की समस्याओं और आर्थिक दबावों के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता है. 'शटल' मध्यवर्ग की आधुनिकता, आर्थिक दबावों में पिसते हुए वृद्ध पिता के यथार्थ की कहानी है. नरेंद्र कोहली अपनी भाषा में बांधकर मध्यवर्गीय यथार्थ की असंगतियों से बखूबी परिचित करा डालते हैं. इनकी कहानियां कोई हल नहीं देती हैं, परंतु हल की मांग अवश्य करती हैं.

रामशरण मिश्र और विवेकी राय की कहानियों में गांव आज भी जिंदा है. जहां एक ओर अधिकांश लेखक अपने अनुभव जगत के मध्यवर्ग को अपनी कहानियों में कथा का रूप देते हैं वहीं मिश्र जी और विवेकीराय अपने गांव की जमीन का रंग-रूप पाठक के सामने उजागर कर देते हैं. रामदरश मिश्र का कहानी संग्रह 'सर्प-दंश' गांव के परिवेश, उसकी समस्याओं को पाठकों के समक्ष लाता है. मिश्र जी का किसान कायर या मूर्ख नहीं है. वह परिस्थितियों के कारण एक सर्पदंश से जीवन से छुटकारा पाना चाहता है, परंतु जब वह इससे मुक्त होता है तो उसकी जिजीविषा जाग उठती है. प्रधान की बेईमानी से वह दुखी है, परंतु दूसरा जीवन मिलते ही संघर्ष की चेतना उसके अंदर विद्यमान हो उठती है. मिश्र जी की अनुभवपूर्ण भाषा पाठक के सामने गांव और शहर का जीवन समान रूप से सजीव कर देती है. ऐसे ही विवेकीराय का संग्रह 'कालातीत' गांव की सामाजिक स्थिति को लेकर अनेक सवाल उठाता है. ग्रामीण जीवन देश की राजनीति से अछूता नहीं रहा है. उस राजनीतिक दशा को विवेकी राय ने ग्रामीण-परिवेश में बखूबी चित्रित किया है.

रमाकांत के संग्रह 'उसकी लड़ाई' की चर्चा किये बिना मैं अपने सर्वेक्षण को अधूरा ही समझूंगा. रमाकांत ने कभी विशिष्ट परिस्थितियों को अपनी कहानियों का केंद्र नहीं बनाया है. अपितु जीवन में उठने वाले 'छोटे-छोटे महायुद्धों' को ही विश्लेषित किया है. रमाकांत का कहानीकार मन परिस्थिति की कहानी, उसका यथार्थ चित्रित करके ही नहीं रह जाता अपितु समस्या की मूल जड़ को पकड़ना चाहता है, उसके कारण को पाठकों तक पहुंचाना चाहता है. 'उसकी लड़ाई' का 'वह' निम्न मध्यवर्ग के आर्थिक दबावों में पिस रहा है. उसके मन में आक्रोश का एक ज्वालामुखी विद्यमान है, परंतु परिस्थितियां उसे लड़ने नहीं देती हैं. रमाकांत ने अपनी कहानी को फैंटेसी का टच दिया है, परंतु यह फैंटेसी यथार्थ की कटुता को पाठक के मन में अक्षरशः उतार देती है. राशन, पत्नी, बस, आर्थिक तंगी, समाचार, बच्चों की पढ़ाई, उनकी संगति, दूध, सब्जी आदि के छोटे-छोटे दबावों में पिसते इस आदमी को यह समझ नहीं आता है कि वह अपनी लड़ाई कहां से आरंभ करे. पहले तो वह अपने दुश्मन को ही नहीं पहचान पाता है, परंतु अंततः वह उसे जानने और समझने में कामयाब हो जाता है परंतु परिस्थितियां उसे ऐसी स्थिति में ला डालती हैं कि दबाव के तहत वह पगला जाता है, चेतना शून्य हो उठता है. रमाकांत की कहानियों में न तो समस्याओं से पलायन है और न ही संपन्न वर्ग का आतंक है. इनकी कहानियों का निम्न मध्यवर्गीय पात्र जूझ रहा है, परंतु आतंकित नहीं है. 'तेवर' कहानी जहां एक ओर उच्च मध्यवर्ग की खोखली महत्वाकांक्षाओं की विसंगतियां सामने लाती है, वहीं निम्न मध्यवर्ग के तेवर को भी रेखांकित करती है.

अधिकांश चर्चित कहानियों की विशेषता यही है कि वे अपनी बात तो कहती हैं परंतु कहानी के माध्यम से. लेखक के विचार, उसकी प्रतिबद्धता कहानी को अस्वाभाविक नहीं होने देते हैं. पात्र अपनी स्वाभाविक स्थिति को जीते हैं. यांत्रिक स्वर नहीं सुनाते हैं, परंतु रमेश उपाध्याय की कहानियों की स्थिति यह नहीं है. उनके तीन कहानी संग्रह—'चतुर्दिक', 'पैदल अंधेरे में' और 'बदलाव से पहले' की चर्चा की जा सकती है. संग्रहों की अधिकांश कहानियां पात्र को जीवंत रूप में प्रस्तुत नहीं करती हैं. 'दूसरी आजादी' जैसी कहानियां शुष्कता और वैचारिक प्रतिबद्धता से पाठक को आक्रांत तो कर सकती हैं, उसे पाठ तो पढ़ा सकती हैं, परंतु उसके जीवन का हिस्सा नहीं हो सकती हैं. यांत्रिकता की यह स्थिति कहानी और उसके पाठक के लिए खतरनाक है. ऐसा नहीं है कि रमेश उपाध्याय के पास अपनी बात को स्वाभाविक रूप से कहने की कला नहीं है. 'दरम्याना सिंह' जैसी कहानियां इसका प्रमाण हैं, परंतु 'कामधेनु' और 'कल्पवृक्ष' जैसी कहानियां चाहे फैंटेसी का सहारा लें, परंतु शुरू से ही गणित के फार्मूले जैसी लगती हैं.

"किसी भी समय की साहित्यिक सार्थकता सशक्त युवा कथाकारों को सामने लाने में है, इन्हीं के माध्यम से उस समय की नब्ज को पकड़ा जा सकता है"

उपर्युक्त चर्चित कहानी-संकलनों के अतिरिक्त और भी कहानी संकलन वर्ष बयासी में आये हैं, जिनकी चर्चा होनी चाहिए. मैंने अपनी सीमाओं का जिक्र आरंभ में कर दिया है. अतः मैं यहां उनकी नाम-चर्चा ही करूंगा, परंतु यह अवश्य चाहूंगा कि कहानी में रुचि लेने वाला पाठक इन संग्रहों को अवश्य पढ़े. ये संग्रह हैं—हिस्सेदारी (अशोक अग्रवाल), कितना सुंदर जोड़ा (सुरेंद्र वर्मा), एक छात्र नेता का रोजनामचा (विभूति नारायण राय), गुस्ताखी माफ (रमेश बक्षी), हर छत का अपना दुःख (विकेश निझावन), मंगली की टिकुली (भैरव प्रसाद गुप्त), अपना-अपना सच (मणिका मोहिनी), पहली रपट (जगदीश चंद्र), रक्तदान (सुबोध कुमार श्रीवास्तव), चर्चित कहानियां (गंगाप्रसाद विमल), सोमवार और अन्य कहानियां (राजेश जोशी), आसमां कैसे कैसे (स्वयं प्रकाश), चर्चित कहानियां (जगदीश चतुर्वेदी), दिल्ली पहुंचना है (असग़र वजाहत), बबूल की छांह (शानी), खुद के खिलाफ (गोविंद मिश्र), कैसे-कैसे मंजर (प्रेमचंद सहजवाला), बावन पत्ते और एक जोकर (मंजुल भगत), आदमी से आदमी तक (भीमसेन त्यागी), दिशाहीन मैं (सूर्यबाला), एक नीच ट्रैजैडी (मृणाल पांडे), शोर (महीप सिंह), धूप का चश्मा (संतोष खरे).

व्यक्तिगत संकलनों के अतिरिक्त पिछले वर्ष संपादित संग्रह भी प्रकाशित हुए. इनमें मनीषराय और बलराम द्वारा संपादित 'आठवें दशक के लोग' का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है. यह एक अच्छा प्रयास है और नयी पीढ़ी का स्वरूप बनाने में ऐसे संकलन अच्छा काम करते हैं. इस प्रकार के संकलनों के माध्यम से पाठक निश्चित समय में लिखी जा रही कहानियों से दो-चार हो सकता है. इनके संबंध में यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कहीं संपादकों ने दुराग्रह से काम नहीं लिया है, क्योंकि आजकल किसे लें और किसे नहीं, का फैसला अपने आदमी के आधार पर किया जाता है. 'आठवें दशक के लोग' में संकलित अधिकांश कहानियां चर्चित भी बहुत हुई हैं. जैसे केक (असग़र वजाहत), टेपचू (उदय प्रकाश), पालनहारे (बलराम), केंचुल (चित्रा मुद्‌गल), रिश्ते (राजकुमार गौतम), कसाईबाड़ा (शिवमूर्ति) और योद्धा (सुरेश उनियाल).

इस संकलन के अतिरिक्त 'श्रेष्ठ भारतीय कहानियां' (सत्येंद्र शरत), समकालीन श्रेष्ठ कहानियां (विद्याधर शुक्ल), मारिशस का कथा साहित्य (कामता कमलेश), मारिशस की हिंदी कहानियां (कामता कमलेश), मंटो की श्रेष्ठ कहानियां (सं. रमेश बक्षी), पोट्टेक्काट की श्रेष्ठ कहानियां (सं. शानी) आदि को पढ़ा जा सकता है. इनसे कथा-साहित्य का अतीत आज के वर्तमान में भी उभरकर आ जाता है.

सन् बयासी में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों की चर्चा करने से पूर्व मैं एक दो बातें स्पष्ट कर देना चाहूंगा. पाठक ऐसा समझ कर न चलें कि मैंने सभी पत्रिकाएं देखी हैं और उनकी सभी कहानियां पढ़ी हैं. मैं व्यावसायिक पत्रिकाओं में प्रकाशित कहानियों की चर्चा इसलिए कम कर रहा हूं कि वे लगभग सभी जगह उपलब्ध होती हैं और पाठक उन्हें प्राप्त कर सकता है, जबकि लघु पत्रिकाओं की अपनी सीमाएं हैं.

सबसे पहले मैं 'कथन' में प्रकाशित रमेश बत्तरा की कहानी 'कत्ल की रात' की चर्चा करना चाहूंगा. ऊपर मैंने कहानी में यांत्रिकता की स्थिति और कहानी के कलारूप की अनदेखी की बात की थी. रमेश बत्तरा की वैचारिक प्रतिबद्धता में किसी को संदेह नहीं है, परंतु अपने दृष्टिकोण को वह पाठकों पर लादते नहीं हैं, अपितु पाठक को निर्णय लेने के लिए छोड़ देते हैं. इस कहानी के सतनाम की पीड़ा उसकी केवल अपनी नहीं, अपितु भारत के हर जागरूक की पीड़ा है.

आदमी अपने सामने घटती हुई विसंगतियों को देखकर परेशान है, परंतु स्वयं को कुछ भी कर पाने की स्थिति में नहीं पाता है. वह स्वयं को अकेला और असुरक्षित महसूस करता है. "सतनाम दरअसल वह आदमी है, जो हालात से डर गया है, फिर भी निडर होना चाहता है, पर हो नहीं पा रहा है." उसे अपने इर्द-गिर्द असंगत-सा घटता हुआ किसी कत्ल से कम नहीं लगता है. रमेश ने इस कहानी के माध्यम से भारत के आम आदमी की सोच पर प्रहार किया है. आज हर आदमी यही कुछ सोच रहा है, पर वह सतनाम की तरह डरा हुआ है, असुरक्षित है. यह कहानी पाठक को आज की राजनीतिक स्थितियों और प्रजातंत्र की वस्तुस्थिति के प्रति शिक्षित करती है, उसे सोचने को बाध्य करती है.

पहल-19 में प्रकाशित विनायक कराड़े की कहानी 'कथानक' मेरे मन में कई सवाल उठाती है. पहला सवाल तो यही उठता है कि कहानियों में गालियों की बहुतायत से लेखक क्या सिद्ध करना चाहता है? परिवेश और पात्र की आवश्यकता के आधार पर कहानी में अपशब्दों के प्रयोग से इंकार नहीं किया जा सकता, परंतु कथानक में लगता नहीं है कि इसकी जरूरत थी. कहानी पढ़ते-पढ़ते ऐसी भाषा के कारण जुगुप्सा पैदा होने लगती है. इसके विपरीत इसी अंक में प्रकाशित हरि भटनागर की कहानी 'समीर और उसकी बस्ती के लोग' इसी परिवेश को सही भाषा के साथ प्रस्तुत करती है. कहानी की भाषा समीर के द्वंद्व, उसके संघर्ष को लेकर आगे बढ़ती है. लेखक इस कहानी में भी पाठक को अपना कोई निर्णय नहीं देता है. समीर का संघर्ष और अंततः केक और सास मिलने की फैंटेसी, सामाजिक और आर्थिक वैमनस्य पर कई सवाल उठाती है.

यहां पर मैं धर्मयुग में प्रकाशित सुरेश सेठ की पांच कहानियों की चर्चा भी करना चाहूंगा. धारावाहिक रूप में प्रकाशित इन पांचों कहानियों में सुरेश ने नारी मन को परखने की कोशिश की है. यह नारियां अधिकांशतः भारत के मध्यवर्ग से आती हैं, सुरेश सेठ ने उनके सोच के ढंग, उनकी आर्थिक समस्याओं, उनकी भावना को चित्रित किया है.

नारी मन के अंतर को जानने वाली एक और कहानी की चर्चा मैं करना चाहूंगा. समाज-कल्याण में प्रकाशित दिविक रमेश की कहानी 'सुरजा' घरपाई और सुरजा की पीढ़ियों के द्वंद्व, उनके अंतराल को तो प्रस्तुत करती ही है, साथ ही संस्कारी और दायित्व के बोझ के कारण अपने वर्तमान को झुठलाती नारी को भी प्रस्तुत करती है. इस कहानी को पढ़ने के बाद इसे परिवार नियोजन की कहानी कहकर उड़ाया जा सकता है, परंतु कहानी की वर्णनात्मकता, उसके कथ्य की नवीनता सजग पाठक के चिंतन को झकझोर देती है. पाठक के सामने समाज एक और कोण से सामने आता है.

सन् बयासी में कहानी विशेषांकों का अभाव भी खला है. इस दिशा में मधुमाधवी के कहानी विशेषांक की सराहना की जा सकती है. संपादक ने विशेष परिश्रम के साथ इस अंक की सामग्री जुटायी है और कहानी के पाठक को अच्छी कहानियां पढ़ने को दी हैं. इस विशेषांक में भीष्म साहनी की कहानी 'निशाचर' एक नये दृष्टिकोण के साथ, एक नवीन परिवेश के साथ पाठक का परिचय कराती है. हमने अपने इर्द-गिर्द कागज बीनने वालों को देखा होगा, जो मुंह अंधेरे अपने काम पर लग जाते हैं. इस विशेषांक में मृदुला गर्ग की कहानी 'नहीं' और डॉ. माहेश्वर की कहानी 'नूरुल' भी प्रभावित करती हैं.

एकदम नये कहानीकारों में गुड्डू गोविंद का नाम उभरकर सन् बयासी में सामने आया है. 'सारिका' के खेल विशेषांक में प्रकाशित युवा कहानीकार की कहानी 'जॉकी' एक नये विषय पर लिखी गयी कहानी है, जोए क अछूते परिवेश के भ्रष्टाचार को सामने लाती है. 'सारिका' ही में प्रकाशित सुभाष अखिल की कहानी 'बाजार बंद' भी अपनी रचनात्मकता के धरातल पर प्रभावित करती है.

उपर्युक्त चर्चित कहानियों के अतिरिक्त 'अक्षरा' में प्रकाशित बलराम की कहानी 'सामना' को रेखांकित किया जा सकता है. साथ ही इसी पत्रिका में प्रकाशित मंजूर एहतेशाम की व्यंग्ययात्मक कहानी 'स. हरिश्चंद्र के जीवन की वह शाम' पढ़ी जा सकती है. सन् बयासी में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित जिन कहानियों ने मुझे प्रभावित किया है, उनके नाम भर ही मैं दे पाऊंगा. 'बहस' में प्रकाशित सलिल सुधाकर की कहानी 'एक ही रास्ता', 'साक्षात्कार' में प्रकाशित धीरेंद्र अस्थाना की 'युद्ध,' हरिशंकर परसाई की 'वे बहादुरी से बिक रहे हैं', गिरिराज किशोर की 'चरनी का असमंजस', नमिता सिंह की 'अपने लोग', 'संचेतना' में प्रकाशित जवाहर सिंह की कहानी 'फार्मूला नंबर दो', 'शीराजा हिंदी' में प्रकाशित अया कौल की 'न्यूज लैटर', संजना कौल की 'पंगु पीढ़ी', 'आदमी' में प्रकाशित सुरेश उनियाल की 'परमहंस', 'उत्तर गाथा' में प्रकाशित नमिता सिंह की 'राजा का चौक,' 'विषय वस्तु' में प्रकाशित धर्मेंद्र गुप्त की 'अलविदा', 'पहल' में प्रकाशित अब्दुल बिस्मिल्लाह की 'लफंगा' और शंकर की 'ध्वजा', 'कहानीकार' के गांव की जिंदगी पर निकाले गये विशेषांक में विवेकी राय की 'धरती पर सुख नहीं', विपिन चंद्र की 'कर्णफूल', अशोक गुप्ता की 'नीम की धूप' तथा 'आखर' में प्रकाशित संजीव की 'प्रतिद्वंद्वी' आदि की चर्चा की जा सकती है. इसके अतिरिक्त चंद्रकांता ने भी कई अच्छी कहानियां पत्र-पत्रिकाओं में दी हैं.

ढेर सारी कहानियां पढ़ने और देखने के बाद यह निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि सन् बयासी में कहानी का अभाव नाम की कोई चीज नहीं थी. वर्तमान में जो आर्थिक दबाव हम झेल रहे हैं, जिन आर्थिक अभावों के कारण हमारे संबंधों के अर्थ बदल गये हैं, वे बयासी की कहानियों में बखूबी चित्रित हुए हैं. □

• 14 बी, पॉकिट एल, त्रिवेणी शेखसराय, नयी दिल्ली–110017

कल्लू का कल्लू

(पृष्ठ 80 से आगे)

इस गुत्थी को सुलझा पाते कि चौकीदार गेट पर ताला ठोंक कर पता नहीं कहां गायब हो गया था.

भूखे पेटों को एकता के सूत्र में पिरोये रखने के लिए एक ही चीज चाहिए—खुद का भूखा पेट. ऊंची-ऊंची बातें करने वाले के पेट में पड़े अन्न के दाने गज भर दूर से ही भूखी आंख साफ-साफ गिन लेती है. कहते हैं भूखा कान अंधेरे में भी सुनकर बता देगा कि बोलने वाले के पेट में कितना पानी है.

दूसरी तरफ, आदमी को आदमी से अलग करने वाला भूख से बढ़कर कोई हथियार भी नहीं.

उजाले की राह दिखाने वाले स्वयं ही रोशनी की चकाचौंध में रास्ता भूल जायें तो बाकी तो फिर अनपढ़ गंवार ठहरे—दो जून रोटी की चिंता में ही जिंदगी बसर करने वाले.

जिस भूख ने सबको मिलाया था, उसी ने सबको तोड़ा भी. अगली सुबह सरजू ने दफ्तर खोला तो मन में आशंका थी कि कल शाम की बात को लेकर लड़ाई-झगड़ा न हो. लोगों की भीड़ और दिन से कुछ अधिक ही थी, कम नहीं. वह सोच ही रहा था कि बात किस प्रकार से शुरू करे कि सतवा हाथ जोड़कर फुसफुसाया, "सरजू रे! आज हमको भेजो भाई. आधा अनाज शाम को तुम खुशी से रख लेना, किसी को कानों-कान खबर भी नहीं होने पावेगी."

फुल्लू की बात भी कुछ इसी तरह की थी, "दो दिन से चूल्हा नहीं जला भाई. आज मेरे नाम पर्ची जरूर काटना. अनाज जितनी मर्जी हो ले लो, बच्चे भूख से तड़प रहे हैं. . . कुछ करो भाई!"

सुग्गन की बिटिया का ब्याह था अगले ही महीने, "बारात दरवाजे से लौट गयी तो कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं रह जावेंगे, लाला."

रज्जन, मंगतू, हरिया, बिरजू—सभी की लगभग यही कहानी थी. रजिस्टर खोलने की जरूरत नहीं पड़ी. बात गलत थी भी नहीं. मजबूरी का मारा ही अपनी मेहनत की कमाई बांटने की बात करेगा. और मजबूरी के मारों की सुनने के लिए ही तो यह दफ्तर बना है.

परकासी और बालू ऊपर से उतरे. दरवाजे पर खड़े होकर पूछा, "सब ठीक-ठाक चल रहा है?" सरजू के सिर हिलाने से पहले ही वे तेज कदमों से बाहर जा चुके थे. संग्राम समिति की बैठक आये दिन होती रहती—एक पैर पर दोनों बेचारे नाचा करते— कभी इस गांव में तो कभी उस गांव में? क्या करें? ना पहुंच पायें तो लोग बुरा मानेंगे. रामलखन का काम अधूरा भी तो नहीं छोड़ सकते?

ठाकुरों के यहां आने-जाने का काम ऊपर से और बढ़ गया. मना भी तो नहीं करते बनता—इतनी आवभगत, इतनी खातिरदारी कि वे दोनों तो बस देखते रह जाते हैं. यही हैं वे ठाकुर लोग जो सीधे मुंह बात भी करना पसंद नहीं करते थे? पिछली दीवाली पर भैरों ठकुराइन और गोकुल ठकुराइन ने जबर्दस्ती उनकी घरवालियों के लिए साड़ियां भेज दीं—वे लाख मना करें पर कौन सुनता था?

फिर तो यही नियम बन गया. जो ज्यादा हिस्सा दफ्तर में देने को राजी हो जाते काम पा जाते. पर्ची का क्या है? जिसके नाम भी चाहोगे निकल आयेगी. रोज-रोज की किल्लत खत्म हुई. रजिस्टर में नाम ही तो भरने हैं— हफ्ते दस दिन में जब मौका मिला भर दिये. कोई पुलिस थाना तो है नहीं कि एक-एक नाम का मिलान एक-एक शक्ल से कराया जायेगा और हलफनामा उठवाकर पूछा जायेगा कि फलां-फलां दिन वे काम पर गये थे या नहीं.

बेकारों को रोजगार देने का भी उपाय आखिर मिल ही गया. इंसान चाहे तो क्या नहीं कर सकता? परकासी, बालू और सरजू ने मिलकर टोले वालों के आगे प्रस्ताव रखा कि समिति के कार्यकर्त्ताओं के मकान पक्के होने चाहिए. दूर-दूर से लोग आते हैं—सारे गांव की नाक कटती है. दफ्तर में ही तो हमेशा सबसे मिलना संभव होता नहीं. काम ठहरा जोखिम भरा. रात-बे-रात भी लोगों का आना-जाना बना रहता है. घर आये को लौटा तो सकते नहीं.

लोग मान गये. मानना ही था.

कुछ ही दिन बाद काम शुरू हो गया. खेतों से बचे लोग ईंट-गारा उठाने लगे. तसला अगले मजदूर को थमाते हुए कल्लू सोच रहा था कि इस सारी लड़ाई में फायदा क्या हुआ? किलो भर अनाज के लिए तब भी दिन भर खून बहाते थे, आज भी बहाते हैं. पता नहीं किसका भला हुआ. वह तो वहीं का वहीं रहा. वही कल्लू का कल्लू. □

• के 4/12 माडल टाउन, दिल्ली-110009.

त्याग

▣ सुखबीर

सन् 1916 की बात है. काका कालेलकर एक दिन कोई पुस्तक पढ़ने में तल्लीन थे. गांधीजी ने कालेलकर से पूछा, "क्या पढ़ रहे हो?"

"उमर खय्याम की रुबाइयां–फिट्जजेराल्ड द्वारा अंग्रेजी में अनूदित."

गांधीजी ने हल्की-सी आह भरी और कहा, "कभी मुझे भी अंग्रेजी कविता पढ़ने का बहुत शौक था. आखिर वह शौक मैंने छोड़ दिया. मैंने सोचा कि मुझे तो संस्कृत का भी इतना ज्ञान नहीं है, जितना होना चाहिए. वैसे, मुझे चाहिए कि अधिक से अधिक समय निकाल कर गुजराती में अच्छा लिखना सीखूं. आज जरूरत है कि मैं अपने देश की अधिक से अधिक सेवा करूं. . . . शायद तुम्हें यह सुनकर हैरानी होगी कि देश-सेवा के लिए मैंने अगर किसी चीज का सचमुच त्याग किया है तो वह है अंग्रेजी साहित्य पढ़ने का शौक." □

सन् 82 की उपन्यास यात्रा

हिंदी-उपन्यास के संदर्भ में सन् 1982 का कुछ अर्थ होता है. इस वर्ष इस विधा ने अपने जीवन के एक सौ वर्ष पूरे कर लिए. हिंदी के पहले उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (लाला श्रीनिवास दास) के प्रकाशन वर्ष सन् 1882 से लेकर अब तक इसकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है. किंतु इस उत्कर्ष-पक्ष के पीछे इधर की गिरावट की चिंता भी कम नहीं है. सन् 1982 में हिंदी-उपन्यास की गिरावट को देखते इसकी मौत और पुनर्जन्म का सवाल उठा. इसके साथ ही विशुद्ध भारतीय उपन्यास की खोज की आकांक्षा भी उभर आयी. समकालीन जीवन की भांति हिंदी-उपन्यास भी कहीं गहरे में भटक गया है. ऐसा बहुत कम लगता है कि दोनों आमने-सामने हो पाते हैं. लेखक छटपटा-छटपटाकर कभी जीवन की तलाश में उतरता है तो कभी उपन्यास की इस छटपटाहट में विषय-वस्तु और शिल्प का विस्तार तो हो जाता है परंतु सही रूप में कुछ चीजों की अर्थ की गहराई आते-आते भी प्रायः छूट जाती है. इस कमजोरी को भारी-भरकम अथवा चौंकाने-उलझाने वाले शब्दों से ढकने की कोशिश होती है. कथा-समीक्षक भी ऐसे शब्दों को बेरोक उछालता है. संस्कार और अभ्यासवश ऐसा होता है. हिंदी-उपन्यास की पिछले वर्ष वाली कुंडली में परंपरागत संस्कारों की जमकर प्रतिष्ठा होती दिखाई पड़ती है. कठिनाई से एकाध लोग साहस कर नयी जमीन खोज उस पर कथा-संस्कार बसाते नजर आते हैं. मगर, जमीन नयी होने से क्या होता है जब वही बासी संसार उस पर आबाद या बरबाद मिलता है! इस संसार में स्वाधीनता संग्राम और विभाजन के इर्द-गिर्द वाली दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों को लेकर स्वराज्य के दिग्भ्रमित हो जाने और उभरते विद्रोह, विरोध, आक्रोश और प्रतिरोध तक, नैतिक मूल्यों पर प्रहार, संबंधों के पुनर्मूल्यांकन और मूल्यहीनता आदि से लेकर पौराणिक चित्र, पौराणिक पुनर्लेखन और विचार क्रांति के प्रयासों तक, पुलिस, जुल्म, जीने के लिए संघर्ष और शिक्षा-क्षेत्र की अव्यवस्था से लेकर मध्यवर्गीय कुंठा, बुद्धिजीवी की नपुंसकता और क्रांतिकारी नारों की जांच-पड़ताल तक तथा सर्वहारा आक्रोश, छोटे लोगों का उभार, आदिवासी जड़ता से लेकर भावात्मक एकता, विदेशी पृष्ठ भूमि और किशोर प्रेम-गाथा आदि तक को सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, महाकाव्यात्मक, प्रतीकात्मक, प्रयोगात्मक, चित्रात्मक, रिपोर्ताजी, फिल्मी और उपन्यासिक आदि शिल्पों में विस्तार पाते हैं.

मेरे सामने पिछले वर्ष के प्रकाशित दो दर्जन से ऊपर आलोच्य उपन्यास हैं. यह संख्या पूर्वापेक्षया कम है. संख्या का ह्रास उतना चिंतनीय नहीं जितना स्तर का. ऐसा लगता है कि कृतियों में लेखनोल्लास कम है. नाना प्रकार के दबावों से लेखक शायद विश्वास खो चुका है. इसके अतिरिक्त हिंदी-उपन्यास को तोड़ रही है समाज में व्याप्त व्यापक स्वाध्याय रुचिहीनता और राजधानी मार्का मूल्य वृद्धि. इस प्रकार के संकटों के बीच से रास्ता बनाकर हिमांशु जोशी, कमलेश्वर, नरेंद्र कोहली, श्रीकांत वर्मा, गोविंद मिश्र, वीरेंद्रकुमार जैन, मनोहर श्याम जोशी, रवींद्र कालिया, सतीश जमाली, मन्नू भंडारी, पंकज विष्ट, धीरेंद्र अस्थाना और आशीष सिन्हा आदि ने सन् 1982 को अपनी कृतियां से समृद्ध किया है. कुछ कृतियों की बहुत व्यापक रूप में चर्चा भी हुई है. इन सबके सर्वेक्षण में मैं लघुता की ओर [illegible] आग्रह है. इस दृष्टि से सबसे पहले सामने आ जाती है हिमांशु जोशी की कृति 'सु-राज.' इसमें कथाकार की ऐसी तीन ताजी उपन्यासिकायें संकलित हैं जिनमें 'सीमित शब्दों में कुछ कहने का प्रयास है.' स्कंडेनेवियाई और यूरोप की अन्य भाषाओं के कथा प्रयोगों को देखकर लेखक को ऐसी सामाजिक उपन्यासिकाओं की प्रेरणा मिली है परंतु हिंदी में उपन्यास और कहानी के बीच में पड़ने वाले लघु-उपन्यास (शॉर्ट नॉवेल) अथवा उपन्यासिका (नॉवलेट) पहले से स्वीकृत हैं. इस वर्ष हिमांशु जोशी के अतिरिक्त मीनाक्षी पुरी का भी दो लघु उपन्यासों का संकलन 'सात फेरे अधूरे' प्रकाशित हुआ है. पटना के पारिजात प्रकाशन से 'पांच उपन्यासिकायें' शीर्षक से एक कृति प्रकाशित हुई जिसमें पांच उपन्यास लेखिकाओं, बिंदु सिन्हा, शांता सिन्हा, उषा किरण खान, शुभदा मिश्र और ऋता शुक्ल की उपन्यासिकायें संकलित हैं.

'सु-राज' लघु आकार की किंतु विस्तृत एवं गहरे प्रभावों वाली चुस्त कृति है. तीन उपन्यासिकाओं, 'सु-राज', 'अंधेरा और' तथा 'कांछा' में तीन अंचल क्रमशः कुमाऊं, हिमालय की तराई स्थित आदिवासी क्षेत्र और नेपाल का सीमावर्ती क्षेत्र पृष्ठभूमि के रूप में प्रयुक्त है. तीनों कृतियां यद्यपि आंचलिक नहीं हैं तो भी अंचल की पीड़ा उनमें एकदम कसमसाती हुई उभर आती है. यहां डोटियाल और थारू हैं जो जीने के लिए मर रहे हैं. उनके जीवन संघर्ष को बिना लाग-लपेट सीधे पाठकों तक संप्रेषित करते हुए लेखक में जो सोच उभरता है वह अपने रुग्ण

समाज के संदर्भ में होता है. मनुष्य और मनुष्य के बीच की दूरी बढ़ने और प्रगति के नाम पर परिधि पर अंधचक्कर काटने की स्थितियां शायद बुद्धिवादी समाज से समाधान मांगती हैं. हिमांशु जोशी का कहना है कि जो साहित्य समाधान नहीं दे सकता, वह पंगु होता है. अब सवाल है, अपनी आलोच्य उपन्यासिकाओं में संघर्ष, विद्रोह और प्रतिरोध का जो समाधान कथाकार प्रस्तुत करता है उनसे क्या कृतियों के कलात्मक मूल्यों पर आंच आती है? 'सु-राज' में स्वतंत्रता संग्राम सेनानी गजानंद काका को आशा रहती है कि स्वराज के बाद दिन लौटेंगे परंतु जब पुलिस तथा पूंजीपतियों के संयुक्त जुल्म से उस आशा के साथ वह स्वयं टूट जाता है तो सोचता है, "इन्हीं भेड़ियों के हाथों में राज सौंपने के लिये हम जेल गये थे? अपना सब कुछ गंवाया था? . . . यही दिन देखने के लिए?" ऐसे कचोटों के बीच उस गांधीवादी की अहिंसक शहादत के बाद उसका लड़का जेल से छूटकर आता है तो कहता है, "जो हमें जीने नहीं देंगें, हम उनका जीना भी कठिन कर देंगें." वास्तव में यह स्थूल समाधान नहीं, उसका सूक्ष्म युगीन संकेत है. कुछ ऐसा ही चुस्त संकेत 'अंधेरा और' में है. अभागे थारू युवक परसिया की गरीबी है कि पाठक दहल उठता है. दूसरी ओर जुल्मों की पराकाष्ठा है कि पिता फांसी चढ़ गया, मां-बहन भीख मांगने निकल गयीं, गांव, घर और परिवार तो छूटा ही, पत्नी और प्रेमिका से भी हाथ धो देना पड़ा. तब अंत में क्या बचा? लेखक लिखता है, ''वह अंधियारे में चुपचाप चलता रहा, कंधे पर कुल्हाड़ी धरे." और प्रतिरोध की एक पूरी शृंखला पाठकों के मन में कौंध जाती है. अंतिम कथा नायक, डोटियाल बच्चा 'कांछा' का दोहरा संघर्ष, अथाह गरीबी के साथ और जालिमों के साथ सर्वथा अप्रतिम है. उसके निष्क्रिय प्रतिरोध की परिणति सक्रिय प्रतिरोध में होकर आक्रोश की संपूर्ण अभिव्यक्ति बन जाती है. ऐसा लगता है कि अंतिम रूप से टूटकर कुछ सार्थक कहने के लिए उपन्यासिकाओं का चुस्त शिल्प बहुत उपयुक्त पड़ रहा है. मीनाक्षी पुरी की दो उपन्यासिकाओं के संकलन 'सात फेरे अधूरे' में पृष्ठभूमि विदेशी है. जर्मनी और इंग्लैंड में बसे हिंदुस्तानी लोगों की जिंदगियों को सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक स्पर्श के साथ चित्रित किया गया है. संवेदनशील उपन्यासकार के पास एक तो प्रामाणिक अनुभव भंडार है और दूसरे उसे सहजता से पाठकों तक संप्रेषित करने के लिए छटपटाहट है. इसीलिए दो राष्ट्रों की जीवन-धाराओं में वह किसी तीसरे अनुभव के लिए उन्हें सीधे-सीधे उतार देता है.

एक जटिल उपन्यास-भूमि तो आज मनुष्य का मन है, जो धीरे-धीरे बंजर होता जा रहा है—उसमें अब कुछ भी बेध नहीं रहा है. इसलिए कथाकार अपनी कथा को बेधक बनाने के लिए प्रयोग करता चला जा रहा है. प्रख्यात पौराणिक आख्यानों पर नयी-नयी कलम लगती जा रही है.

इस वर्ष कलम के धनी कथाकार कमलेश्वर का लघु उपन्यास 'सुबह . . . दोपहर . . . शाम' प्रकाशित हुआ तो फ्लैप पर और बातों के साथ-साथ यह सूचना भी दी गयी कि आपके कई उपन्यासों पर फिल्में बन चुकी हैं. शायद कथाकार की पहचान के लिए यह जरूरी समझा गया. लेकिन इस वर्ष की आलोच्य कृति को पढ़कर ऐसा लगता है कि फिल्मी व्यावसायिकता ने एक श्रेष्ठ कथाकार की हत्या कर दी. सिनेमा हाल के परदे पर संभावित इस कृति की उतरी फिल्म तो रोमांचक और मर्मस्पर्शी हो जायेगी, ऐसा उपन्यास पढ़ते समय उसके स्थल विशेष के परिप्रेक्ष्य में पाठक को आभास होता है, परंतु पढ़ते समय कृत्रिमता और संयोग की बहुलता के कारण उसका सहज सौंदर्य खंड-खंड हो जाता है. फिल्म में लेखक की उपन्यास-कला के साथ सिने-कलाकारों और कला का योगदान मिलकर कृति को चाहे जितना उत्कृष्ट सिद्ध कर दे परंतु अपने मूल रूप में वह समकालीन उपन्यास-धारा से कटकर बहुत दूर कहीं प्रेमचंद युग में फिंक जाती प्रतीत होती है. कृति की पठनीयता मात्र दो कारणों से सुरक्षित रहती है. एक तो कमलेश्वर की चिपकनशील सहज खुनखुनी शैली के कारण और दूसरे, उसमें लोक जीवन के बहुत ही गहरे सांस्कृतिक तत्त्वों को पुरअसर ढंग से उतारने के कारण. बकौया राष्ट्रीयता का उदात्त उद्देश्य भी कानों में कहीं झनककर और मन में मात्र मनककर रह जाता है. चित्त की गहराई में नहीं उतर पाता है. अंग्रेजों से अपने पुरखे के खून का बदला लेना क्या हुआ, गुड़ियों का खेल हो गया है. लोक कथाओं की वनदेवी की भांति आधुनिक युग की बड़ी दादी के चारों ओर चीलों, भालुओं और हिंसक जंगली जानवरों की जमघट लगाने में भी लेखक को हिचक नहीं हुई है. कुल मिलाकर कृति से एक सामर्थ्यवान लेखक की थकावट प्रकट होती है. ऐसी थकावट उनके पूर्व प्रकाशित लघु उपन्यासों जैसे 'एक सड़क सत्तावन गलियां', 'समुद्र में खोया हुआ आदमी', 'डाक बंगला', 'आगामी अतीत' और 'वही बात' में नहीं लक्षित होती है. धारावाहिक प्रकाशन के कारण कथानक व्यवस्थित होने और कसाव पाने से रह गया है. सन् 1857 के खून का बदला गांधीयुग में लिया जाना भी समय के विशाल अंतराल के कारण कुछ जंचता नहीं है.

वास्तव में लघु उपन्यास बड़े उपन्यासों की भांति देश-काल और पात्रों के फैलाव को नहीं सह सकता है. सीमित पात्रों के माध्यम से जब असंश्लिष्ट घटनाक्रम सहज और एकतान हो लक्ष्य या स्थिति को समेट बढ़ता है तो लघु उपन्यास की सार्थकता है. इस दृष्टि से श्रीकांत वर्मा का लघु उपन्यास 'दूसरी बार' सफल कहा जा सकता है. लगभग एक सौ पृष्ठों में

प्रेम के संदर्भ में पुरुष और स्त्री के अहम् की उठा-पटक चलती है और झटके से कथाकार पाठकों को एक दार्शनिक अंत पर पहुंचाता है. अंत में दर्शन की यह अनुभूति सामान्य रूप से नहीं होती है. हां, जब लेखक भूमिका में उसका उल्लेख करता है तो उधर ध्यान जाता है. इससे यह भी लगता है कि कथाकार के पास पहले से प्रेम के संदर्भ में एक बना-बनाया फार्मूला है और उस पर उसी कोण से उसने एक दिलचस्प कहानी मढ़कर प्रस्तुत कर दी. लेखक की धारणा है, "स्त्री-पुरुष संबंध एक असंभव स्थिति है." इसके बाद वह कहता है कि प्रेम की जगह प्रतिहिंसा की प्रतिक्रियायें उभरती हैं तथा घृणा और साथ रहने की अनिवार्यता के साथ एक दूसरे को पराजित करने अथवा तोड़ देने के प्रयत्नों में "स्त्री और पुरुष बार-बार वहीं पहुंचते हैं जहां से शुरू होते हैं." पुस्तक का नाम 'दूसरी बार' भी इसी स्थिति का संकेत है. जो हो, पुरुष और नारी की यह भावनात्मक लड़ाई बहुत ही नाटकीय और दिलचस्प है. पुरुष के साथ पक्षपात शायद अधिक हो गया है. इतने हलके, छिछले, निर्लज्ज और कमजोर नारी-रूप को देखते पुरुष का अंतिम निर्विकार, वीतराग, धीर, संयमी और विरक्त—अनासक्त रूप कुछ जंचता नहीं है. यदि दूसरी बार के खेल का वह आरंभिक रूप माना जाये तो निश्चित रूप से आरोपित जैसा लगेगा. बदली हुई स्थितियों के अंतिम परिणाम के रूप में ही उसे लिया जा सकता है. इन सब वस्तु-विश्लेषणों से पृथक सबसे पुष्ट है इस कृति का शिल्प-पक्ष.

एक जीवंत चरित्रवाली नारी इस भद्दे परिवेश से उत्पन्न होती है और गरीब की गोद में उत्पन्न दृढ़ विश्वासवादिता का दर्शन बन जाती है, जिसमें धर्म और विश्वास शोषण के अस्त्र होते हैं, जो आंचलिक और आदिवासी क्षेत्रों में मुंह छिपाकर टिके हुए हैं!

अति दिलचस्प रूप में प्रस्तुत होती है यह अंतरवर्ती अहम् की टकराहट. कविता की कसी कड़ियों की भांति समूची भावात्मक कहानी के एक साथ, एक सांस में झनक जाती है.

धीरेंद्र अस्थाना की कृति 'समय एक शब्द भर नहीं है' में भी ऐसी ही कसावट और झनक है. क्रांतिकारी लेखन, लेखक और तत्संबंधी नारों, फतवों की कथाकार ने जमकर खबर ली है. साहित्यिक स्वाद से पूर्ण इस लघु उपन्यास का नायक भुवन स्वयं एक रचनाकार है और युगीन दबावों से टूटकर हतवीर्य हो गया है. बहुत रोचक लगती है इसके माध्यम से जनवादी शोभा चरिताओं की अंतरंग पड़ताल. इस पड़ताल और उसके निष्कर्षों से यह आवश्यक नहीं कि शत-प्रतिशत सहमत हुआ जाये. आवश्यक यह है कि अनावश्यक रूप में जहां-तहां जनवाद को न घसीटा जाये.

इस संदर्भ में सतीश जमाली का नया उपन्यास 'छप्पर टोला' ध्यानाकर्षक है. कथाकार ने इसमें काफी संयम से काम लिया है. वह कोई विचार थोपने से बराबर कतराता है. इस रचना में स्थिति को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर देना मात्र एक प्रबल विचारधारा का रूप ग्रहण कर लेता है. समाज की सबसे निचली सतह का एक छोटा आदमी जो कूड़े के गंदे ढेर के बीच लोहे की तीलियां और टुकड़े आदि बीनता है और उसी में अपनी आजीविका का दर्शन करता है, अति घिनौना होने के साथ कृति में पाठकों का अति आत्मीय बन जाता है. सर्वहारा की समूची बेचारगी समेटे मक्खी बुआ जैसी एक जीवंत चरित्र वाली नारी इस भद्दे परिवेश से उत्पन्न होती है और गरीबी की गोद से उत्पन्न दृढ़ विश्वासवादिता का दर्शन बन जाती है. यह दर्शन राजनीति की भाषा से अधिक उस असलियत को सामने खोल देता है जिसमें धर्म और विश्वास शोषण के अस्त्र बने होते हैं. मुश्किल यह है कि आधुनिक सभ्य समाज से पूरी तरह उखड़कर यह विश्वास अब अति साधनहीन गरीबों, पिछड़े अंचलों और आदिवासी क्षेत्रों में ही मुंह छिपाकर टिका हुआ है. सद्यः प्रकाशित राकेश वत्स के उपन्यास 'जंगल के आसपास' में भी यह विश्वास शोषक आदमखोरों का अस्त्र बना हुआ है. इन विश्वासों पर पड़ती हुई सतत सांघातिक चोट अंततः वर्ग-संघर्ष बन जाती है. किंतु ऐसा लगता है कि संघर्ष के लिये यह चोट काफी नहीं पड़ रही है. इसमें कुछ राजनीतिक फूंक भी जुट जाती है. जहां यह फूंक नहीं है वह सनातन और पिछड़ा ग्रामांचल अब भी उपजाऊ भूमि बना हुआ है. डॉ. रामदेव शुक्ल के प्रथम सफल उपन्यास 'ग्राम देवता' में ठेठ गंवई जीवन की कुछ ऐसी ही अभिशापग्रस्त स्थितियां उभरती दीख रही हैं. गांव को जीकर लिखे गये इस उपन्यास की सजीव छुअन में आज के गांव की समूची आकृतियां, स्वीकृतियां और विकृतियां संवेदित हो जाती हैं. आश्चर्य है कि अपने गंभीर आलोचक व्यक्तित्व से पृथक हटकर कैसे कथाकार इस प्रकार जमीन की भाषा, और गंवई जीवन के अछूते मुहावरों को समेटकर चित्त के घुलनशील आंचलिक रंगों में संजो देता है!

विशुद्ध सामाजिक उपन्यासों में इस वर्ष जवाहर सिंह की कृति 'गूंगे कंठ की पुकार', 'अजनबी इंद्रधनुष' (आशीष सिन्हा), 'सांड' (हृदयेश) और 'अपनी ही तलाश' (अभिमन्यु अनत) चाव से पढ़े गये हैं. 'सांड' को पढ़कर श्रीलाल शुक्ल की कृति 'राग दरबारी' की याद आ जाती है. शिक्षा-क्षेत्र की अराजकता-अव्यवस्था को उसी प्रकार यहां भी पैनेपन के साथ बेनकाब किया गया है. 'अपनी ही तलाश' में कथाकार की चिरपरिचित मारिशस की सांस्कृतिक, सामाजिक जमीन है जिस पर उगते युगीन आक्रोश और विद्रोह को परखा गया है. आशीष सिन्हा की कृति में पारिवारिक जीवन की वह स्थिति अधिक कंटीले कोण से उभरती है जिसमें पति-पत्नी के तनाव का बच्चों के ऊपर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है. कथाकार सामाजिक जीवन की ऊंची-नीची और ऊबड़-खाबड़ परतों पर भी गहराई से रोशनी फेंकने की कोशिश करता है. वह आज के समाज और मनुष्य को व्याख्यायित करने के लिए आगे बढ़ता है. सवाल यह है कि ये चित्र और ये व्याख्याएं कहां तक कुछ सोचने के लिए, कुछ निर्मित होने के लिए छोड़ जाती हैं? एक जटिल उपन्यास-भूमि तो आज के मनुष्य का मन है जो धीरे-धीरे बंजर होता जा रहा है. उसमें अब कुछ भी बेध नहीं रहा है. कथाकार अपनी कथा को बेधक बनाने के लिए प्रयोग करता चला जा रहा है. प्रख्यात पौराणिक आख्यानों पर नयी-नयी कलम लगती जा रही है. 'अभिशप्त कथा' (मनु शर्मा) में कच-देवयानी और शर्मिष्ठा की कथा लेकर जरा हलके से आधुनिकता की कलम लगती है तो 'अभिज्ञान' (नरेंद्र कोहली) में सुदामा और कृष्ण की कहानी को लेकर गहराई से उसकी नयी जनवादी व्याख्या हो जाती है. अपनी 'दीक्षा' आदि रामकथा से संबंधित चार पुस्तकों में विचार क्रांति मूलक पौराणिक पुनर्लेखन कर नरेंद्र कोहली को पर्याप्त ख्याति मिली है. रामकथा से अब वे कृष्णकथा को आधुनिक मानवीय अर्थ देने पर उतर रहे हैं और 'अभिज्ञान' में उसका पहला प्रयोग लक्षित हो रहा है. प्रयोग को सफल कहा जायेगा क्योंकि बिना अधिक खींचतान किये कथाकार अपना अभीष्ट अर्थ दे लेता है.

किंतु वीरेंद्र कुमार जैन की कृति 'अनुत्तरयोगी : तीर्थंकर महावीर' की स्थिति कुछ और है. उसमें पौराणिक पुनर्लेखन नहीं, उसमें पौराणिकता के भीतर से खींचकर फंसे हुए इतिहास को बाहर किया गया है. हिंदी के इस महान महाकाव्यात्मक उपन्यास का चौथा खंड सामने आया तो गत वर्ष उसके साथ ही 'विशुद्ध भारतीय उपन्यास' की चर्चा भी सुनायी पड़ने लगी. कैसा है यह आज का विशुद्ध भारतीय उपन्यास? सामान्योन्मुखी यथार्थ की प्रतिष्ठा, शास्त्रगत सांप्रदायिकता के बाहर खुलेमन से कुछ सोचने की उत्तेजना, अनंत पुरुष की जययात्रा में गांधीवाद और मार्क्सवाद के मिले-जुले मूल्यों का अवदान और चेतना की उच्चस्तरीय साधना तथा आध्यात्मिक विजयों के साथ परंपरागत महाजनी सभ्यता के प्रति खुले विद्रोह का आह्वान जैसी वस्तुस्थितियों में ही नहीं, 'भारतीय' शब्द का प्रयोग उसके शिल्प के संदर्भ में प्रमुख रूप से होता है. धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, कवित्व-कल्पना से परिपूर्ण यह विशाल चेतना-प्रवासी कृति पाश्चात्य औपन्यासिक ढांचे से अधिक भारतीय चरित काव्यों की शैली को पचाकर निखरती दृष्टिगोचर होती है. यही कारण है कि सबसे पृथक पड़ जाती है. सन् 1982 के साहित्याकाश में गूंजती 'मन परदेशी' (करतार सिंह दुग्गल), 'कसप' (मनोहर श्याम जोशी), 'स्वामी' (मन्नू भंडारी), 'हुजूर दरबार' (गोविंद मिश्र) और 'लेकिन दरवाजा' (पंकज बिष्ट) जैसी कृतियों से यह 'अनंत पुरुष की जययात्रा' तो पृथक पड़ ही जायेगी. बहुत कठिन है उसकी ऊंचाई को अस्वीकारना. इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वर्ष के शेष उपन्यास हीन हैं. 'कसप' तो पूरे वर्ष छाया रहा. हिंदी समीक्षा में सबसे अधिक शब्द इसी कृति के लिये उछले. यह व्यापक स्वीकृति गवाह है कि यह अनुरंजनकारी आधुनिक किशोर प्रेम-कथा कहीं गहरे में लोकमन को छूती है. इस कृति में निहित फिल्मी संभावनाओं से इसका स्तरीय साहि-

आत्मकथन

▣ स्टेनबेक

एक

कला के प्रजातंत्र को सार्वजनिक प्रशंसा की जरूरत नहीं पड़ती. वास्तव में, झटपट मिलनेवाली प्रशंसा ज्यादातर घटियापन की निशानी होती है.

दो

इस शहर के 'अच्छे' लोग समझ नहीं पा रहे कि उन्हें मेरा उपन्यास 'कैनेरी रो' अच्छा लगा है या नहीं. वे इस प्रतीक्षा में हैं कि उपन्यास के बारे में और लोग क्या कहते हैं. 'अच्छे लोगों में यह रवैया हमेशा देखा जा सकता है. और आलोचक कह रहे हैं कि यह उपन्यास प्रकृति के दृष्टिकोण से सही नहीं हैं, और इसमें बुरा सौंदर्य-बोध नजर आता है. प्रकृति में दो चीजें कभी जन्म नहीं लेतीं : पहिया और अच्छा-सौंदर्य-बोध.

तीन

बॉब एंडरसन (नाटककार) ने किसी साहित्यक समस्या के बारे में मेरी मदद मांगी. मैंने उसे कविता लिखने के लिए कहा—छापने-बेचने के लिए नहीं, देखने-पढ़ने के लिए भी नहीं, बल्कि फेंक देने के लिए. वास्तव में, कविता साहित्य-लेखन का गणित है और वह संगीत के बहुत निकट है. वह सबसे बढ़िया इलाज भी है.

बॉब ने मेरी सलाह मान ली. वह छह महीने तक कविताएं लिखता रहा. और कविताओं ने अपना असर दिखाया. □

आत्मकथन

▣ स्टेनबेक

एक

कला के प्रजातंत्र को सार्वजनिक प्रशंसा की जरूरत नहीं पड़ती. वास्तव में, झटपट मिलने-वाली प्रशंसा ज्यादातर घटियापन की निशानी होती है.

दो

इस शहर के 'अच्छे' लोग समझ नहीं पा रहे कि उन्हें मेरा उपन्यास 'कैनेरी रो' अच्छा लगा है या नहीं. वे इस प्रतीक्षा में हैं कि उपन्यास के बारे में और लोग क्या कहते हैं. 'अच्छे लोगों में यह रवैया हमेशा देखा जा सकता है. और आलोचक कह रहे हैं कि यह उपन्यास प्रकृति के दृष्टिकोण से सही नहीं हैं, और इसमें बुरा सौंदर्य-बोध नजर आता है. प्रकृति में दो चीजें कभी जन्म नहीं लेतीं : पहिया और अच्छा-सौंदर्य-बोध.

तीन

बॉब एंडरसन (नाटककार) ने किसी साहित्यक समस्या के बारे में मेरी मदद मांगी. मैंने उसे कविता लिखने के लिए कहा—छापने-बेचने के लिए नहीं, देखने-पढ़ने के लिए भी नहीं, बल्कि फेंक देने के लिए. वास्तव में, कविता साहित्य-लेखन का गणित है और वह संगीत के बहुत निकट है. वह सबसे बढ़िया इलाज भी है.

बॉब ने मेरी सलाह मान ली. वह छह महीने तक कविताएं लिखता रहा. और कविताओं ने अपना असर दिखाया. □

पड़ता है. कथाकार सामाजिक जीवन की ऊंची-नीची और ऊबड़-खाबड़ परतों पर भी गहराई से रोशनी फेंकने की कोशिश करता है. वह आज के समाज और मनुष्य को व्याख्यायित करने के लिए आगे बढ़ता है. सवाल यह है कि ये चित्र और ये व्याख्याएं कहां तक कुछ सोचने के लिए, कुछ निर्मित होने के लिए छोड़ जाती हैं? एक जटिल उपन्यास-भूमि तो आज के मनुष्य का मन है जो धीरे-धीरे बंजर होता जा रहा है. उसमें अब कुछ भी बेध नहीं रहा है. कथाकार अपनी कथा को बेधक बनाने के लिए प्रयोग करता चला जा रहा है. प्रख्यात पौराणिक आख्यानों पर नयी-नयी कलम लगती जा रही है. 'अभिशप्त कथा' (मनु शर्मा) में कच-देवयानी और शर्मिष्ठा की कथा लेकर जरा हलके से आधुनिकता की कलम लगती है तो 'अभिज्ञान' (नरेंद्र कोहली) में सुदामा और कृष्ण की कहानी को लेकर गहराई से उसकी नयी जनवादी व्याख्या हो जाती है. अपनी 'दीक्षा' आदि रामकथा से संबंधित चार पुस्तकों में विचार क्रांति मूलक पौराणिक पुनर्लेखन कर नरेंद्र कोहली को पर्याप्त ख्याति मिली है. रामकथा से अब वे कृष्णकथा को आधुनिक मानवीय अर्थ देने पर उतर रहे हैं और 'अभिज्ञान' में उसका पहला प्रयोग लक्षित हो रहा है. प्रयोग को सफल कहा जायेगा क्योंकि बिना अधिक खींचतान किये कथाकार अपना अभीष्ट अर्थ दे लेता है.

किंतु वीरेंद्र कुमार जैन की कृति 'अनुत्तरयोगी : तीर्थंकर महावीर' की स्थिति कुछ और है. उसमें पौराणिक पुनर्लेखन नहीं, उसमें पौराणिकता के भीतर से खींचकर फंसे हुए इतिहास को बाहर किया गया है. हिंदी के इस महान महाकाव्यात्मक उपन्यास का चौथा खंड सामने आया तो गत वर्ष उसके साथ ही 'विशुद्ध भारतीय उपन्यास' की चर्चा भी सुनायी पड़ने लगी. कैसा है यह आज का विशुद्ध भारतीय उपन्यास? सामान्योन्मुखी यथार्थ की प्रतिष्ठा, शास्त्रगत सांप्रदायिकता के बाहर खुलेमन से कुछ सोचने की उत्तेजना, अनंत पुरुष की जययात्रा में गांधीवाद और मार्क्सवाद के मिले-जुले मूल्यों का अवदान और चेतना की उच्चस्तरीय साधना तथा आध्यात्मिक विजयों के साथ परंपरागत महाजनी सभ्यता के प्रति खुले विद्रोह का आह्वान जैसी वस्तुस्थितियों में ही नहीं, 'भारतीय' शब्द का प्रयोग उसके शिल्प के संदर्भ में प्रमुख रूप से होता है. धर्म, दर्शन, इतिहास, पुराण, कवित्व-कल्पना से परिपूर्ण यह विशाल चेतना-प्रवासी कृति पाश्चात्य औपन्यासिक ढांचे से अधिक भारतीय चरित काव्यों की शैली को पचाकर निखरती दृष्टिगोचर होती है. यही कारण है कि सबसे पृथक पड़ जाती है. सन् 1982 के साहित्याकाश में गूंजती 'मन परदेशी' (करतार सिंह दुग्गल), 'कसप' (मनोहर श्याम जोशी), 'स्वामी' (मन्नू भंडारी), 'हुजूर दरबार' (गोविंद मिश्र) और 'लेकिन दरवाजा' (पंकज बिष्ट) जैसी कृतियों से यह 'अनंत पुरुष की जययात्रा' तो पृथक पड़ ही जायेगी. बहुत कठिन है उसकी ऊंचाई को अस्वीकारना. इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वर्ष के शेष उपन्यास हीन हैं. 'कसप' तो पूरे वर्ष छाया रहा. हिंदी समीक्षा में सबसे अधिक शब्द इसी कृति के लिये उछले. यह व्यापक स्वीकृति गवाह है कि यह अनुरंजनकारी आधुनिक किशोर प्रेम-कथा कहीं गहरे में लोकमन को छूती है. इस कृति में निहित फिल्मी संभावनाओं से इसका स्तरीय साहित्यिक रूप आहत नहीं होता.

अब बातों को संक्षेप में कहना विवशता है. वर्ष की चर्चित पुस्तकों में अब बहुत कम शेष भी रह गयी हैं. 'स्वामी' शरत्चंद्र की कहानी पर आधारित एक प्रयोग है. 'हुजूर दरबार' में स्वाधीनतापूर्व रियासती विलासिता, स्वाधीनता संग्राम और फिर स्वराज्य के भटक जाने की रहस्य रोमांच भरी कहानी है. 'लेकिन दरवाजा' हिंदी साहित्य के पिछले दो दशक की पृष्ठभूमि पर आधारित महत्वाकांक्षी उपन्यास है और साहित्यकार-पत्रकार देवेन भंडारी के माध्यम से साहित्यिक, सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यहीनताओं तथा व्यापक सांस्कृतिक ह्रास के चित्रों को सर्वथा आधुनिक मुद्रा में प्रस्तुत करता है. इन सबसे पृथक पृष्ठभूमि है 'मन परदेशी' की. कथाकार बेगम मुजीब के माध्यम से विभाजन के इर्द-गिर्द वाले ऐसे वातावरण का चित्रण करता है जिसमें सांप्रदायिक कट्टरता की कड़ियां ढीली पड़ती जा रही हैं और भावात्मक एकता की जड़ें जमती प्रतीत होती हैं. किंतु आलोच्य कृति में कल्पना की अतिशयता है और संवेदनीय यथार्थ पकड़ से बराबर छूट-छूट जाता है. इस विषय पर पाकिस्तान के मशहूर उर्दू कथाकार इंतजार हुसेन की पुरस्कृत कृति 'बस्ती' इस वर्ष हिंदी में रूपांतरित हुई है. यह पाकिस्तान की संवेदनशील नयी पीढ़ी की भावात्मक एकता के संदर्भ में उसकी आंतरिक छटपटाहट को चकितकारी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है. भारत की एक-एक सांस्कृतिक पहचान को लेकर पाकिस्तानी चेतना में उठती यह हूक देख लगता है सचमुच अभी 'खुदा सही सलामत है.'

हमें क्षमा किया जाय, यह वास्तव में सिद्ध कथाकार रवींद्र कालिया के एक विशाल उपन्यास का नाम है जिसका पहला खंड इस वर्ष प्रकाशित हुआ है. अपने परिचित नगर इलाहाबाद के चौक की तवायफों के जीवन को कथाकार ने पृष्ठभूमि बनाया है अतः विश्वसनीय चरित्रों की सृष्टि होती चलती है. कृति की पृष्ठभूमि से जाहिर है कि कथाकार स्वीकृत सामाजिक मूल्यों और नैतिकता के परिचित मानदंडों पर प्रहार करेगा. मगर 'खुदा सही सलामत है' को पढ़कर लगता है कि यह प्रहार सिर्फ प्रहार नहीं है, प्रहार तो 'सेवा सदन' से ही होता आया है. लेखक यहां एक जलता सवाल पैदा करता है और पूरे स्वाधीन भारत से पूरी अकुलाहट के साथ उसका जवाब मांगता है. यही तीखापन इस कृति को मूल्यवान बनाता है. □

● बड़ी बाग, गाजीपुर (उ.प्र.)

वाटरबरीज़
गोल्ड लैबल
विटामिन टॉनिक

इसके गुण-भरे घूंट
भोजन को बनाएं परिपूर्ण.

आज के जमाने में संतुलित भोजन की व्यवस्था कर पाना सचमुच मुश्किल काम है. लाख कोशिशों के बावजूद भी शायद आपके परिवार को सही मात्रा में जरूरी पोषक तत्व न मिल पाते हों.
इसीलिए तो डाक्टरों की सिफ़ारिश है कि, हर भोजन के बाद, वाटरबरीज़ गोल्ड लेबल विटामिन टॉनिक लिया जाए. वाटरबरीज़ गोल्ड लेबल विटामिन टॉनिक आपके पूरे परिवार के लिए विटामिन, मिनरल्स तथा आयरन जैसे जरूरी पोषक तत्वों का एक अनमोल मिश्रण है.

LINTAS-WVT 3-219 HI